

वीर सेवा मन्दिर
दिल्ली

★

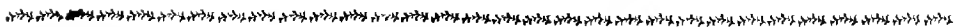
क्रम संख्या

२३२४

काल न०

३३०.२ चन्द्र

गण्ड

[illegible]

{ मूत्रिय
साढे तीन रुपये

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

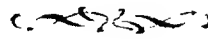
स्व० पुण्यल्लोका माता श्री मूर्तिदेवी की पवित्र स्मृति में

तन्मपुत्र मेठ शान्तिप्रसाद जी द्वारा

संस्थापित

ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, कन्नड, तामिल आदि प्राचीन भाषाओं में उपलब्ध आगमिक, दार्शनिक, पौर्णिक, साहित्यिक और ऐतिहासिक आदि विविध विषयों पर जनसाहित्य का अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन, उसका मूल और यथाम्भव अनुवाद आदि का साथ प्रकाशित होगा। जैन भक्तों की सन्ध्या झिल्लाव-संग्रह, विविध विद्वानों के अध्ययनगुण्य और लोकहितकारी जनसाहित्य ग्रन्थ भी इसी ग्रन्थमाला में प्रकाशित होंगे।



ग्रन्थमाला सम्पादक और नियामक (संस्कृत विभाग)

प्रो० महेन्द्रकुमार जैन, न्यायाचार्य, जैन-प्राचीनन्यायतार्थ, आदि

बौद्धदर्शनाध्यापक, संस्कृत महाविद्यालय

हिन्दू विश्वविद्यालय काशी

संस्कृत ग्रन्थाङ्क ६

प्रकाशक—

अयोध्याप्रसाद गोयलीय

मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ काशी,

दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस सिटी

मुद्रक—पृथ्वीनाथ भार्गव, भार्गव भूषण प्रेस, गायघाट, काशी।

स्थापनाद
फाल्गुन कृष्ण ९
वीर नि० सं० २४७०

सर्वाधिकार सुरक्षित

विक्रम सं० २०००
१८ फरवरी १९४४

नाममाला



स्व० मूर्तिदेवी, मातेश्वरी सेठ शान्तिप्रसाद जैन

JNANA-PITHA MOORTI DEVI JAIN GRANTHAMALA

SANSKRIT GRANTHA No 6

NAMAMALA

BY

MAHAKAVI DHANANJAYA

With the

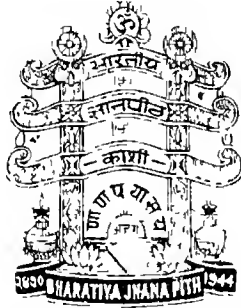
BHASHYA

OF

AMARAKIRTI

AND

The Anekautha nighantu and Ekakshari Kosha



EDITED WITH NOTES

By

PROF. SHAMBHU NATHA TRIPATHI

Vyakaranacharya Saptatirtha

Published by

BHARATIYA JNANA-PITHA KASHI

First Edition
1000 Copies

CHAITRA VIKRAMA VI 2176

VIKRAMA SAMVAT 2007

APRIL 1950

Price
Rs 3.8

BHARATIYA JNANAPITHA KASHI

Founded by

SETH SHANTI PRASAD JAIN

In memory of his late benevolent mother

SHRI MOORTI DEVI

JNANA-PITHA MOORTI DEVI JAIN GRANTHAMALA

In this Granthamala critically edited, Jain agamic, Philosophical, Pauranic literary, historical and other original texts available in Prakrit, Sanskrit Apabhraṃśa, Hindi, Kannaḍa, Tamil Etc. will be published in their respective languages with their translations in modern languages

AND

Catalogues of Jain Bhandaras, inscriptions, studies of competent scholars and Jain literature of popular interest will also be published

GENERAL EDITOR OF THE SANSKRIT SECTION

Prof. MAHENDRA KUMAR JAIN

VIKRAM CHRYU, JAIN PRACHIN UNYAY VARTHAN

Professor of Bauddha Darshana, Sanskrit Mahavidyalaya

Banaras Hindu University

SANSKRIT GRANTHA No. 6

Publisher

AYODHYA PRASAD GOYALIYA

SECY

BHARATIYA JNANAPITHA KASHI

DURGAKUND ROAD, BANARAS CITY

Founded in
Falgunā Krishna 9,
Vir Sam 2470 }

All Rights Reserved

{ Vikram Samvat 2000
18th Feb 1944

FOREWORD

The Bharatiya Jnanapitha, Banaras, founded by Shri Shantiprasad Jain to perpetuate the memory of his mother Murtidevi, has undertaken an ambitious plan of scholarly publications dealing with all aspects of Ancient Indian Culture with a very broad outlook and vision, and has already issued a few works in various languages such as Sanskrit, Prakrit, Pali etc. The undertaking has secured a learned scholar of proved ability in Pandit Mahendra Kumar, Nyayacharya, of the Sanskrit Mahavidyalaya of the Banaras Hindu University as a General Editor. The Jnanapitha has already published a few works and has a number of others in active preparation.

The present volume contains two small works of the famous lexicographer Dhananjaya. The first is called N A M A M A L A, a collection of synonyms, while the other is called A N E K A R T H A—N A M A M A L A, recording words with plurality of senses. The first work contains just 200 stanzas, while the other is smaller still. The most important feature of the first work is that it publishes for the first time the Bhashyas of AMARAKIRTI, who gives etymological explanations of each and every word in the work, and adds a few more synonymous words from his own observation. His Bhashyas follows the same methods as are used by Ksurasvamin in his famous commentary on AMARAKOSA. The entire work is very carefully edited with appropriate references to authorities by Pandit Shambhunath Tripathi, a Saptatirtha and also a Vyakaranacharya of repute. On reading his foot-notes, I often felt that Pandit Tripathi exceeds the Bhasyakara both in ingenuity and accuracy, nay, I would go further and say that his etymological explanations are happier still. I am sure the scholars will admire his work in the foot-notes.

The volume is further equipped with several indexes. They include naturally the word-indexes of both the works edited, but there are in addition index recording additional words from Amarakirti's Bhasya, a list of Yaugika words, a list of works and authors cited and a list of quotations cited in the work, all this being done by Pandit Mahadeva Chaturvedi, Vyakaranacharya. In fact the editorial part of the volume is as thorough as is humanly possible, and I have nothing but high admiration for the ability of Pandit Mahendra Kumar, the General Editor, in securing such a team of scholars to produce this volume.

Banaras Hindu University
6th September 1949

}

P L VAIDYA, M A , D Litt,
Mayurbhanj Professor and Head of The
Department of Sanskrit & Pali.

प्राक्कथन

(हिन्दी अनुवाद)

अपनी पूज्य माता मतिदेवीजी की स्मृति के लिए साहु शान्तिप्रसाद जी जैन द्वारा स्थापित भारतीय ज्ञानपीठ बनारस ने विद्वत्पूज्य प्रकाशनों की एक उत्साहवर्धक योजना हाथ में ली है। प्राचीन भारतीय संस्कृति के विशाल दृष्टि व कल्पना वाले सभी अंगों का प्रकाशन इस योजना के अन्तर्गत है तथा अब तक इस स्थिति से संस्कृत, प्राकृत, पाली, आदि विभिन्न भाषाओं के कतिपय ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। इस योजना के सम्पादन के लिए काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्कृत महाविद्यालय के सुयोग्य विद्वान् प० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य, प्रधान सम्पादक के रूप में प्राप्त हैं। ज्ञानपीठ में अब तक कई एक ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं और कई एक प्रकाशनों के लिए तैयार हैं।

वर्तमान ग्रन्थ में प्रसिद्ध कोशकार धनञ्जय की दो कृतियाँ सम्मिलित हैं। पहली नाममाला कहलाती है जिसमें पर्यायवाची शब्दों का संग्रह है और दूसरी अनेकार्थ नाममाला, जिसमें अनेक अर्थ-बोधक शब्दों का संग्रह है। पहली कृति में २०० श्लोक हैं जब कि दूसरी कृति उससे काफी छोटी है। प्रथम कृति का सम्बन्ध में उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इस पर लिखा गया अमरकोश का भाष्य पहले पहल प्रकाश में आ रहा है। अमरकोश ने नाममाला के प्रत्येक शब्दों की व्युत्पत्ति देकर स्पष्टीकरण किया है और अपनी दृष्टि में आए कुछ और पर्यायवाची शब्दों को शामिल कर दिया है। उनके भाष्य की बड़ी सरणि पद्धति है जो कि अमरकोश की प्रसिद्ध टीका में क्षीरस्वामी ने अपनायी है।

सम्पूर्ण कृति का सम्पादन स्वातन्त्र्य पण्डित शम्भुनाथ त्रिपाठी व्याकरणाचार्य सप्ततीयं ने बड़ी सावधानी से तथा प्रमाणों का उपयुक्त उद्धरण देते हुए किया है। उनकी टिप्पणियों का अध्ययन करने में, मुझे अनेक बार प्रतीत हुआ है कि पण्डित त्रिपाठी-युक्ति और शुद्धि दोनों में कहीं-कहीं भाष्यकार को भी मात कर गये हैं, इतना ही नहीं, उनके व्युत्पत्ति सबन्धी स्पष्टीकरण और भी अच्छे हैं। मुझे विदवास है कि विद्वान् लोग टिप्पणी में त्रिपाठी जी के प्रयत्न की प्रशंसा करेंगे।

ग्रन्थ में अनेक अनुक्रमणिका लगा दी गई हैं। उनमें सम्पादित दोनों कृतियों की शब्द सूची का सम्मिलित होना तो स्वाभाविक ही है परन्तु इसके अतिरिक्त अमरकोश के भाष्य के अतिरिक्त शब्दों की सूची, योगिक शब्दों की सूची, उद्धृत ग्रन्थ और ग्रन्थकर्ताओं की सूची तथा ग्रन्थ में उद्धृत वाक्यों की सूची भी सम्मिलित की गई हैं। यह सब पण्डित महादेव जी चतुर्वेदी व्याकरणाचार्यने किया है। सूचमुच में ग्रन्थ का सम्पादकीय भाग उतना पूर्ण बना दिया गया है जितना मानवी शक्ति में संभव था। और इस सब के लिए मैं प्रधान सम्पादक पण्डित महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य की योग्यता की सराहना करता हूँ जिन्होंने ऐसे ग्रन्थ के प्रकाशन में इस प्रकार की विद्वत्सज्जली को एकत्रित किया है।

काशी हिन्दू विश्व विद्यालय
६ सितम्बर, १९४९

}

पी० एल० वेंस
एम० ए० डी० लिट०
मयूरभञ्ज प्रोफेसर तथा
अध्यक्ष, संस्कृत पाली विभाग।

प्रस्तावना

“शब्दब्रह्मणि निष्ठात परब्रह्माधिगच्छति”—ब्रह्मबिन्दु०

शब्दब्रह्म में पारंगत व्यक्ति परब्रह्म की प्राप्ति कर सकता है। यह सिद्धान्त इस बात की सूचना देता है कि साधक को पहिले शब्दशक्ति और उसकी मर्यादा तथा भाव का ज्ञान आवश्यक है। यदि उसे शब्द के वाच्यार्थ भाग्यार्थ और तान्पर्यार्थ की प्रक्रिया का बोध नहीं है तो वह भटक सकता है। वस्तुतः शब्द भावों के टोने का एक लगडा वाहन है। जब तक सकेतग्रहण न हो तब तक उसकी कोई उपयोगिता ही नहीं है। एक ही शब्द सकेतभेद से भिन्न भिन्न अर्थों का वाचक होता है। इसीलिए दर्शनशास्त्रों में एक पक्ष यह भी उपलब्ध होता है कि शब्द केवल वक्ता की विवक्षा को सूचित करते हैं, पदार्थ के वाचक नहीं हैं। ‘घट’ शब्द का सकेत वक्ता ने जिस रूप में जिस श्रोता को ग्रहण करा दिया है उसी अभिप्राय का छोटतन वह शब्द उस श्रोता को करा देगा। शब्द विद्यमान अर्थ को भी कहता है और अविद्यमान को। एक खरविषाण भी शब्द है जिसका अरुड वाच्य पदार्थ इस ससार में नहीं है और घट शब्द भी है जिसका वाच्य घटा मौजूद है। अतः शब्द के सम्बन्ध में यह निश्चय करना कि—यह शब्द अर्थवाची है और यह अनर्थवाची-टेरी खोर है। फिर भी शाब्दिकों ने यह प्रयत्न किया है शब्द के सार्थकत्व और अनर्थकत्व का विवेक हो जाय।

उसका मुख्य उपाय है शक्तिग्रह या सकेतग्रहण। जिस अर्थ में जिग शब्द का सकेतग्रहण होता है वह उस अर्थ का वाचक ही जाता है। यह सकेत कब किसने ग्रहण कराया इसका निर्णय कठिन है। ईश्वर को सकेत ग्रहण कराने के लिए घमोटना श्रद्धा की वस्तु है। उसका इतना ही अर्थ है कि बृद्धपरम्परा से शब्द सकेत का ग्रहण बराबर होता आया है और वह अनादि है। उसमें विशेष हेर फेर होकर भी सामान्यतया सकेत की परम्परा अनादि है। जब से यह जीव है तभी से शब्दसकेत है। इस सकेतग्रहण के उपाय निम्न लिखित हैं —

“शक्तिग्रह व्याकरणोपमानकोशाप्तवाक्याद् व्यवहारान्तम् ।

वाक्यस्य शेषाद् विवृतेर्वदन्ति सान्निध्यतः सिद्धपदस्य वृद्धा ॥”

अर्थात्—व्याकरण, उपमान, कोश, आप्तवाक्य, व्यवहार, वाक्यशेष, विवरण और प्रसिद्ध शब्दके सान्निध्य से सकेत ग्रहण होता है। इनमें व्याकरण से यौगिक शब्दों का व्युत्पत्ति द्वारा सकेत ग्रहण हो भी जाय पर रूढ और योगरूढ शब्दों का सकेत ग्रहण व्याकरण से नहीं हो सकता। अन्ततः कोश ही एक ऐसा उपाय बचता है जिसमें सभी प्रकार के शब्दों का सकेत-ग्रहण हो जाता है।

कोश अर्थात् खजाना या भंडार। व्याकरण से सिद्ध या बृद्धपरम्परा से प्रसिद्ध कंसे भी यौगिक रूढ या योगरूढ आदि शब्दों का अनेकार्थ के साथ सग्रह कोश में होता है। भाषा वही समृद्ध और जीवित समझी जाती है जिसका शब्द भंडार पर्याप्त हो और जिसमें व्यवहार और परमार्थ के लिए उपयोगी सभी शब्द विद्यमान हों। जिसमें अन्य भाषाओं के या विदेशी शब्दों के पचाने की या उन्हें स्व-स्वरूप करने की सामर्थ्य हो। इस दृष्टि से संस्कृत भाषा उतनी समृद्ध नहीं बन सकी। इसका कारण यह रहा है कि इस भाषा पर एक वर्ग का प्रभुत्व रहा और उसने इसकी पाचन शक्ति को धर्म अधर्म के कल्पित बन्धन से जकड़ दिया था। उस वर्ग ने उस युग में प्रचलित अपभ्रंश और प्राकृत बोलियों का जो उस समय की जनबोलिया थीं उच्चारण करना पाप गोषित किया था। फिर भी संस्कृत की जो प्रकृति प्रत्यय उपसर्ग आदि के योग से शब्दोत्पादन शक्ति थी

उसीके कारण यह बन्धनबद्ध होकर भी विद्वद्भोग्य अवश्य बनी रही। सस्कृत को लोकभाषा का पद या सबकी बोली होने का सौभाग्य नहीं मिल सका। इस भाषा सम्बन्धी धर्मधर्म विचार ने संस्कृत के कोशागार को भी सीमित कर दिया।

भाषा के एकाधिकारियों ने तो यहाँ तक कह डाला है कि अपभ्रंश या अन्य लोकभाषा के शब्दों में वाचक शक्ति ही नहीं है। यष्टि का अपभ्रंश लट्ठी या लाठी है। ये लट्ठी या लाठी शब्द में वाचकशक्ति स्वीकार नहीं करना चाहते। इनका कहना है कि वाचकशक्ति तो 'यष्टि' शब्द में ही है। लट्ठी या लाठी शब्द सुनकर जो श्रोता को लाठी पदार्थ का ज्ञान होता है उसकी विधि इस प्रकार है—प्रथम ही श्रोता लाठी शब्द को सुनकर सस्कृत 'यष्टि' शब्द का स्मरण करता है और फिर उस 'यष्टि' शब्द से पदार्थबोध होता है। अर्थात् ऐसे श्रोता को जिसने स्वप्न में भी 'यष्टि' शब्द नहीं सुना उसे भी लाठी शब्द से पदार्थ बोध के लिए सस्कृत 'यष्टि' शब्द का स्मरण आवश्यक है।

इस भाषाधारित वर्गप्रभुत्व से सस्कृत भाषा एक विशिष्ट वर्ग की भाषा बन कर रह गई। पा० महाभाष्य के पस्पशा आह्निक में लिखा है कि—“तस्माद् ब्राह्मणेन न म्लेच्छिन वै, नापभाषित वै, म्लेच्छो ह वा एष अपयद् ।” अर्थात् ब्राह्मण को न तो म्लेच्छ शब्दों का व्यवहार करना चाहिए और न अपभ्रंश का ही। अपशब्द म्लेच्छ है। अपशब्द का विवरण भी वहीं यह दिया है—“यदि तावच्छब्दोपदेशं क्रियते, गीर्ग्येनस्मिन्पदिष्टे गम्यत एतद् गाव्यादयोऽपशब्दा इति ।” अर्थात्—गी शब्द है और गावी गैया आदि अपशब्द हैं।

यद्यपि भाषा को सस्कृत रखने के लिए व्याकरण का संस्कार आवश्यक है तभी वह एक अपने निश्चित रूप में रह सकती है, लिंग और वचन का अनुशासन भी इसीलिए आवश्यक होता है, परन्तु उसके उच्चारण में किसी जाति विशेष का या वर्ग विशेष का अधिकार मानने से उसकी व्यापकता तो रक ही जाती है। नाटकों में स्त्री, शूद्रों तथा दामो से प्राकृत भाषा का बुलवाया जाना उक्त रूढ़ि का ही साक्षी है।

इतना ही नहीं, धर्मक्षेत्र में साधु शब्द अर्थात् सस्कृत शब्द का उच्चारण ही पुण्य माना गया। इसका यह महज परिणाम था कि धर्म का ठेका भी भाषा प्रभुत्व के द्वारा एक वर्ग विशेष को मिला। हुआ भी यही। धर्म का अधिकार और उससे आर्थिक सम्बन्ध एक वर्ग का हो गया।

इस सम्बन्ध में मौलिक क्रान्ति महाश्रमण महावीर और बुद्ध ने की। उनसे भाषा के इस कटिपत बन्धन को तोड़ कर जनभाषा में धर्म का उपदेश दिया और स्त्री शूद्र तथा पामर से पामर व्यक्तियों के लिए धर्म का क्षेत्र खोला। धर्म के उच्च पद के लिए जाति का कोई बन्धन इनने स्वीकार नहीं किया। इस भाषाक्रान्ति से प्राकृत भाषाओं का विकास हुआ। यह नहीं है कि प्राकृत भाषाएँ व्याकरण और लिंगानुशासन से मुक्त हो। उनके अपने व्याकरण हैं, अपने नियम हैं, जिनके अनुसार वे पल्लवित पुष्पित और फलित होती रही हैं।

महावीर और बुद्ध के काल से लेकर ईसा की तीसरी सदी तक प्राकृत भाषाओं की गति मिलती रही। अशोक के शिलालेख प्राकृत भाषा में उपलब्ध होते हैं। शासनादेश प्राकृत भाषा में चलते रहे हैं। पुनः सस्कृत युग में इन भाषाओं की गति मन्द पड़ी। इस युग में जैन और बौद्ध आचार्यों ने भी ग्रन्थरचना सस्कृत में ही की। यही कारण है कि दोनों के विपुल साहित्य से सस्कृत का कोशागार भरा हुआ है। दार्शनिक क्षेत्र में उथल पुथल तो नागार्जुन विग्नाग समन्तभद्र सिद्धसेन अकलक आदि के ग्रन्थों से ही मची। तात्पर्य यह कि श्रमण परम्परा ने मध्यकाल में सस्कृत भाषा के विकास में भी अपना महत्त्वपूर्ण योगदान किया।

प्रस्तुत ग्रन्थ—

नाममाला कोश का एक सुन्दर और व्यवहारोपयोगी आवश्यक शब्दों से समृद्ध ग्रन्थ है। महा-कवि धनञ्जय ने २०० श्लोको में ही संस्कृत भाषा के प्रमुख शब्दों का चयन कर गागर में सागर भर दिया है। शब्द से शब्दान्तर बनाने की इनकी अपनी निराली पद्धति है। जैसे पृथिवी के नामों के आगे 'धर' शब्द जोड़ देने से पर्वत के नाम, 'मनुष्य' के नामों के आगे 'पति' शब्द जोड़ देने से राजा के नाम, 'वृक्ष' के नामों के आगे 'चर' शब्द जोड़ने पर बन्दर के नामों का बन जाना आदि।

इसपर अमरकीर्ति विरचित भाष्य सर्वप्रथम प्रकाशित किया जा रहा है। इस भाष्य में प्रत्येक शब्द की व्याकरणसिद्ध व्युत्पत्ति सूत्रनिर्देश पूर्वक बताई गई है। उणादि से सिद्ध हो या अन्य रीति से पर कोई भी शब्द निर्व्युत्पत्ति नहीं रह पाया है। इन व्युत्पत्तियों की प्रामाणिकता के लिए महा-पुराण, पद्मनन्दि शास्त्र, यशस्तिलक चम्पू, नीतिवाक्यामृत, द्विसन्धानकाव्य, बृहत्प्रतिक्रमण भाष्य, महाभारत, सूक्तिमुक्तावली, शब्दभेद, अनेकार्थध्वनिमञ्जरी, अमरसिंह भाष्य, आशाधर महाभिवेक, नीतिसार, शाश्वत, हैमीनाममाला आदि ग्रन्थों तथा यशकीर्ति, अमरसिंह, आशाधार, इन्द्रनन्दि, क्षीरस्वामी, पद्मनन्दि, श्रीभोज, हलायुध आदि ग्रन्थकारों को नाम निर्देशपूर्वक प्रमाणकोटि में उपस्थित किया है। अनेक व्युत्पत्तियाँ तो अमरकीर्ति की कल्पना के अच्छे उदाहरण हैं। यथा—

“अत्रयत्नो क्षुद्रजन्तवोऽयं स्पर्शनेति मरुत्” अर्थात् जिसके स्पर्श से क्षुद्र जन्तु मर जाय वह मरुत् है।

“न नन्दति भ्रातृजाया यस्या मत्या सा ननान्दा” जिसकी मौजूदगी में भौजाई खुश न हो वह ननादा—ननद है।

“यज्ञाना पशुकारणलक्षणानामरि यज्ञारि” अर्थात् पशुयज्ञ का विरोधी महादेव है। आदि।

इसके साथ ही एक अनेकार्थ निघण्टु भी मुद्रित किया गया है। इसके अन्त में निम्नलिखित पुष्पिका लेख है —“इति महाकविधनञ्जयकृते निघण्टुसमये शब्दसंकीर्णं अनेकार्थप्ररूपणो द्वितीय-परिच्छेदः ।” इसकी एक मात्र अशुद्धतम प्रति प० जुगलकिशोरजी मुख्तार अधिष्ठाता वीरसेवा-मन्दिर से प्राप्त हुई थी। रचना शैली आदि से यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि यह उन्हीं धनञ्जयकी कृति है, यद्यपि पुष्पिका वाक्य में स्पष्ट रूपसे धनञ्जय का उल्लेख है। इसके साथ ही एक अज्ञानकर्तृक एकाक्षरी कोष का भी मुद्रण किया है। इसकी हस्तलिखित प्रति भा वीर-सेवा-मन्दिर से ही प्राप्त हुई थी।

प्रस्तुत संस्करण—

अमरकीर्तिकृत भाष्य की एकमात्र अशुद्ध प्रति ऐलक पत्रालाल सरस्वती भवन झालरा-पाटन से प्राप्त हुई थी। इसीके आधार से इसका सम्पादन प० शम्भुनाथजी त्रिपाठी ने किया है। संस्करण में जो अनेक परिशिष्ट हैं वे सब प० महादेवजी चतुर्वेदी व्याकरणाचार्य ने तयार किये हैं। टिप्पणियाँ प० शम्भुनाथ जी त्रिपाठी ने बड़े परिश्रम से लिखी हैं। मुझे यह लिखते हुए आनन्द होता है कि उनके सर्वतोमुखी अगाध पाण्डित्य का परिचय टिप्पणों में पद पद पर मिलता है।

ग्रन्थकार

[महाकवि धनञ्जय]

नाममाला के कर्त्ता महाकवि धनञ्जय है। इन्होंने स्वयं अपने किसी ग्रन्थ में अपने समय आदि के बारे में निर्देश नहीं किया है। ये गृहस्थ थे। द्विसन्धानकाव्य के अन्तिम श्लोक की व्याख्या में उसके टीकाकार ने धनञ्जय के पिता का नाम वसुदेव, माता का नाम श्रीदेवी और गुरु का नाम दशरथ सूचित किया है। इनकी ख्याति 'द्विसन्धानकवि' के नाम से थी। नाममाला के अन्त में पाया जानेवाला यह श्लोक स्वयं इसका साक्षी है --

“प्रमाणमकलङ्कस्य पूज्यपादस्य लक्षणम्।

द्विसन्धानकवे काव्य रत्नत्रयमपश्चिमम्॥”

अर्थात्-अकलङ्कदेव का प्रमाण शास्त्र, पूज्यपाद का लक्षण-व्याकरण शास्त्र और द्विसन्धानकवि का द्विसन्धानकाव्य ये तीनों अपूर्व रत्नत्रय हैं। यह श्लोक नाममाला के भाष्यकार अमरकीर्ति के सामने था, उनमें इसकी व्याख्या भी की है। इसमें इनका उप-नाम 'द्विसन्धानकवि' सूचित किया गया है। टीका भी है, क्योंकि महाकवि धनञ्जय की सर्वश्रेष्ठ चमत्कारिणी कृति द्विसन्धानकाव्य ही है। वादिराज सूरि ने पार्श्वनाथ चरित के प्रारम्भ में द्विसन्धान काव्य की प्रशंसा करते हुए लिखा है -

‘अनेकभेदसन्धाना खनन्तो हृदये मुहु ।

वाणा धनञ्जयान्मुक्ता कर्णस्येव प्रिया कथम्॥”

अर्थात् धनञ्जय के द्वारा कहे गए अनेक सन्धान-अर्थभेद वाले और हृदयस्पर्शी वचन कानों को ही प्रिय कैसे लगेंगे जैसे कि अर्जुन के द्वारा छोड़े जाने वाले अनेक लक्ष्यों के भेदक मर्मभेदी वाण कण को प्रिय नहीं लगते ?

द्विसन्धान काव्य अपने समय में पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था। इसका उल्लेख धारा-धोश भोजगज के समकालीन आचार्य प्रभाचन्द्र ने अपने प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ० ४०२) में किया है।

जल्हण (१२वीं सदी) विरचित सूक्ति मुक्तावली में राजशेखर के नाम से धनञ्जय की प्रशंसा में निम्नलिखित पद्य उद्धृत है,--

‘द्विसन्धाने निपुणता स ता चक्र धनञ्जय ।

यया जात फल तस्य सता चक्रे धनञ्जय ॥’

इस श्लोक में राजशेखर ने धनञ्जय के द्विसन्धानकाव्य का मनोमग्नकर सरणि से उल्लेख किया है।

धनञ्जय कवि के द्वारा एक विषाणहार स्तोत्र भी बनाया गया है। यह अपने प्रसाद ओज और गाम्भीर्य के लिए प्रसिद्ध है। कहते हैं कि यह स्तोत्र कवि ने अपने सर्वदृष्ट पुत्र का विध उतारने के लिए बनाया था।

समयविचार-

इनके समय निर्णय के लिए निम्नलिखित प्रमाण हैं --

- (१) प्रमेयकमलमार्तण्ड आदि के रचयिता प्रभाचन्द्र (ई० ११वीं सदी) ने इनके द्विसन्धान-काव्य का उल्लेख किया है अतः ये ११वीं सदी के बाद के विद्वान् तो नहीं हैं।

- (२) इसी तरह वाविराज सूरि (सन् १०३५) ने पाश्वनाथ चरित में धनञ्जय और द्विसन्धान का निर्देश किया है अतः ये ११वीं सदी के बाद के नहीं हैं ।
- (३) जल्हण (१२वीं सदी) ने राजशेखर के नाम से सूक्तिमूकतावली में जो पद्य उद्धृत किया है, वह राजशेखर काव्यमीमांसाकार राजशेखर है । इनका उल्लेख सोमदेव (ई० ९६०) के यशस्तिलक चम्पू में पाया जाता है अतः राजशेखर का समय ई० १०वीं सदी सुनिश्चित है । राजशेखरके द्वारा प्रशंसित होने के कारण धनञ्जय का समय १०वीं सदी के बाद का नहीं हो सकता ।
- (४) डॉ० हीरालालजी ने षट्छंदागम प्रथम भाग की प्रस्तावना (पृ० ६२) में यह सूचित किया है कि जिनसेन के गुरु वीरसेन स्वामी ने धवला टीका (पृ० ३८७) में अनेक-कार्य नाममाला का निम्नलिखित श्लोक प्रमाणरूप में उद्धृत किया है —

“हितावेव प्रकारायै व्यवच्छेदे विपर्यये ।

प्रादुर्भाये ममाप्तौ च डनिगव्य विदुर्बुधा ॥”

यह श्लोक अनेकार्थ नाममाला का है । धवलाटीका वि० स० ८७३ सन ८१६ में समाप्त हुई थी अतः धनञ्जय का समय ९वीं सदी के बाद नहीं हो सकता ।

- (५) धनञ्जय ने अकलक देव का उल्लेख ‘प्रमाणमकलङ्कस्य’ श्लोक में किया है । अकलक का समय ई० ७वीं सदी निश्चित है, अतः धनञ्जय ७वीं सदी से पूर्व के नहीं हो सकते ।

संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास के लेखकद्वय ने धनञ्जय का समय ई० १२वां शतक का मध्य निर्धारित किया है । (पृ० १७४) उनमें अपने इस मत की पुष्टि के लिए डॉ० के० बी० पाठक महाशय का यह मत भी उद्धृत किया है कि—“धनञ्जय ने द्विसन्धान महाकाव्य की रचना ई० ११२३ और ११४० के मध्य में की है” । पर उपरोक्त प्रमाणों के आधार से धनञ्जय का समय ई० ८वीं सदी का अन्त और नवीं का पूर्वार्ध सिद्ध होता है । जल्हण की सूक्तिमूकतावली में जो ई० १२वीं सदी की रचना है, राजशेखर के नाम से उद्धृत ‘द्विसन्धाने निपुणता’ श्लोक काव्यमीमांसाकार राजशेखर का ही हो सकता है, न कि प्रबन्धकोश के कर्ता राजशेखर का । संस्कृत साहित्य के इतिहास के लेखकद्वय यहाँ भ्रांति कर बैठे हैं, वे स्वयं जल्हण को १२वीं सदी का विद्वान् लिखकर भी उसमें उद्धृत राजशेखर को १४वीं सदी का जैन राजशेखर बताते हैं ।

अतः धनञ्जय का समय उपर्युक्त प्रमाणोंके आधार में ई० ८वीं का उत्तर भाग और नवीं का पूर्व भाग प्रमाणित होता है ।

भाष्यकार अमरकीर्ति—

महापण्डित अमरकीर्ति ने नाममाला के भाष्य के अन्त में यह पुष्टिका वाक्य लिखा है,—
“इति महापण्डितश्रीमदमरकीर्तिना त्रैविद्येन श्री ऐन्द्रवशोत्पन्नेन शब्दबोधसा कृताया धनञ्जयनाम-मालायां प्रथमकाण्ड व्याख्यातम्” इससे इतना ही ज्ञात होता है कि अमरकीर्ति ‘त्रैविद्य’ उपाधि से विभूषित थे और वे सेन्द्रवश (सेनवश) में उत्पन्न हुए थे ।

इन्होंने अपने को ‘शब्दवेधा’ उपाधि से अलङ्कृत किया है ।

मंगल श्लोको में पूज्यपाद अकलङ्क विद्यानन्दि और समन्तभद्र के साथ ही साथ एक कल्याण-

१ इसी के आधार से कल्पद्रुमकोश की प्रस्तावना (P XXXII) में श्री रामावतार शर्मा ने भी धनञ्जय का समय १२वीं सदी लिखा है ।

कीर्ति को भी नमस्कार किया है। इन्होंने ग्रन्थ के बीच में जहाँ आवश्यकता भी नहीं है वहाँ भी अपना नाम देने में सकोच नहीं किया है। कई स्थानों पर धनञ्जय के श्लोको की उत्थानिका में भी “सम्प्रति मनुष्यवर्गं आरभ्यते अमरकीर्तिना” (पृ० १३) आदि लिखा है। जो स्पष्टतः भ्रम उत्पन्न करता है। एक जगह तो धनञ्जय के इस श्लोकाश की व्याख्या करते हुए स्वयं अपना ही नाम लिख दिया है—“वारिधिवर्ष्यतेऽधुना। अधुना इदानीं वारिधिवर्ष्यते कथ्यते। केन भाष्यकर्त्रा श्रीमदमरकीर्तिना। स्पष्टतया यहाँ ‘केन’ का उत्तर ‘धनञ्जयेन’ होना चाहिए था।

अमरकीर्ति नाम के तीन विद्वानों का पता लगता है—

(१) ‘छक्कम्मोवएस’ आदि ग्रन्थों के रचयिता अमरकीर्ति^१। इन्होंने वि० स० १२४७ भादो सुदी १४ के दिन छक्कम्मोवएस ग्रन्थ समाप्त किया था। अर्थात् ये ईसवीय १२वीं सदी के अन्तिम भाग और तेरहवीं के प्रारम्भ में विद्यमान थे। ये अमरगति आचार्य की परम्परा में हुए हैं। इनकी गुरु परम्परा यह है—अमरगति, शान्तिषेण, अमरसेन, श्रीषेण, चन्द्रकीर्ति और चन्द्रकीर्ति के शिष्य अमरकीर्ति।

(२) वर्धमान के प्रगुरु अमरकीर्ति। इनकी परम्परा इस प्रकार है^२। . देवेन्द्र विशालकीर्ति, शुभकीर्ति, धर्मभूषण, अमरकीर्ति, . धर्मभूषण वर्धमान। वर्धमान ने शक संवत् १२९५ वैशाख सुदी ३ बुधवार को धर्मभूषण की निषद्या बनवाई थी। इस शिलालेख के अनुसार अमरकीर्ति का समय शक १२५० के आसपास सिद्ध होता है। ये ईसवीय १४वीं सदी के विद्वान् थे। इनके इस समय का समर्थन शक १३०७ में उत्कीर्ण विजयनगर के शिलालेख से भी होता है।

(३) दशभक्त्यादि महाशास्त्र के रचयिता वर्धमान के समकालीन, विद्यानन्द के पुत्र विशालकीर्ति के सधर्मा अमरकीर्ति। इनके सम्बन्ध में दशभक्त्यादिशास्त्र में लिखा है—

“जीयादमरकीर्त्यख्यभट्टारकशिरोमणि।

विशालकीर्तियोगीन्द्रसधर्मा शास्त्रकोविद॥

अमरकीर्तिमुनिविमलाशय कुसुमचापमदाचलवज्रभृत्।

जिनमनापहुनारितमाश्रय यो जयति निर्मलधर्मगुणाश्रय॥”

अर्थात्—शास्त्रकोविद विमलाशय कामजेता निर्मलगुण और धर्म के आश्रय तथा जिनमतके प्रकाशक अमरकीर्ति भट्टारक विशालकीर्ति के सधर्मा थे।

विशालकीर्ति के पिता विद्यानन्द का स्वर्गवास शक १४०३ सन् १४८१ में हुआ था। यह उल्लेख दशभक्त्यादि महाशास्त्र में विद्यमान है^३। अतः उनके पुत्र विशालकीर्ति के सधर्मा अमरकीर्ति का समय करीब सन् १४५० अर्थात् ईसवीय १५ वीं शताब्दी सिद्ध होता है^४। दशभक्त्यादि शास्त्र का समाप्तिकाल १४०४ शक अर्थात् १४८२ ई० है।

१ देखो डा० हीरालाल का ‘अमरकीर्तिगणि और उनका षट्कर्मादेश’ लेख। जैन मि० भास्कर भाग २ अंक ३।

२ जैन शिलालेख संग्रहका १११वाँ शिलालेख।

३ प्रशस्तिसंग्रह के सम्पादक प० के० भुजबली शास्त्री ने ‘शाके वह्निखराब्धिचन्द्रकलिते सवत्सरे’ का अर्थ शक १४६३ किया है। जब कि दशभक्त्यादि शास्त्र की समाप्ति सूचक ‘शाके वेदखराब्धिचन्द्रकलिते’ का अर्थ १४०४ शक किया है। दोनों जगह ख का शून्य लेना चाहिये। यदि दशभक्त्यादि शास्त्र शक १४०४ में समाप्त हुआ है तो उसमें शक १४६३ में हुई विद्यानन्द की मृत्यु की चर्चा कैसे आ सकती है? ४. देखो प्रशस्तिसंग्रह, पृ० १२८।

इन तीन अमरकीर्ति में प्रस्तुत ग्रन्थ के रचयिता छक्कम्मोवएस के रचयिता नहीं हो सकते क्योंकि उनका काल वि० १२४७ के आसपास है, जब कि नाममाला के भाष्य (पृ० ६२) में आशाधर के महाभिषेक से उद्धरण दिया है। आशाधर ने अपना अनगारधर्माभूत वि० १३०० में समाप्त किया था। अतः प्रथम अमरकीर्ति इस ग्रन्थ के रचयिता नहीं हो सकते।

इस से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रस्तुत ग्रन्थ के भाष्यकर्ता अमरकीर्ति वि० १३०० अर्थात् ईसवीय १२४३ तेरहवीं सदी के पहिले के विद्वान् तो नहीं हैं। इन्होंने भाष्य में भोज (११वीं सदी) इन्द्रनन्दि (१०वीं सदी) पद्यनन्दि (१२वीं सदी) सोमप्रभ (१२वीं सदी) हेमचन्द्र (१२-१३वीं सदी) आदि के ग्रन्थों से भी नामोल्लेख पूर्वक अवतरण लिए हैं। शेष दो अमरकीर्ति पृथक् पृथक् मिलते तो हैं ही। द्वितीय अमरकीर्ति की प्रशंसा में विजयपुर के शिलालेख में निम्नलिखित पद्य मिलते हैं—

“जिष्यस्तस्य गुरोरासीदनर्गलतपोनिधि ।

श्रीमानमरकीर्त्यायिं देशिकाप्रेसर शमी ॥

निजपक्षपुटकवाट घटयित्वानलरोधतो हृदये ।

अविचलितबोधवीप तममरकीर्ति भजे तमोहरणम् ॥”

अर्थात्—अमरकीर्ति महान् तपस्वी शान्त और लम्बी समाधि लगानेवाले योगी थे। इस वर्णन से ज्ञात होता है कि ये अमरकीर्ति शास्त्रकार की अपेक्षा योगी और तपस्वी ही विशेष रूप से थे। नाममाला भाष्य में जिस प्रकार की यशोलिप्सा टपकती है वह एक योगी और तपस्वी में नहीं हो सकती। अतः मेरे विचार से द्वितीय अमरकीर्ति भी प्रस्तुत ग्रन्थ के रचयिता नहीं है।

तृतीय अमरकीर्ति के वर्णन में ‘शास्त्रकोषिद’ विशेषण उनके पाण्डित्य का निदर्श कर रहा है। अतः हमारे प्रकृत ग्रन्थकार दशमकृत्यादि महाशास्त्र के रचयिता वर्धमान के समकालीन, विद्यानन्द के पुत्र विशालकीर्ति के सधर्मा अमरकीर्ति हैं। ये सन् १४५० के आसपास अर्थात् पन्द्रहवीं सदी के विद्वान् थे। इस समय का साधक एक प्रमाण यह भी हो सकता है कि इनने कल्याणकीर्ति को नमस्कार किया है। कल्याणकीर्ति का एक जिनयज्ञफलोदय ग्रन्थ मिलता है।^१ उसकी प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि ये भट्टारक ललितकीर्ति के शिष्य थे। कल्याणकीर्ति ने जेट सुदी ५ शक सवत् १३५० में जिनयज्ञफलोदय समाप्त किया था। अर्थात् सन् १४२८ में यह ग्रन्थ समाप्त हुआ था। यदि यही कल्याणकीर्ति अमरकीर्ति के द्वारा स्मृत हुए हैं, तो मानना होगा कि अमरकीर्ति पन्द्रहवीं सदी के विद्वान् हैं।

आभार—

इस ग्रन्थ के सम्पादक प० शम्भुनाथजी त्रिपाठी व्याकरणाचार्य सप्ततीर्थ अनेक शास्त्रों के गभीर विद्वान् हैं। वर्षों तक उनमें जैन विद्यालय इन्दौर में साहित्य और व्याकरण का अध्यापन कराया है। वे जैन परम्परा से पूरी तरह परिचित हैं। उनके जैसे अगाध ज्ञानी निरहङ्कारी और विद्याजीवी विद्वान् बिरल हैं। उनके तलस्पर्शी गभीर पाण्डित्य का निदर्शक यह स्तुति है। ज्ञानपीठ इस ग्रन्थ के सम्पादक के रूप में उन्हें पाकर गौरवान्वित है।

डॉ० पी० एल० वैद्य ने इस ग्रन्थ का प्राक्कथन लिखकर हमें उपकृत किया है। प० हर-गोविन्दजी शास्त्री व्याकरणाचार्य ने अनेकार्थ निघण्टु का सम्पादन किया है। प० महादेव चतुर्वेदी ने सम्पादन परिशिष्टनिर्माण और प्रूफ सशोधन में पूरा योग दिया है। प० ब्रजनन्दनजी मिश्र व्याकरणाचार्य ने भी प्रेस कापी आदि में पूरा सहयोग दिया है। गुलाबचन्द्रजी व्याकरणाचार्य एम० ए०

१ देखो प्रशस्ति संग्रह पृ० १६।

ने प्राक्कथन का हिन्दी अनुवाद किया है। पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार ने अनेकार्थनिघण्टु और एकाक्षरी कोश की प्रति भेजी। पं० श्रीनिवासजी शास्त्री ने भाष्य की प्रति भेज कर अनुगृहीत किया है।

भारतीय ज्ञानपीठ के संस्थापक सेठ शान्तिप्रसाद जी तथा अध्यक्ष सौ० रमा रानी जी की संस्कृतिनिष्ठा, उदार दृष्टि, ज्ञानानुराग और सौजन्य इस संस्था के जीवन हैं। अपनी स्व० पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवी के स्मरणार्थ मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला के संस्कृत विभाग का यह छठवाँ ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है। इस भद्र दम्पति से ऐसे ही अनेक लोकोदयकारी सांस्कृतिक कार्यों की आशा है।

इस संस्था के कर्मनिष्ठ मन्त्री श्री अयोध्याप्रसाद जी गोयलीय की कार्यदृष्टि, सत्प्रेरणा और प्रयत्न से इस संस्था का इस रूप में सञ्चालन हो रहा है। मैं इन सब का आभार मानता हूँ।

भारतीय ज्ञानपीठ काशी,
पोष शुक्ल १५
वीर सं० २४७६
३।१।५०

}

—महेन्द्र कुमार जेन
ग्रन्थमाला सम्पादक

प्रकाशन-व्यय

४००) कागज २० रीम २२×२९/३२ पोण्ड	५८५।।।)	कार्यालय व्यवस्था प्रूफ सशोधन आदि
९७५) छपाई पृष्ठ १९६ दर ५०) प्रति फार्म	४२६=)	सम्पादन
२००) जिल्द बंधाई	५००)	भेंट आलोचना, विज्ञापन आदि
६०) कवर छपाई	७८७।।)	कमीशन
४०) कवर कागज		

कुल लागत ३९३४।=)

१००० प्रति छपी। लागत एक प्रति ३।।।=)

मूल्य ३।।)

सभाष्या नाममाला

अनेकार्थनिघण्टुः एकाद्वारी कोशश्च

महाकविधनञ्जयप्रणीता नाममाला अमरकीर्तिविरचितभाष्योपेता

श्रीपूज्यपादमकलङ्कमनन्तबोध विद्यादिनन्दिनमिन च समन्तभद्रम् ।
कल्याणकीर्तिममल प्रणिपत्य वीग भाष्य करोमि परम बुधबुद्धिसिद्धये ॥ १ ॥

सरस्वत्या. प्रसादेन रच्यतेऽमरकीर्तिना ।

भाष्यं धनञ्जयस्येदं बालानां धीविवृद्धये ॥ २ ॥

यद्यपि धनञ्जयो (येनो) क्तो भावो वक्तुं न शक्यते ।

५

तथाऽयं प्रवक्ष्यामि वाग्देव्याश्च प्रसादतः ॥ ३ ॥

पूर्वाचार्यकृता प्रायो व्युत्पत्तिरुपदिश्यते ।

क्वापि क्वापि स्वबुद्ध्याऽपि क्षम्यतामत्र मे दुषैः ॥ ४ ॥

शिष्टासमाचार (ष्टाचार) परिपालनाथ नमस्कारसमुद्गतधर्मद्वारेण निर्विघ्नशास्त्रसमाप्त्यर्थं
च धनञ्जयबुधः इष्टाधिकृतदेवतानमस्कारार्थं श्लोकमाह—

१०

तन्नमामि परं ज्योतिरवाङ्मनसगोचरम् ।

उन्मूल्यत्यविद्यां यद् विद्यामुन्मीलयत्यपि ॥१॥

तत्परं ज्योतिः—

“णमो^१ अरहताण णमो सिद्धाणं णमो आइरियाण । णमो उवज्झायाणं णमो लोण सव्वसा-
हूण ॥” ईदृग्विधम् । नमामि नमस्करोमि । किञ्चिशिष्टम् ? अवाङ्मनसगोचरम् वाक् च वाणी मनस^२ १५
च चित्तवाङ्मनसे तयोर्वाङ्मनसयोर्न गोचरं न प्रत्यक्षीभूतम् अवाङ्मनसगोचरम् अलक्ष्यस्वरूपत्वात् ।
तथा चोक्तं शब्दभेदे—

“नभन्तु^३ नभसा सार्धं मनस मनसाऽपि च । तमसेन तमः प्रोक्तं तपन्तु तपसा सह ॥”

तथा च पञ्चनन्दिशास्त्रे—

“श्शानुभृत्यै भवेद् गम्य रम्य यश्चात्मवेदिनाम् । जाने तत्परं ज्योतिरवाङ्मनसगोचरम् ॥” २०

१ एतत्पञ्चनमस्कारात्मकमन्त्रप्रतिपाद्यमहंत्विद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधारुपमत्र ज्योतिः । २ नभ तु
नभसा सार्धमित्यादिशब्दभेदोक्तप्रमाणतोऽकारान्तोऽपि मनसशब्दः साधु । ३ साम्प्रतं निर्णयसागरयन्त्रा
लयमुद्रिते शब्दभेदप्रकाशग्रन्थे एतत्पद्यं किञ्चिदन्यथोपलब्धम् । तदित्थम्—

कुमुद कुमुदा चापि योषित्स्याद् योषिता सह । तमस्तु तमसा प्रोक्तं रजसाऽपि रजः स्मृतम् ॥ ३४ ॥
अत्र कालप्रकर्षाद्यपि मनसशब्दः प्रपञ्चस्तथापि तदानीन्तनमूलपुस्तके तत्तथैवासीदिति ध्रुवम् ।
४. प० प० २२।१।

यत् अविद्यां पापविद्याम्, चादुकारसूत्रम्, वैद्यकसूत्रम्, चित्रकर्मादिसूत्रम्, वृत्त्यसूत्रम्, गन्धर्व-
सूत्रम्, पटह्यसूत्रम्, अगदसूत्रम्, योद्धसूत्रम् मद्यसूत्रम्, शूतसूत्रम्, राजनीतिसूत्रम्, चतुरङ्गसूत्रञ्च । गज-
तुरगपुरुषस्त्रीक्षेत्रगोखड्गदण्डाञ्जनानां [च विद्या पापविद्या] कथ्यते, ताम् उन्मूलयति मूलादुच्छेदयति ।
यत् विद्यामपि उन्मीलयति स्थापयतीत्यर्थः ।

५

द्वयं द्वितयमुभयं यमलं युगलं युगम् ।

युग्मं द्वन्द्वं यमं द्वैतं पादयोः पातु जैनयोः ॥२॥

दश युग्मे । द्वा अवयवौ यस्य तद् द्वयम्, “द्वित्रिभ्यामयङ् वा^२ ।” द्वितयम् द्वौ अवयवौ
यस्य तद् द्वितयम् । उभयम् उभौ अवयवौ यस्य “द्वित्रिभ्यामयङ्” इत्यनुवर्तमाने “उभाभ्या नित्यम्^३”
इत्ययङ् न तु तयङ् । यमलं यमं लातीति यमलम् । युगलं युगं लातीति युगलम् । युगलं युगलकं च । युगं
१० युज्यते धर्मवृत्त्या युगम्^४ । समाश्रयत्यन्यं युगम् । युग्मम् युनक्ति द्वितीयेन युज्यते श्लिष्यते युग्मम् ।
“युजिरुचिजिज्ञा ध्मन्” ।^५ द्वन्द्वम् द्वौ द्वावित्यर्थः द्वन्द्वम् । यच्छ्रुत्युपरमत्येकत्वात् यमम् । द्वाभ्यामित
द्वीतम्, द्वीतमेव द्वैतम् । पातु रक्षतु ।

ऋषिर्मुनिर्यतिभिर्भिक्षुस्तापसः संशितो व्रती ।

तपस्वी संयमी योगी वर्णी माधुश्च पातु वः ॥३॥

१५

द्वादश मुनौ । ऋषिर्नाम कालत्रयं जानातीति ऋषिः । “गिरिशुचिगृह्णाम्युपधात्किः^६” । तथा
च यशस्तिलके^७—

‘रेपणात्स्नेहराशीनामृषिमाहुर्मनीषिणः ।’

यतिः यो देहमात्रारामं सम्यग्विद्यानौलामेन तृष्णामवितरणाय योगाय शुक्लध्यानधर्म-
ध्यानाय यतते स यतिः^८ । तथा च यशस्तिलके —

२०

‘यः पापपाशनाशाय यतते स यतिर्भवेत् ।’

मुनिः, तपःप्रभावात् सर्वैर्मन्यते मुनिः । “मन्यतेः किरत उच्च^९ ।” तथा च—

‘‘मान्यत्वादाप्तविद्यानां महद्भिः कीत्यते मुनिः ।’

भिक्षुः भिक्षते इत्येवशीलो भिक्षुः । “सन्नन्ताशसिभिक्षाम्” ।^{१०} तापसः, तपो विद्यते यस्य
स तापसः । “अण्^{११} च ।” तपःसहस्राभ्यां न केवलमस्यर्थं विनीनौ अण् च, वृद्धिः । संशितः सशायते
२५ स्म संशितः । “‘‘श्यतेव्रते नित्यम् ।’ व्यवस्थितविभाषया शो तनूकरणे इत्यस्य व्रतेऽर्थे नित्यमिकारो
भवति, विकल्पो नास्ति । व्रती, “हिसाऽनृतस्तेयाऽब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम्” ।^{१२} व्रतं विद्यतेऽस्य
व्रती । तपस्वी “अनशनावमौर्दर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्याभनकायक्लेशा बाह्या
तपः^{१३} ।” “प्रायश्चित्तविनयवैद्यावृत्त्यस्वाध्यायव्युत्सर्गाध्यानान्युत्तरम्” ।^{१४} तपश्च विद्यते यस्येति
तपस्वी । संयमी, संयमनं संयमः इन्द्रियप्राणलक्षणः । संयमो विद्यते यस्येति संयमी । योगी, * युजिर्^{१५}

१. यत् इत्यस्य पूर्वम् ‘तथा’ इति पदं योज्यम् । २. हे० श० ७।१।१५। ३. एतत्सूत्रं हे०
श० नोपलब्धम् । परंतु द्वित्रिभ्यामयङ्वा इत्यनुवर्तमाने उभाभ्या नित्यमिति टीकोक्तवचनात्तत्त्वमेवै-
तत्सूत्रमिति निश्चीयते । ४. कालवाचकयुगपरतयेव व्युत्पत्तिः, प्रकृतार्थे तु युगं लातीत्येव । ५. का० उ०
१।५७ इति ध्मक् प्रत्ययः कुत्वञ्च । ६. गृह्णाम्युपधात्किः का० उ० ३।१५ इति क्प्रि० । ७. यशस्तिल०
आ० ८. का० ४४ । ८. यती प्रत्यये । इः सर्वधातुभ्यः का० उ० ३।१४ इप्र० । ९. यश० आ० ८ कल्प
४४ । १०. का० उ० ४।३ इति क्प्रि० । मनु अवबोधने । ११. यश० आ० ८ कल्प ४४ । १२. का०
सू० ४। ४। ५१ । १३. पा० सू० १।२।१०३ । १४. इत्येतिव व्रते नित्यमिति पातञ्जलभाष्यम् ७।४।४१ ।
१५. त० सू० ७।१ । १६. त० सू० । १७. त० सू० । १८. * एवञ्चिह्निताशस्थाने युजिर् योगे रुधादौ
परस्मैपदी युज् समाधौ वा दिवादौ आत्मनेपदी इत्येवम्पाठः सुगन्तः ।

योगे, युज समर्थौ पर० युज् समर्थौ वा० दि० । आत्म० युज् रुधादौ । पर० युज समर्थौ वा दि० ।
आत्म० * युनक्ति युज्यते वा इत्येवंशील योगी । युजभजेत्यादिना^१ विनिष् । वर्णा, वर्णौ ब्रह्मचर्यमस्त्यस्य
वर्णा । साधुः, शिष्याणा दीक्षादिदानाध्यापनपराङ्मुख सकलकर्मोन्मूलनसमर्थो मोक्षमार्गाऽनुष्ठानपरो य.
स साधु । सिद्धि साधयति साधययिष्यति वा साधुः ।

“स व्याख्याति न शास्त्रं न ददाति दीक्षादिक च शिष्याणाम् ।

५

कर्मोन्मूलनशक्तौ [धर्म] ध्यानः स चात्र साधुर्ज्ञेयः ॥”

“कृपापाजिमीस्वदिसाप्यशूद्रपण्डितचरित्रचिन्त्य उण्” । वो युष्मान् पातु रक्षतु ।

दीक्षितं मौण्ड्यं शिष्यं च तमन्तेवासिनं विदुः ।

चत्वारः शिष्ये । [दीक्षितम्] दीक्षा सजाताऽस्येति । तारकितदिदर्शनात्सजातेऽर्थ इतच् ।
मौण्ड्यम् मण्डे मन्त्रके भव वपनादिक मौण्ड्यम्^४ । शिष्यम्, शिष्यते व्युत्पाद्यते गुरुणा शिष्यः । १०
“वृश्दजुगीणशामुस्तुगुहा क्यप्” । गुरोरन्ते वसत्यन्तेवासी तम् । विदुः कथयन्ति ।

कृतान्ताऽगमसिद्धान्ताः

त्रयः सिद्धान्ते । लोकाना सन्देहस्य कृतः अन्तो विनाशो येन सः कृतान्तः । आगच्छतीत्यागमः,
आगमनमागमो वा । सिद्धान्तो [सिद्धोऽन्तो] निधयो यस्य स सिद्धान्तः, समयोऽपि । सर्वे पुति ।

ग्रन्थः शास्त्रमतः परम् ॥ ४ ॥

१५

ग्रन्थाति^६ रचयतीति ग्रन्थः । शास्त्र शास्त्रम् ।

भूमिर्भूः पृथिवी पृथ्वी गह्वरी मेदिनी मही ।

धरा वसुमती धात्री क्षमा विश्वम्भराऽवनिः ॥ ५ ॥

वसुधा धरणी क्षोणी क्षमा धरित्री क्षितिश्च कुः ।

कुम्भिनीलोर्वग चोर्वी जगती गौर्वसुन्धरा ॥ ६ ॥

२०

समविशतिर्भूमौ । भवति सर्वमत्र भूमिः । “ऊर्मिभूमिरग्रय १ ।” भवत्यस्मात्सर्व भूः ।
रेफान्तञ्चाव्ययम् । प्रथते पृथिवी पृथ्वी च । गूह्यतीति^२ गह्वरी । रुहरीति पाठः । न्याये मेयति स्निह्यति
मधुकैटभमेदोयोगाद् वा मेदिनी । मह्यते मही । मह पूजायाम् । धरत्यगान् धरा । वस्त्यस्या
वसुमती । दधाति सद्यह्नाति भेषत्राय वैद्यो यामिति धात्री । “कर्मणि” घेट धृन् । “कचिदधातेरपीच्छन्ति ।
क्षमण क्षमा १ । “पाऽनुवन्धमिदादिभ्यस्त्वङ्” । विश्वं त्रिमूर्तिं विश्वम्भरा । “नाग्निं तृप्तृजिघारि- २५
तपिदमिसहा सजायाम्”^३ । स्वप्रत्ययः । भूतानवति अवनिः । क्षियामीः । “३” “ऋतुसृष्टृजृजृम्यश्यविवृति-
ग्रहिभ्योऽनि ।” अनिः प्रत्ययः । वसु दधातीति वसुधा । धरति पर्वतानिति धरणिः । “वृत्रोऽनिः”^४ ।
क्षोति क्षुपम् क्षोणिः । क्षियामी । क्षोणी । “टु क्षु रु कु शब्दे” । क्षमते भार क्षमा क्षमा च । धरति
सर्वं धरित्री । क्षयति क्षय प्राप्नोति प्रलयकाले क्षितिः । कायति कूयते वा कुः । कुम्भो रत्नोत्पत्तिद्रोपो-
ऽस्त्यस्याः कुम्भिनी । एति जन इमाम् इला । “इगसुराकपिलिकादिदर्शनात्सत्वम् ।”^५ “शृष्टादयः— ३०

१. युजभजभुजद्विषदृष्टदृष्टाङ्गीडत्यजानुरुधाड्यमाट्माड्यसरञ्जाऽभ्याट् हना च इति पूर्णं का०
सू० ४।४।२२। २. का० उ० १।१। ३. तदस्य सजत तारकादेरितच् इति का० सू० पू० सू० ५०८ ।
४. मौण्ड्यमस्यास्तोत्यपि विग्रहे निवेश्यम् । अर्श आदिभ्योऽच् । ५ वा० सू० ४।२।२३ । ६. ग्रथ्यते
रच्यते इति कर्मणि विग्रहो योग्यः । ७ का० उ० ३।३२ इति भवतेर्मिप्र० कित्च च । ८ गूह्यतीति गह्वरी
रुहरी इत्यापि पाठ इति युक्तम् । ९ का० सू० ४।४।६० इति धृन् । १० वस्तुतस्तु क्षमते इति क्षमा,
पचादित्वादच्, टाप् । ११ का० सू० ४।५।८२ । १२. का० सू० ४।३।४४ । १३ का० उ० २।४३ ।
१४ का० उ० २।४३ ऋतुसृष्टृजृजृ इत्यादसृजम् । १५. का० उ० २।१७ ।

“शूद्रोऽप्रवज्रविप्रभद्रगौरमेरीराः” एते रक्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । क्लेशमुर्वति हिनस्ति फलेन उर्वरा । उर्वी । उर्वी धुर्वी दुर्वी धुर्वी हिसार्याः । सर्वमूर्वति व्याप्नोति उर्वी । ज्ञियामी. उर्वी । राजान्तर गच्छति जगतिः । ज्ञियामीः जगती । पूजा गच्छति गौः । ज्ञीनीः । गमेडोः । “गौरौ धुटि” इत्यौत्वम् । धृज् धारणे । धृः । धरति धरते । इज् । अस्य वृद्धिः । धारि जातम् । वसु वसूनि वा धारयति वसुन्धरा । नाम्नि
 ५ तृभू^२ खप्रत्यय । कारितस्या^३ कारितलोपः । अभिधानात् ह्रस्वः । “ह्रस्वा रूषोमोऽन्तः ।” “क्षिया” मादा ।” भूतधात्री, रत्नगर्भा, विपुला, मागराम्बरा, रत्नवती, रसा, अचला, अनन्ता, डयाम्—काश्यपी, गोत्रा, स्थिरा, सर्वसहा ।

तत्पर्यायधरः शैलस्तत्पर्यायपतिर्नृपः ।

तत्पर्यायरुहो वृक्षः शब्दमन्यं च योजयेत् ॥ ७ ॥

- १० योजयेत् योऽयेत् अन्यं शब्दं च । तत्पर्यायधरः शैल । भूमिधर, भूधर, पृथिवीधरः पृथ्वीधर, गह्वरीधर, मेदिनीधर, महीधर, धराधरः, वसुमतीधर, धात्रीधर, विश्वम्भराधर, श्रवणीधरः, वसुधाधर, धरणीधर, क्षोणीधर, क्षमाधर, धरित्रीधरः, क्षितिधर, कुधरः, कुम्भिनीधर, इलाधर, उर्वराधरः, उर्वीधर, जगतीधर, गोधर, वसुन्धराधर । समविशति नामानि शैलस्य ज्ञेयानि । तत्पर्यायपतिर्नृप । भूमिपतिः, भूपति, पृथिवीपतिः, पृथ्वीपति, गह्वरीपति, मेदिनीपति, महीपति, धरापति, वसुमतीपति, धात्रीपति, क्षमापति, विश्वम्भरापति, श्रवणीपति, वसुधापति, धरणीपति, क्षोणीपति, क्षमापति, धरित्रीपति, क्षितिपति, कुपति, कुम्भिनीपति, इलापति, उर्वरापति, उर्वीपति, जगतीपति, गोपति, वसुन्धरापति । समविशति नामानि नृपस्येति शतव्यानि । तत्पर्यायरुहो वृक्षः । भूमिरुह, भूरुह, पृथिवीरुह, पृथ्वीरुह, गह्वरीरुह, मेदिनीरुह, महीरुह, धरारुह, वसुमतीरुह, धात्रीरुह, क्षमारुह, विश्वम्भरारुह, श्रवणीरुह, वसुधारुह, धरणीरुह, क्षोणीरुह, क्षमारुह, धरित्रीरुह, क्षितिरुह, कुरुह, कुम्भिनीरुह, इलारुह, उर्वरारुह, उर्वीरुह, जगतीरुह, गौरुह, वसुन्धरारुह । समविशतिपर्यायनामानि वृक्षस्येति शतव्यानि ।
- २० दरीभृदचलः शृङ्गी पर्वतः मानुमान् गिरिः ।

नगः शिलोच्चयोऽद्रिश्च शिखरी त्रिककुन्मरुत् ॥ ८ ॥

- २५ द्वादश पर्वतः । दरीं विभर्त्तति दरीभृत् । स्वस्थानात् न चलति अचल । शृङ्गमस्यास्तीति शृङ्गी । पर्वणि सन्त्यस्य पर्वत । “पर्वमरुभ्या त ।” सानुरस्यस्य सानुमान् । जल गिरतीति गिरिः । “गूनाभ्युपधात्कि ।” न गच्छतीति नग । “ऽडोऽमज्ञायामपि ।” नाम्युपपदे गमेडो भवति । शिला उचीयन्तेऽत्र, शिलोच्चय । खम् आकाशम् अतीति अद्रि । “भूक्वदिभ्य क्रि ।” शिखरमस्त्यस्य शिखरो । त्रिक पृष्ठाधर स्कुन्नाति विस्तारयतीति त्रिककुत् । वर्णविकारत्वाद् भकारस्य षतकार । स्तम्भु । स्तम्भुस्कुम्भुस्कुम्भुस्कुम्भुश्चेति वक्तव्यमत्रान्य धातो प्रयोग ।” ग्रियन्ते क्षुद्रजन्तवोऽस्य
 ३० स्पशेनेति मरुत् । “मृशोरुति ।” शैल, क्षितिधर, गोत्र, आहार्य, कुधर, प्रावा ।

प्रस्थं पार्श्वं तटं सानुर्मेखलोपत्यका तटी ।

नितम्बमन्तो दन्तश्च तद्वानपि गिरिः स्मृतः ॥ ९ ॥

१ का० सू० २।२।३३ । २ नाम्नि तृभृजिधारितपिदमितहा सज्ञायाम् इति पूर्णं का० सू० ४।३।४४ । ३ कारितस्यानामिड्विकरणे इति पूर्णम् का० सू० ३।६।४४ । ४ का० सू० ४।१।२२ । ५ का० सू० २।४।४० । ६ पर्वमस्तत् श० च० सू० ४।१।७३ । ७ का० उ० ३।१३ । ८ का० सू० ४।३।४७ । ९ का० उ० ३।५० । १० वर्णविनाशेन सकारस्य लोपोऽपि बोध्यः । ११ श० च० २।१।९६ । त्रीणि ककुदानि शृङ्गाण्यस्येति विग्रहोऽन्यत्र । त्रिककुत्पर्वते पा० सू० ५ । ४।१०७ इत्यकारलोपः । १२ का० उ० १।३० ।

पर्वतमेखलाया दश । प्रस्थीयते जनेनात्र प्रस्थम् । “ नान्निस्थश्च ” क । उभयम् । पाति
रक्षति जनान् पार्श्वम् । तदति उच्छ्राय गच्छति तटम् । त्रिषु लिङ्गेषु । सनोतीति सानु । २ कृवापा-
जिमोम्बदिसाध्यशूढपण्णिजनचरिचट्ठिय उण् । ” “ पण दाने ” अस्य धातो प्रयोगः । मेहनस्य ख तस्य मा
लातीति निरुक्तिः । भिनोति प्रक्षिपति कामिचित्तानिति वा मेखला । उपत्यका उप समीपे भवा उप-
त्यका । “ उपाधिभ्या त्यकलासन्गारुदयोः । ” तटमस्थास्ति तटी । क्रीडार्थं जनस्ताम्यतीति^४ नितम्बः । ५
अमतीत्यन्तः । “ मृगृवाहस्यमिदमिलूपूयस्तः ” एभ्यस्तप्रत्ययो भवति । दम्यतेऽ (म) द्यतेऽनेन दन्तः ।
“ मृगृवाहस्यमिदमिलूपूयस्तः । ” तत्प्रत्ययः । तद्वानपि गिरिः स्मृतः । प्रस्थवान्, पार्श्ववान्, तटवान्,
सानुमान्, मेखलावान्, उपत्यकावान्, तटीमान्, नितम्बवान्, अन्तवान्, दन्तवान् ।

राजाधिपः पतिः स्वामी नाथः पण्डितः प्रभुः ।

ईश्वरो विभुगीशानो भर्तेन्द्र इन ईशिता ॥१०॥

चतुर्दश राशि । न्यायमार्गेण राजते इति राजा । “वृषितन्त्रिराजिवन्विप्रदिवियुम्य” कनिः । “को यण्वद्भावाथ” । एभ्यः कनि प्रत्ययो भवति । अधि ऐश्वर्यं पाति रक्षतीति अधिप । तथा च उपसर्गवृत्तौ-अधि वशीकरणाधिष्ठानाध्ययनेश्वर्यस्मरणाधिकेषु ।” पात्यवति पति । “पातेर्ङिति । अस्माद्-ङिति प्रत्ययो भवति । “अमु गता” सुपूर्वः । शोभनममतीति स्वामी । “नावमेरिन्” दीर्घश्च ।” साधुपपदे अमेर्यान्तो रिन् प्रत्ययो भवति । नाथयति रिप् नाथः । “तृहि वृहि वृद्धौ” । ढो वृढ । अत एव वृहः परिपूर्वात् परिवृट् इति परिवर्हति स्म वा परिवृढ । “गत्यर्थो” इति क । “परिवृढहृढो प्रभुबलवतो” एतौ प्रभुबलवतोरर्थयोर्थयास्तस्य निगात्येते । परिपूर्वस्य वृ ढेरिडभावा नलोपश्च । वृहहृढोः प्रकृत्यन्तरयोरपीत्यन्ये । ये तु प्रकृत्यन्तरयो रिच्छन्ति, तेषाम्मते “तृह तृहि वृह वृहि हृह वृद्धौ” इति पाठान्तर वर्तते । तेन पाठान्तरेण हृहस्य वृहस्य वा “तृढः वृढ” इति निपातः । तत्र वर्हति स्म दर्हति स्म इति वाक्य क्रियते । प्रभवतीति प्रभुः । “प्रभुवो दुर्विशम्प्रेयु च” । “ढानुबन्ध” ऊकारलोपः । “ईश ऐश्वर्ये” ईष्टे इत्येवशील ईश्वर । “कशिपिसिभासीशस्थाप्रमदा च ।” एषा वरो भवति तच्छोलादिषु । विभवतीति विभु । दुप्रत्ययः । ईष्टे शक्नोति सृष्टिरस्थितिप्रलयान् कर्तुम् ईशानः । आश्रितजनान् विभर्ति पोषयति भर्ता । इन्दति परमैश्वर्ययुक्तो भवतीति इन्द्रः । “स्थायितश्चित्रश्चिशक्तिपिभुदिरुदिमदिमन्दचन्द्रुन्दिन्द्रियो रक् ।” एतीति इन्द्रः । “इण्जिजृम्भियो नक् ।” ईष्टे ईशिता ।

अनोकहस्तरुः शाखी चिटपी फलिनो नगः ।

द्रुमोऽङ्घ्रिपः फलेग्राही पादपोऽगो वनस्पतिः ॥ ११ ॥

द्वादश वृत्ते। अनस, शकटस्य अक गति हन्तीति **अनोकह**। ^{१३}“अनोकहप्रत्ययेन वा अनोकह।
तरन्त्यनेनातप **तहः**।” ^{१४}“भृमृतचरित्स्तिरितिनिमज्जिशीड्य उ ^{१५}।”शाखाः सन्त्यस्य शाखा। विटपो विस्तारो-

१ का०सू० ४।३।५। वस्तुतस्तु नास्मि स्थञ्चति कप्रत्ययस्य कर्तरी विधानादन घञर्थे कविधान-
मिति क । २ का०उ० १।१ । ३. पा० सू० ५।२। ३७ इति त्यक्त् प्रत्ययप्राप् च । ४. क्रीडाथे जनैस्त-
म्यते काङ्क्षते इति कर्मणि विग्रहो न्याय्य । ५ का० उ० ४।२७ । ६ का० उ० २।३ । ७ उ० वृ० ११ ।
८ का० उ० ३।५२ इति पातेर्डीतिप्र० टिलोपश्च । ९ का०उ० ६।६८। पाणिनीयैस्तु स्वामिन्नैश्वर्ये पा०सू०
५।२।१२६ इति स्वशब्दादामिन्प्रत्ययेन साधितः । स्वमैश्वर्यमस्यास्तीति विग्रहः । १०. गत्यर्थाकर्मकश्लि-
पशीङ्त्वावसजनरुहजीर्यतिन्यश्च इति पूर्णं का० सू० ४।६।४२ । ११. का०सू० ४।६।९५ । १२ का०
सू० ४।४।५९ । १३. डानुक्त्वेऽप्यस्वरादेर्लोप इति पूर्णं का० सू० २।६।४२ । १४. का० सू० ४।४।४७ ।
१५ का० उ० २।१४ । १६ का० उ० २।५१ । १७ अन्न प्राणने । अन्निति श्वामोच्छ्वास करोतीति ।
अन्न धातोरोकहप्रत्यय औणादिक इत्यपेक्षिताशः । १८. का० उ० १।५ ।

- उत्स्यस्य विटपी । फलानि सन्त्यस्य फलिनः । ^१“फलवर्हान्यामिनच् ।” न गच्छतीति नगः । ^२“डोऽ-
सज्ञायामपि” । द्रवति वृद्धि गच्छति अथवा द्रुवृच्चैकदेशोऽस्यास्तीति द्रुमः । अङ्घ्रिभिश्चरणैः पिबति
पाति वा अङ्घ्रिपः । अङ्घ्रिपश्च । फलानि गृह्णातीति फलेग्राही । अभिधानादीर्घः । ^३“फलमलरजःसु
ग्रहेः” पादैः पिबति पानीय पादपः । न गच्छतीत्यगः । ^४“नगस्याऽप्राणिनि वा” विकल्पेन नकारलोपः ।
५ वनस्य पति वनस्पतिः । “पारस्करादित्वात्सुट् । महीरुहः, कुटः, शालः, पलाशी, दुः, वृत्तः, कुजः,
विष्टरः, अगश्वापि ।

तत्पर्यायचरो ज्ञेयो हरिर्वलिमुखः कपिः ।

वानरः स्रवगश्चैव गोलाङ्गूलोऽथ मर्कटः ॥१२॥

- एकोनविंशति नामानि हरौ । अनोकहचरः, तरुचरः, शाखिचरः, विटपिचरः, फलिनचरः,
१० नगचरः, द्रुमचरः, अङ्घ्रिपचरः, फलेग्राहिचरः पादपचरः, अगचरः, वनस्पतिचरः, । इत्यादिद्वादशनामानि
मर्कटस्य ज्ञेयानि । हरतीति हरिः । “इ सर्वधातुभ्यः ।” वलयो मुखेऽस्य वलिमुखः । कम्पते वायुना शरीरे
कपिः । “अहिकम्प्योर्नलोपश्च ।” आभ्यां किं प्रत्ययो भवति नलोपश्च । वनं वनति सम्भजते वानरः
नरोऽपि । ‘लवेन उ-फालेन गच्छति प्लवगः ।’ डोऽमज्ञायामपि च । गा भूमिं लङ्घतीति गोलाङ्गु-
लम् । गोलाङ्गुलं नाम गोलाङ्गुलं उणादित्वात् “लगेर्दाधश्च” । “भृङ् प्राण-यागे ।” ध्रिघते मर्कटः ।
१५ ‘जटा’ ‘मर्कटो’ एतावत्प्रत्ययान्तौ निपात्येते । वनौका । ‘लवङ्गम् । कीशः । शाखा गृहः ।

विपिनं गहनं कक्षमण्य काननं वनम् ।

कान्तागमटवी दुर्गम्

- नव वने । वेण्यते कण्यते भयेनात्र विपिनम् । ^१“वेपितुहोहस्वच्च” इतीनच् । उणादौ
उप्यते । ^२“यृजिनाऽजितेरिणविपिनतुहिनमहिनानि ।” एतानि इनप्रत्ययान्तानि निपात्यन्ते । “गाह्यते
२० मृगादिभिर्गहनम् । उभयम् । कषति वर्पति कक्षम् । अर्पते गम्यते श्वापदैः अरस्यम् । प्रतिघ्रास्यन्ति अत्र
वा अरण्यम् । ^४“अतैरस्य” अस्मादन्य प्रत्ययो भवति । उभयम् । कन्यते गम्यतेऽस्मिन् काननम् ।^३ ।
वन्त्यते सेव्यते घनम् । कान्तम् जलान्तम् गच्छति इच्छति वा कान्तारम् । अन्त्यस्यामटवि । स्त्रियामीः ।
अटवी । दुःखेन महता कष्टेन गम्यते दुर्गम् । नानाऽर्थे । सत्रम्, हव्यम्, दावम्, अरण्यानी, फलम्
(^{१६}अफलम्) ।

१. पात० भाष्य० ५।२।१२२ । २. का० सू० ४।३।८७ इति गमेर्डः । ३. का० सू० ४।२।४७
अनेन ग्रहेन् । एव सति वृद्धयभावात् फलेग्राहिरिति रूपं सम्भवति । तत्राभिधानादीर्घ इति टीकाकारः ।
तथाभिधायकवचनाभावात्कोपान्तरेषु फलेग्राहीति दीर्घरहितस्यैव दर्शनाच्च फलेग्राहीति रूपं चिन्त्यम् ।
४. नेटशः किमपि सूत्रं कातन्त्रे । नगोऽप्राणिनि वा इति हे० श० सू० ३।२।१२७ । ५. पारस्करप्रभृतीनि
च सज्ञायाम् पा० सू० ६।१।१५७ । ६. अत्र अ० चि० ४।१८० प्रमाणम् । तदुक्तम्-वृद्धोऽगः शिखरो
च शाखिफलदावर्हिर्हर्दिर्द्रुमो जीर्णोऽर्घ्विटपी कुटः क्षितिरुहः कारस्करो विष्टरः । नन्द्यावर्तकरालिकौ तरुवसू-
पर्णां पुलक्यद्विपः सालानोकहगच्छपादपनगा रूक्षागर्मा पुष्पदः ॥ इति । ७. का० उ० ४।४। ८. का०
सू० ४।३।४७ । ९. खर्जिकृषिमसिपिञ्जादिभ्य ऊरीलौ का० उ० ३।६० इत्यूलः उणादित्वात्लगे दीर्घश्चेति
दुर्गवृत्तिः । १०. का० उ० ३।५८ । ११. पा० उ० २।५५ । १२. का० उ० २।२२ । इतीनप्रत्यय वपेर-
कारेकारश्च । १३. गाहू विलोडने । बहुलमन्यत्रापि युच् । कृच्छ्रगहनयोरिति निर्देशादध्रस्वः ।
१४. का० उ० ३।२ । १५. कानयति दीपयति स्मरादि । कनी दीप्तौ । युच् । कम जलम् अननं जीवनमस्य
वेति विग्रहोप्युह्य । १६. फलपुष्परीहते वन्ध्य-अवकेशि अफल शब्दाः कल्पद्रुकोशे दृष्टाः । तदुक्तम्—

“नजर्थात्फलपर्यायोऽवकेशी वन्ध्य इत्यपि । फलपुष्पैर्विरहित एते वन्ध्यादयस्त्रिषु ॥

4

१ शव गतौ स्वादि । ब्रह्मलकादर । २ का० उ० ४११ । ३ का० सू० ४१२।५५ । ४ का० सू० ४१२।५८ । ५ धनु प्रहरणमस्येति व्युत्पत्तिर्युक्ता । प्रहरणमिरण् । ६ किमतीति किरः । कृ विज्ञेय । कप्रत्यय । अततीत्यत । अत सातत्यगमने । पचाद्यच् । किञ्च्चासावतश्चेति किरात इति पूर्णव्युत्पत्तिः । ७ महदरण्यमरण्यानी तत्र चरतीति विग्रहो युक्तः । ८ इदं पाणिनीय ४।१।४० अत्र यमेत्यधिकः पाठः । ९ का० उ० ४१५ । १० का० उ० ५।५० । ११ का० उ० ४।५६ । १२ का० उ० ४।६६ । अमति स्वादुत्व गच्छतीति शेषः । रामाश्रमस्तु अमिशब्दे इत्यतोऽमुन् प्रत्ययमाह । १३ का० उ० ५।३५ । १४ का० उ० २।१० । १५ अर्थे इत्यस्य पर्यायो गम्यते । यतोऽर्णस् शब्दो नसप्रत्ययान्तः । ऋ गतौ । १६ का० सू० ३।८।२४ । १७ सलति गच्छति निम्नमिति विग्रहे सल् गतौ इत्यस्मात् सलिकत्यनि० इत्यादि १।५४उ० सूत्रेण साधितोऽन्यत्र । १८ का० उ० ६।३९ ।

- “अपश्च” इति घुटि दीर्घः । आपः । अघुट्स्वरत्वात् शसादेर्न दीर्घः । अपः । “अपा” भेदः ।” इति विभक्तिभेदस्य दः । अद्भिः । अद्भ्यः । अद्भ्यः । अपाम् । अप्सु । “३ वर्गादिः शपसेषु द्वितीयो वा ।” अप्सु । अप्सु । आमन्त्रणे—हे आपः । वेवेष्टि देह शैत्येन व्याप्नोतीती विषम् । उभयम् । घनरसः, पुष्करम्, मेघपुष्पम्, पानीयम्, उदकम्, क्षीरम्, भुवनम्, दकम्, कमलम्, कीलालम्, अमृतम्, कञ्चम्, सर्वतोमुखम्, ५ आनर्त इति नानार्थे ।

तत्पर्यायचरो मत्स्यस्तत्पर्यायप्रदो घनः ।

तत्पर्यायोद्भवं पदं तत्पर्यायधिरम्बुधिः ॥ १६ ॥

- तस्य पर्यायस्तत्पर्यायः, तन्पर चरशब्दे प्रयुज्यमाने मत्स्यनामानि भवन्ति । वारिचरः, वारिचरः, कञ्चरः, पयश्चरः, अम्भश्चरः, अम्बुचरः, पाथश्चरः, अर्णश्चरः, सलिलचरः, जलचरः, शरचरः, वनचरः, १० कुशचरः, नीरचरः, तोयचरः, जीवनचरः, अपचरः, विषचरः । प्रदप्रयोगे वारिपर्यायशब्दाग्रे घनस्य नामानि भवन्ति । वारिप्रदः, वारिप्रदः, कम्प्रदः, पयःप्रदः, अम्भःप्रदः, अम्बुप्रदः, पाथःप्रदः, अर्णःप्रदः, सलिल प्रदः, जलप्रदः, शरप्रदः, कुशप्रदः, नीरप्रदः, तोयप्रदः, जीवनप्रदः, आप्रदः, विषप्रदः । इत्यादीनि घननामानि । तत्पर्यायोद्भव पञ्चम् । वारिपर्यायशब्दाग्रे उद्भवप्रयुज्ये उद्भवशब्दप्रयोगे कमलनामानि भवन्ति । वारुद्भवम्, वारुद्भवम्, कमलद्भवम्, पयःउद्भवम्, अम्भउद्भवम्, अम्बुद्भवम्, पाथउद्भवम्, अर्णउद्भवम् १५ सलिलोद्भवम्, जलोद्भवम्, शरोद्भवम्, वनोद्भवम्, कुशोद्भवम्, नीरोद्भवम्, तोयोद्भवम्, जीवनोद्भवम्, अम्बुद्भवम् विषोद्भवम् । तत्पर्यायधिरम्बुधिः । वा शब्दा (शब्दपर्याया) ग्रे धिप्रयुज्ये धिशब्दप्रयोगे अम्बुधिनामानि ज्ञेयानि । वारिधिः, वारिधिः, कन्धिः, पयोधिः, अम्भोधिः, अम्बुधिः, पाथोधिः, अर्णोधिः, सलिलधिः, जलधिः, शरधिः, वनधिः, कुशधिः, नीरधिः, तोयधिः, जीवनधिः, अम्बुधिः, विषधिः ।

पृथुगेमा पडक्षीणो यादो वैमारिणो झषः ।

- ३० विसारी शफरी मीनः पाठीनो (ऽ) निमिषस्तिमिः ॥ १७ ॥

- एकादश मत्स्ये । पृथूनि विस्तीर्णानि रोमाण्यस्य पृथुरोमा । षट् अक्षीणि स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षु-श्रोत्र-मनासि यस्य सः पडक्षीणः । याति गच्छति जले, याद् । विसरति “ग्रहादेर्णिन्” “विसारी मत्स्य इति । स्वार्थऽण् । वैमारिणः । भपति जन्तुं दिनस्ति भप । “सृ गतौ” । सृ ५ ऋ गतौ वा” । सृ विप्रवा ० विसरति विमसति वा इत्येवशीलः, विसारी । “विप्रति-यामाड सतेर्णिन् प्रत्यय । अस्यो ३५ (स्य) वृद्धिः । विमारिन् इति जाते सि । “इन्हन् [पूर्ववत्] (प्रायश्चर्या शौच)” । शक्ति शफरः । शफा (न्) त्रायन्ते (राति) शीघ्रगत्वाच्छफरी । मीयते हिम्यतेऽन्योऽन्यतः, मीनः । बहुदृष्ट्वात् पाठयति भक्षयत्वेन पाठयते वा पाठीनः । निमिषति परस्परं दिनस्ति हन्तीति वा “निमिष” । “नास्युपध (धात्) पृकृगृजा कः” । तिम्यति जलेनाद्रो भवति तिमि । मत्स्यः, अण्डजः, शकली, विसारः, जलचरः, शक्की ।

- ३० घनाघनो घनो मेघो जीमूतोऽभ्रं बलाहकः ।

पर्जन्यो मिहिगे नभ्राट्

१ का० सू० २।२।१९ । २ का० सू० २।३।४३ । ३ का० सू० पू० सू० २५७ । ४ का० सू० ४।२।५० इति णिन् प्र० । ५ पा० सू० ३।२।७६ उत्पत्तिम्यामाडि सतैरुपसंख्यानम् इति काशिकावृत्तिः । ६ का० सू० २।२।२१ । ७ निमेषरहितत्वान्मीनानाम् । कोषान्तरेषु तेषामनिमिषज्ञा-दर्शनाच्च अत्राप्यनिमिष इत्येव छेदो युक्तः । न तु निमिष इति । तदुक्तम्—‘विसारः शकली शक्की शवरोऽनिमिषस्तिमि’ अ० चि० ४।११० । ८ का० सू० ४।२।५१ ।

नव मेघे । हन हिसागतयोः । हन्तीति घनाघनः । “अच् घनाघन ” इति सूत्रेण घनाघन इति निपातः । अथवा “चिक्लिदचकनसचराचरचलाचलपतापतवदावदघनाघनपाट्टपटा वा” इति नामभूता सज्ञा रूढाः । तत्र क्लिदे “आम्युपधात्” कः । कनसिचरिचलिपतिविदहनिपाट्यतिभ्यो ऽच्प्रत्ययो द्विर्वचननिपातन चेति । वाशब्दात् क्लिदः कनसः, चरः, चलः, पतः, वदः, घनः, पटः, इत्यपि भवति । हन्यते वायुना घन । “मूर्ती घनिश्च ।” अल् । मिह सेचने । मेहति सिञ्चति भूमिमिति मेघ । ५
“अन्य चाम् (दिव्यश्च)” अच् । नामिनो गुण । “न्यङ्कु, ६” इत्येवमादीना चञौ कगौ भवत । इश्च (हस्य च) घो भवति । जीवनस्य जलस्य मूत पुटबन्ध इति निरुक्त्या जीमूत । जीवनन्यनेन भूतानि वा जीमूत । जीव प्राणने । अभ्रन्यपो राति वा अभ्रम् । अभ्र गत्यर्थ । न भ्रश्यति तपो यस्मादित्येके । आभोति सर्वा दिशो वा अभ्र क्लीबे । “बलाकादिभिर्हीयते बलाहक । वारिवाहको वा । प्रवर्षति जल पर्जन्य । उणादौ “पृजी सम्पर्के” पृङ्क्ते पृणक्ति वा पर्जन्य । “पर्जन्यपुण्ये” १०
इति अन्यप्रत्ययान्तो निपात्यते । मेहति सिञ्चति विश्व मिहिर । मिहिर मुहिरश्च । न भ्राजते न शोभते नभ्राट् । “क्विञ्भ्राजिपृथुर्विभासाम्” एषा क्विञ् भवति । अब्दः, स्तनयितुः, पयोधरः, धाराधरः, धूमयोनिः, तडित्वान्, वारिदः, अम्बुभृत्, मुदिरः, जलमुच् ।

शम्पा सौदामि (म) नी तडित् ॥१८॥

आकालिकी क्षणरुचिर्विद्युत्

१५

पट् शम्पायाम् । शम्पयति शीघ्र शम्पा । शम्बा च । शम्पिषति वा शम्पा । सुदाम्ना अद्रिणा एकदिक् सौदामि (म) नी । “तेनेकदिगित्यण् । शोभनस्य दाम्नो बन्धनरज्जोऽग्नौ सटशी सौदामि (म) नी । सौदाम्नी । सौदामिनी च । ताडयति तडित् । ताडयतेऽणिलुक् । ताडयति मेघ ताडयतेऽसौ वेति तडित् । तान्तम् । आकलयति स्तोककाल रोचते वा आकालिकी । “आट् मर्यादाऽभिषिध्यो ।” क्षणे क्षणे रोचते शालते क्षणरुचिः । विद्योतते विद्युत् । चपला, क्षणिका, शतहृदा, हादिनी, अचिराशुः, २०
ऐरावती, चञ्चला, चटुला, दिश्या ।

तत्पतिगम्बुदः ।

विद्युच्छब्दाग्रे पतिशब्दे प्रयुज्यमाने अम्बुदनामानि भवन्ति । शम्पापति, सौदामनीपति, तडित्पति, आकालिकीपति, क्षणरुचिपति, विद्युत्पतिः, निर्घातपति, अशनिपतिः, वज्रपतिः, उल्कापतिः, इत्यादिमेघनामानि स्युः ।

२५

निर्घातमशनिर्वज्रमुल्काशब्दं च योजयेत् ॥१९॥

चत्वारो वज्रे । निर्हन्त्यतेऽनेनेति निर्घातम् । पर्वतादीनशनाति, अशनिः । “ऋतृसृष्टृन्धृन्धृभ्य-

१ हन्तेर्ध्वं च का० वार्तिकम् । अच् घनाघन इत्याकारक वचन न क्वचित्पलब्धम् । शा० सू० ४।१।५५ घनाघन पाट्टपटम् इति । २ इदं तु नोपलब्धम् । चरिचलिपतिवदीना वा द्वित्वमन्याक् चाभ्यासस्य वक्तव्यम् इति कात्या० वा० । ३ का० सू० ४।२।५१ । ४ का० सू० ४।५।५० इति हन्तेरल्प्र० घनिरादेशश्च । ५ का० सू० ४।२।४८ । ६ न्यङ्क्वादीनाम् इति का० सू० ४।६।५७ इति हस्य घ । ७ बलाकादिभिर्हीयते । ओहाङ् गता । कर्मणि क्तुन् । अथवा बलेन हीयते आहायते वा क्तुन् इति रामाश्रम । पृषोदरादित्वाद् वारिवाहकशब्दस्य बलाहक इति निपातश्च । ८ का० उ० ३।८। ९ का० सू० ४।८।५७ । १० तेन प्रोक्तमित्यतस्तेनेत्यधिकारे “एकदिक्” इति जै० सू० ३।३।८१ । ११ समानकालावायन्तौ यस्या इति विग्रहे आकालिकडाद्यन्तवचने इति पा० सूत्रेण समानकालशब्दस्याकाल आदेश इकट् प्रत्यये टित्वान्डीपि आकालिकोति मूलोक्तमपि साधु । १२ का० उ० २।४३ ।

श्यविवृतिग्रहिभ्योऽनिः ।” एभ्योऽनिः प्रत्ययो भवति । “ट उ स्फूर्जा वज्रनिघोषे” स्फूर्जतीति वज्रम्^१ । शूद्रादयः^२—“शूद्रोऽग्रवज्रविप्रभद्रगौरमेरीराः” एते रक् प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । पर्वतेष्वपि वज्रति वज्रम् । उषति व्वलति उल्का । उल् इति सौत्रोऽय धातुर्वा ।

परिपत्कर्दमः पङ्कः

- ५ त्रय. कर्दमे । परि समन्ताद् भाराक्रान्तः सीदति गन्तु न शक्नोतीति परिपत् । “^३स्तस्मिन्निघट्ट- हट्टुहयुजविदभिदच्छिदजिनीराजामुपसर्गे” एषामुपसर्गेऽनुपसर्गेऽपि नाम्युपधात्किवप् । कृणोति चेष्टा दिनस्तीति कर्दमः । “^४पृथिव्यचरिर्दिभ्योऽम ” । पञ्च्यते विस्तार्यते वर्षाकालेन पङ्कः । उभयम् । उणादौ ‘पन च’ पनायते पन्यते वा पङ्कः । ‘पसिपनिभ्या कः’^५ आभ्या कः प्रत्ययो भवति । तथा चामरसिंह—

“^६निपद्वरस्तु जम्बालः पङ्कोऽस्त्री शादकर्दमौ ।”

- १० निपद्वर, जम्बाल, शाद, इचिकिल, चिकित्सथानेकार्थे ।

तजम्

तस्मात् जम् उद्भवम् पङ्कजम्, कर्दमजम्, परिपजम्, इत्यादीनि कमलनामानि भवन्ति ।

तामरसं विदु ।

कमलं नलिनं पद्मं सरोजं सरसीरुहम् ॥ २० ॥

खरदण्डं कोकनदं पुण्डरीकं महोत्पलम् ।

१५

- दश कमलनामानि भवन्ति । ताम्रयति जञ्ज काङ्क्षति तामरसम् । अमरमहभाष्ये—“ताम्र प्रकर्षो रसोऽभ्य तामरसम् । तमः प्रकर्षोऽथस्तारतम्यवत् ।” केन मस्तरुन मल्यते धार्यते कमलम् । श्रिया वामाऽर्थं काम्यते वा । ‘पटिकमिमुशिकुशिभ्यः कलः ।’^१ एभ्य कल, प्रत्ययो भवति । कमल च । नलाः सन्त्यस्य नलिनम् । नलति आकर्षति श्रिय वा नलिनम् । ‘पुलिनलितलिमलिट्टिभ्य किन्’^२ । नल च । पद्यते पाति लक्ष्मीरत्र पद्मम् । “^३अर्तिवृद्धमुवृक्षिणीपदभायास्तुभ्यो म ।” उभयम् । सरसि तडागे जातम् सरोजम् । सरस्या रोहति प्रादुर्भवति सरसीरुहम् । “^४खरञ्च तदण्डञ्च खरदण्डम् । कोकाश्चक्रवाका नदन्त्यत्र कोकनदम् । क्लीबे । [रक्त] कुमुदम्^५ । रक्तकमलञ्च । विशेषणम् [कुमुदकमलविशेषे] । पुणति माङ्गल्यात्वात्पुण्डरीकम् । मट (मुट) प्रमर्दने स्थाने । पुण्डिरित्येके । पुण्डति पुण्डरीकम् । भाष्यकर्तृमते पुण शोभे । पुणति जल्पति शोभा पुण्डरीकः^६ । “अनुनासिकान्ताट्टः” अनुनासिकान्ताद्धातोर्ङ् प्रत्ययो भवति । महच्च तदुत्पल च महोत्पलम् । तथा च हलायुधः—“पुण्डरीक^७ सिताम्बुजम् ।”

२५

१ स्फूर्जतीति विग्रहे स्फूर्जधातो वजादेशो रक्प्रत्ययश्च निपात्य । वज्र गतौ । वज्रतीति विग्रहे केवल रक् । २ का० उ० २।१७ । ३ का० सू० ४।३।७४ । ४ का० उणादौ एतत्पञ्च नास्ति । पा० उ० सू० ४।८४ कलिकथोरम इष्यमप्र० । ५ का० उ० ५।३० । रामाश्रमस्तु पचि विस्तारे कर्मणि हलश्चेति घञ् इत्याह । ६ अमर० १।१०।१ । ७ ज्ञी० मा० १।१।४० = का० उ० ६।१ । ८ का० उ० ६।६ । ९ का० उ० १।५३ । ११ खरो दण्डो यभ्येति विग्रहो न्यायः । १२ अथ कोकनद रक्तकुमुदे रक्तपकजे इति मेदिनी तद्विशेषे प्रमाणम् । १३-पर्फरीकादयश्च पा० उ० ४।२० इति मुटधातो रीकन्-प्रत्ययान्त-पुण्डरीकशब्दो निपात्यते । रामाश्रमस्तु पुण्डिधातो रीकन्प्रत्ययमाह । भाष्यकर्तृमते पुण धातो रीकप्रत्ययो ङान्तागमश्चेत्युभय विधेयम् । केवल डप्रत्ययस्तु न युक्तः । १४ हलायुधः ३।५८ ।

इन्दीवरं चारविन्दं शतपत्रं च पुष्करम् ॥२१॥

स्यादुत्पलं कुवलयम्

सप्त नीलोत्पले । इन्दति शोभैश्वर्यं प्राप्नोति इन्दीवरम् । अरान् राजी. विन्दति इति अरविन्दम् । विदलू लामे, विद् अग्रपूर्वः । अरान् विन्दतीति अरविन्दः । “कर्मणि च विद्” श-प्रत्ययी भवति । इति परसूत्रम् । स्वमते—अन्यत्रापि चेति [कर्मण्यण्^१] अण् बाधक । “साहिताति-वेद्युदेजिचेतिधारिपारिलिपि(म्पि)विन्दा त्वनुसर्गे” एषामनुपसर्गे शो भवति । चक्रत्याऽवयव अर-विन्दम् । पिण्डी (पुण्डरीक) कमलेऽर्थे तु (अपि) अरविन्दम् । राजविशेषस्तु अरविन्दः । केचित्कम-लेऽपि पु स्त्व मन्यन्ते । शन पत्राण्यस्य शतपत्रम् । क्लीबे । शोभा पोषयति पुष्यति वा पुष्करम् । शोभामुत्कर्षेण पलति गच्छतीत्युत्पलम् । कौ वलते प्राणिति कुवलयम् । कुक्षितो बहिर्वलयः पत्रवेष्टन-मस्येति श्रीभोजः ।

५

१०

विशेषमाह—

अथ नीलाम्बुजम् च ।

इन्दीवरं च नीलेऽस्मिन् सिते कुमुदकैरवे ॥२२॥

नीलाम्बुजम् । इन्दतीन्दीवरम्^३ । कुवलय [दलनीलेति] सामान्यस्य [नीले] विशेष-वृत्ति । अस्मिन् सिते । रात्रौ विकास करोति चन्द्रेण काम्यते वा कौ मोदते वा कुमुदम् । दान्तञ्च । के उदके जले गैति केरवो हसन्, तस्येद प्रिय कैरयम् । क्लीबे ।

१५

तद्वती

तस्य कमलस्य पश्ययि ‘वती’ इति प्रयुज्यमाने कमलिनीनामानि भवन्ति । ताम्रसवती, कमलवती, नलिनवती, पद्मवती, सरोजवती, सरसीरुहवती, कोकनदवती, पुण्डरीकवती, महोत्पलवती, अर-विन्दवती, शतपत्रवती ।

२०

विसिनी ज्ञेया

दिनविकासिन्यामेक^४ । विसमस्त्यस्या विसिनी । नलिनी । पुटकिनी । मृणालिनी ।

व्रततीर्वल्लरी लता ।

वल्लरीनामानि योज्यानि—

चतुर्वं (चत्वारो व) ल्यार्थम् । वृणोतीति व्रतती । प्रकृष्टा ततिरस्या व्रतती^५, व्रततिश्च । जपादित्वाद्वत्त्वम् । वल्लते वल्लरी । लाति ललति चित्त वा लता^६ । वल्लते वेष्टते वल्लती । वल्लादीः । बल्लिगिदन्तोऽपि । स्त्रियामी । वल्लती । व्रतश्च । वीरक् (ध्), गुल्मिनी, प्रतानिनी, शारिवा^७, किर्मि च । वृक्षशाखायामपि ।

२५

१ का० सू० ४।३।१ । २ का० सू० ४।३-४ । ३. इन्दतीतीन्दी. लक्ष्मी. । सर्वधातुभ्य इन् उ० सू० ४।११७ इतीन् । कृदिभारादत्तिन इति ङीष् च । तस्यावरमिष्टम् इति व्युत्पत्त्यन्तरमप्युक्तम् । ४ एक. विसिनीशब्द इत्यर्थः । ५ अत्र चत्वारो वल्लर्यामिति युक्तम् । ६ व्रतनोतीति व्रतति । तन् धातो क्तिच् । कौ च सजायामिति क्तिच् । पृषोदरा-दित्वात्पस्य व इत्यन्यत्र । ७ लति. सौत्रो धातुवेष्टनाथो लततीति लता । पचाद्यच् इत्यन्यत्र । ८ शारिवाशब्दोऽनन्तमूलनामकौषधिविशेषवाचक । किर्मि स्त्री स्पर्शपुञ्चा स्यादपि मालापलाशयो-रिति विश्वलोचनप्रमाणतः किर्मिशब्दः । किर्मिशब्दो स्पर्शपुञ्ची-माला-पलाशवाचक । वृक्षशाखायां लताया वा उभावप्यप्रसिद्धौ । अतोऽत्रेदमेव प्रमाणम्

वारिधिर्वर्ण्यतेऽधुना ॥२३॥

अधुना हदानीं वारिधिर्वर्ण्यते कथ्यते । केन १ भाष्यकर्त्रा मुनिश्रीमदमरकीर्तिना ।

साम्प्रत समुद्रनामानि प्रारभ्यन्ते—

स्रोतम्विनी धुनी सिन्धुः स्रवन्ती निम्नगाऽपगा ।

4

नदी नदो द्विरेफश्च सरिन्नामा तरङ्गिणी ॥२४॥

एकादश नद्याम् । स्रोतः प्रवाहोऽस्त्यस्याः **स्रोतस्विनी** । धुनोति कम्पते धुनिः^१ । छिायामी ।
धुनी । स्यन्दति जले चलति **सिन्धुः** । त्रिषु । "स्यन्देऽ" सम्प्रसारण घञ् ।^२ तदेभ्यो जलं स्रवति **स्रवन्ती** ।
निम्न गच्छति निम्नगा । **आ** समन्तादाप्नोति अद्भिरगति वा **आपगा**^३ । आप्तेन वा गच्छति **आपगा** ।
नदत्यव्यक्तं शब्दं करोति **नदी** । नदति **नदः** । "अच्" पचादिभ्यश्च^४ **अच्** । द्वौ रेफौ तदौ यस्य **द्विरेफः** ।
१० सरति समुद्रं गच्छति **सरित्** । तान्तम् । तरङ्गाः सन्त्यस्या **तरङ्गिणी** । तटिनी, नर्मरिणी, कूलङ्गणा,
शेवलिनी, सरस्वती, समुद्रकान्ता, ह्यादिनी, स्रोतः, कुर्^५ ", कुल्या, द्वीपवती, रोधोवक्त्रा ।

तत्पतिश्च भवत्याब्धिः,

तस्या धुन्याः पतिर्धुनीपतिरित्यादिसमुद्रनामानि भवन्ति । स्रोतस्विनीपतिः, धुनीपति, सिन्धु-
पतिः, खवन्तीपतिः, निम्नगापति, आपगापतिः, नदीपति, नदपतिः, द्विरेफपतिः, सरित्पति, तरङ्गिणीपतिः ।

१५

पारावारोऽमृतोद्भवः ।

अपारवारकूपारौ रत्नमीनाऽभिधाऽकरः ॥२५॥

समुद्रो वारिराशिश्च सरस्वान् सागरोऽर्णवः ।

नव समुद्रे । पारमावृणोति पारावारः । अतस्योदभव अमृतोदभवः । अपार वारं जल
यत्रास्मां अपारवा । न कु पृणोति मर्यादापालनादकूपारः । हलायुधे—“न कु पृथिवी पिपत्ति व्या
२० णोतीति अकूपारः ।” अकूपागोऽपि । रत्नमीनशब्दयोरग्रे आकरे प्रयुज्यमाने समुद्रनामानि भवन्ति ।
रत्नाकरः, पृथुरीमाकरः पडक्षीणाकरः, यादाकरः, वेमारिणाकरः, कपाकरः, त्रिसार्थाकरः, शफराकरः,
मीनाकरः, पाठीनाकरः, निमिषाकरः, तिग्याकरः । ‘उन्दी क्लेदेन’ सम्पूर्वः । समन्तादुत्पत्त्यस्येति
समुद्रः । ‘स्फायितचिचवाचशक्तिनिषिद्धिदिरुदिमदिमन्दिचन्त्युन्दीन्दियो रक्’ “आन्दनुवन्वानाम-
गुणेऽनुपङ्गः” । तथा च हलायुधे—“सुदन्ति मिश्रीभवन्ति भौमाऽन्तरीक्षनादेयजलान्यत्र समुद्रः ।”
२५ अपरसिंह—“समुनन्ति समुद्रः” । वारीणा जलानां राशिर्वारिराशिः । सरासि जलप्रसारणानि
सन्त्यस्य सरस्वान् । सागरस्थापत्य सागरः, सगरतनयैः खातत्वात् । अर्णासि सन्त्यस्य अर्णवः ।

१ धुनोति कम्पयति वेतसादीन् । धुक् कम्पने । क्प् । पृषोदरादित्वाञ्च । नान्तिवान्दीप् धुनी
इति रामाश्रमः । २ का० उ० १७ । ३ अद्भिरगतीति विग्रहेऽप पकारस्य जडत्वाभावोऽकारस्य
दीर्घत्वं च पृषोदरादित्वेन निपातात्साध्यम् । ४ का० सू० ४।२।४८ । ५ अत्र कर्पूरिति दीर्घोकारान्तपाठो
युक्तः । तदुक्तम्—कर्पूरं नदी करीषान्योरिति शाश्वत ६७२ । ६ यादस् शब्दस्य सकारान्तत्वाद् याद आकर
इत्येव न त यादाकर । ७ समन्तादनुति आर्द्राकरोति भूभागातेतावानेव विग्रह । अत्रास्मादित्यपा-
दानार्थष्टोकोक्तो नापेक्षणीय । समोचीना मुद्रा जलचरविशेषा यस्मिन् सह मुद्रया मर्यादया वर्तते वेति
व्युत्पत्त्यन्तरमप्युच्यम् । ८ का० उ० २।१४ । ९ का० सू० ३।६।१ । १० मुद ससर्गे चुरादि सम्पूर्वं ।
कयादावदन्ते तत्पाठाञ्चुरादिणिचो वैकल्पिकत्वान्मुदन्तीत्यपि पक्षे । समो मकारलोप पृषोदरादित्वात्तत्र
बोध्यः । ११. स्त्री० भा० १।६।१।

तथा च क्षीरस्वामिभाष्ये—“^१ अर्णोऽस्यास्त्यर्णवः । ‘अर्णसो लोपश्च’ इति वः सलोपश्च ।”
उदधि, उदन्वान्, तोयनिधिः, जलराशिः वीचिमाली, शशध्वजः । तद्भेदाः सन्त-लवणोदः, क्षीरोदः,
सुरोदः, इक्षूदः स्वादूदः, दध्युदः, घृतोदः ।

सीमोपकण्ठ तीरञ्च पार रोधोऽवधिस्तटम् ॥२६॥

सप्त समीपे । पित्र् बन्धने । सिनोति बध्नातीति सीमा । “^३घर्ममोमाग्रीष्माऽधमाः”
एते मक्षप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । कण्ठस्य समीपे उपकण्ठम् । तरन्त्यम्मात्तीरम्^४ । तरति प्लवते
इव के तीरं वा । “पिपतिं वृणोति जलेनेति पारम् । पार्यते समाप्यतेऽस्मिन्निति वा । रुणद्धि
जलं वेगेन रोधस् । सान्तम् । उभयम् । अवधानम् अवधि । “^५उपसर्गे दः किं” । तट्यते आहन्य-
तेऽम्भसा तटम् । त्रिषु । तटः । तटी । इदन्तो वा । तटि । स्त्रियामी, तटी । कूलम्, कच्छ,
प्रपातः, तीरम् ।

५

१०

भङ्गस्तर्ङ्गः कल्लोलो वीचिरुत्कलिकाऽवलिः ।

पाली वेला तटोच्छ्वामौ विभ्रमोऽयमुदन्वत ॥२७॥

एकादश तर्ङ्गे । भज्यते जले स्वयमेव भङ्गः । तरति प्लवते तरङ्गः । “^१वृत्तिभ्यामङ्ग”
आभ्यामङ्गप्रत्ययो भवति । “कल्लयन्तेऽनेन नद्यः कल्लोलः । कुस्मित लोडति कल्लोल इत्येकः ।
याति (वयति) गच्छति वीचि” । स्त्रियामी, वीची । वृद्धिमुत्कर्षेण वलयति उत्कलिका । स्त्रि-
याम् । आ समन्ताद् वलते आवलि । पालयते पालि । स्त्रियामी । पाली । वलयति पूर्णिमादि-
कालमपदिशति वेला । स्त्रियाम् । तटश्च उच्छ्वासश्च तटोच्छ्वासे । तटति तटः । उच्छ्वसनम्
उच्छ्वासः । विभ्रमति विभ्रमः विकारः । कस्य ? उदन्वतः समुद्रस्य । ऊर्मिः, लहरी ।

१५

सम्प्रति मनुष्यवर्गं आरभ्यते श्रीमदमरकोटिना—

मनुष्यो मानुषो मर्त्यो मनुजो मानवो नरः ।

२०

ना पुमान् पुरुषो गोघ्रा

एकादश मनुष्ये । मनोरपत्य मनुष्यः । * “^१कुरुनिषादेभ्यः प्रथमाऽत्येऽपि” । कुरुनिषादाभ्या-
मणीपि मनो मान्तश्च । क्वचिद्विस्वरस्य न वृद्धिः । अण्वा । * मनुष्यः । मानुषः । उणादौ च ।
मन्यते सुखदुःखादिकर्मिन् मनुष्यः । “^२मनेरुस्य” उर्यप्रत्ययः । मानयति मान्यते इति वा मानुषः ।
“^३मानेरुम्” उर्यप्रत्ययः । उभयम् ।

२५

१ क्षी० भा० १।६ । २ कोपान्तरेषु समुद्रस्य शशध्वज इति नाम नोपलब्धम् । कथं
चित्समाधानापेक्षायां शशिध्वज इति पाठो बोध्यः । शशी चन्द्रो ध्वजश्चन्द्र वशप्रख्यापकः यस्येति
तद्विग्रहः । चन्द्रस्य समुद्रप्रभवत्वं पुराणप्रसिद्धम् । ३ का० उ० १।५६ । ४ तू लवनतरणयोः । क-
प्रत्यये ऋत इर् दीर्घत्वः च । अत्रोणादि शरणम् । सरलं पण्यास्तु पार तीरं कर्मसमाप्तं । ततस्तीरय-
तीति विग्रहः पचाद्यच् । ५ पालनपूरणयोः पृ धातुस्तेन पिपतीत्यस्य पूरयतीति पर्यायो युक्तो न तु
वृणोतीति । ज्वलादित्वाण् । क्षीरस्वामी तु परे पार्श्वे भवः कूलम् पारम् इत्याह । ६ का० सू० ४।५।७०
इति किं । ७. का० उ० ५।२२ । ८ कल्ल अव्यक्तं शब्दे कल्लन्ते इत्यस्य शब्दायन्त इत्यर्थः । उणा-
दित्वादोलोचप्र० । क जलम् तस्य लोलश्चञ्चलोऽवयवः । अनुस्वारस्य परसवर्णो लकार इति रामाश्रमः ।
९ वेज् संवरेणे । वेजो डिञ्च उ० सू० ४।७२ इतीचिप्र० । १०. * एव चिह्निताशस्थाने “मनो पण्यं”
का० सू० ४९३ इति प्य षण् प्रत्ययो इति पाठो युक्तः । ११ का० उ० ६।१० । १२. का० उ० ६।११ ।

“उड्डीय बाञ्छित यान्तो वरमेते भुजङ्गमाः ।

न पुनः पक्ष्हीनन्तः पङ्गुप्रायन्तु मानुषम् ॥”

- भ्रियते मर्त्य । “^१डल्यः” । स्वार्थे ल्यो वा । मनोजातः मनुजः । मानसपत्यं मानवः^२ ।
नृणाति विनयति नरः, “शीञ् प्रापणे” नयतीति वा । “^३नियो डाऽनुबन्धश्च” । अस्मात् ऋन् प्रत्ययो
भवति, स च डाऽनुबन्ध इष्यतेऽन्त्यस्वरादिलोपार्थः । पूर्यते कुलमनेन सान्त—^४पुमान् । उणादौ
पूङः पवते पुनातीति वा पुमान् । “^५सिर्मनन्तश्च ।” अस्मात्सिः प्रत्ययो भवति, अस्य च मन् अन्त
चकाराद् ह्रस्वत्व च । इकार उच्चारणार्थः । पुरि पुरि शयनात् पूरणाद्वा पुरुषः । पूणाति पूरयति वा
स्त्राणामुदर गर्भेणेति पुरुषः^६ । “^७पूणातेः कुषः” । अस्मात्कुषः प्रत्यया भवति । कोऽनुबन्धः । अन्येषा-
मपीति वा दार्थः । पूरुषः । लत्वं पुरुषः, पुलुषश्च । “^८गुध परिवेष्टने” । गुच्यति गोधा^९ ।

१०

धवः स्यात्तपतिनृपः ॥२८॥

तस्य मनुष्यशब्दस्याग्रे धव-पतिशब्दप्रयोगे नृपनामानि भवन्ति । मनुष्यधवः, मानुषधवः,
मर्त्यधवः, मनुजधवः, मानवधवः नरधवः, नृधवः, पुन्धवः, पुरुषधवः गोधाधवः । मनुष्यपतिः, मानुषपतिः
मर्त्यपतिः मनुजपतिः, मानवपतिः, नरपतिः, नृपतिः, पुंस्पतिः, पुरुषपतिः गोधापतिः ।

भृत्योऽथ भृतकः पत्तिः पदातिः पदगोऽनुगः ।

१५

भटोऽनुजोऽप्यनुचरः शस्त्रजीवी च किङ्करः ॥२९॥

- एकादश सेवके । भ्रियते इति भृत्यः । “^१भृतोऽभ्रायाम्” । भ्रियते राजा भृतः । स्वार्थे क ।
भृतकः । पतति अधो गच्छति पत्तिः^२, पतन वा । [पादाभ्याम्] अतति [पदातिः^३] । पादातिकः ।
अंणादिक इक । “^४विनयादित्वात्त्वार्ये ठण्” । पदभ्या^५ गच्छतीति पदगः । अनु पश्चाद् गच्छति
अनुगः । भटति युद्ध विभर्ति भटः । अनुजीवतीत्येवशीलः अनुजीवी । अनु पश्चाच्चरतीत्यनुचरः ।
२० शस्त्रेण आधुधेन जीवतीत्येवशीलः शस्त्रजीवी । किं कुस्ति कार्यं विदधाति किङ्करः । सहायः, सेवकः,
पदजेयः, पदगः पदिकश्च । तथा च यशस्तिलके—(श्लो० १३०)

“सत्यं दूरे विहरति सम माधुभावेन पुसा धर्मश्चित्तात्सह करुणया याति देशान्तराणि ।
पाप शापादिव च तनुते नीचवृत्तेन सार्यं सेवावृत्तेः परमिह पर पातकं नास्ति किञ्चित् ॥”

स्त्री नारी वनिता मुग्धा भामिनी भीरुरङ्गना ।

२५

ललना कामिनी योषिद् योषा सीमन्तिनीति च ॥३०॥

१ का० उ० ६।१० । २ वाणपथ्ये का० सू० ४७३ इत्यण् । ३ का० उ० २।४१ । ४
यानि पुनाति वा पुमान् । पातेर्ङ्मुन् पूजा हुम्मुन्, पा० उ० ४।१७० इति हुम्मुन् इति प्रक्रियाऽन्यत्र ।
५ का० उ० २।४२ । ६ पुरि शयनादिति तु निरुक्तप्रकारो विग्रहस्तु पूणातीत्यादिरेव । ७. का० उ० ३।५४ ।
८ गोधाशब्दस्य पुरुषार्थे कोपान्तरप्रमाणं नोपलब्धम् । तदुक्तम्— गोधा तलनिहाकयोः’ वि०लो० । गोधा
प्राणिविशेषः स्यञ्ज्याघातस्य च वारणे । आकारान्तस्त्रीलिङ्गत्व च सर्वत्रास्त्योक्तम् । अ०स० २४३ । अतोऽस्य
मूलं भृग्यम् । गोद इति पाठे तु गोदो मस्तिष्कमस्यास्तीति गोदः मुख्यमस्तिष्कवत्त्वात् पुरुष इति समाधेयम् ।
तदुक्तम् गोदं तु मस्तकस्नेहो मग्नितर्का मधुलुङ्गक अ० चि० ३।२८९ । ९. का० सू० ४।२।२५ इति
व्यप् । १ अंणादिकस्ति, क्तिच् क्तौ च सञ्ज्ञायामिति वा क्तिच् । पतन वा इति व्युत्पत्तिस्त्वभासङ्गि-
कत्वाद्दुपेक्षया । ११ अज्यतिभ्यां च पा० उ० ४।१३० इत्येतोऽरञ् । पादस्य पदाज्यातिहतेषु इति पदादेशश्च ।
१२ विनयादित्वात् जौ सू० ४।२।४० । १३ पदाभ्यां पादाभ्यां वेति वक्तव्यम्, न तु पदभ्यामिति । पाद
इत्यापत्तेः । पादस्य पदाज्यातीति पादस्य पदः ।

नितम्बिन्यबला बाला कामुकी वामलोचना ।

भामा तनूदरी रामा सुन्दरी युवती चला ॥३१॥

द्वाविंशतिः स्त्रियाम् । “स्तृणु आच्छादने” स्तृणात्याच्छादयति स्वदोषान् परगुणानि-
ति स्त्री । उणादौ । स्तृणात्याच्छादयति लजयाऽमानमिति स्त्री । स्तृणातेष्टत् ” प्रत्ययो भवति ।
अकारमात्रः । “रमृवर्ण” । अथवा द्रष्टृपाठः । डाऽनुबन्धोऽन्त्यस्वरादिलोपार्थः । डकारो ५
नदाद्यर्थः । रकारमात्र एव । अमरसिंहभाष्ये—“स्त्यायत्य(तेऽ) स्या गभः स्त्री ।” तथा च हलायुधे—
“स्तृणाति विवेकमान्छिन्नात्त स्त्री” । नरस्य स्त्री जातिश्चेन्नारी । नर वनति भजते वनिता । मुह वैचित्ये
कार्येषु मुह्यति मुग्धा । मुहर्धक् हस्य गः ।” भामते कुप्यते (ति) भामिनी । [भामः] क्रोधोऽस्त्यस्याः
वा भामिनी । विभेयस्माद्(त्यसौ)भीरु । “भियो रुलुकौ च ।” भीरुः । प्रशस्तान्यङ्गान्यस्या अङ्गना ।
लाडयति (लडति) विलमति, ललयति (ललति) नरमीप्सते वा ललना । “लल ईसायाम्” । भोगान् १०
कामयते कामिनी । युपः सौत्रोऽय धातु सेवाऽर्थे । योषति पुरुष गच्छति रतेच्छ्या आत्मनो योषा ।
“कष शिष जप भूष दष मष रुष रिष यूष जूष हिसार्थाः” । योषति हिनस्ति हन्तीति योषित् । “हृत्सृतिडि-
रुहियुषिभ्य इति” एभ्य इतिप्रत्ययो भवति । इकार उच्चारणार्थः । अमरसिंह—“योति पुसा योषित् ।”
अजादित्वादाप्रत्यये योषिता च । सीमन्तोऽस्तस्याः सीमन्तिनी । बध्नाति चित्त बधूः । नितम्बोऽस्त्यस्या
नितम्बिनी । न वित्यते बलमस्या अवल्ला । ‘वा’ सोभाय लीति गृह्णातीति बाला । ‘कमु कान्तो’ कम् । १५
“कमेरितिङ् कारितम्” इन् । “अस्थोप०” दीर्घः । कामयते इत्येवशीला कामुकी । “शूकमगमहन्कृप-
नूस्थालपपतपदामुकन्” । १ कारितलोप । “निमि०” दीर्घाभाव । तकाराऽनुबन्धत्वात्पूर्वस्योप-दीर्घः ।
वामे मुन्दरे लोचने नेत्र यस्याः सा वामलोचना । “भाम क्रोधे” चुरादौ । भामयति । “भाम क्रोधे”
भवादावकाराऽनुबन्ध आत्मनेपदी । भामते भामा । चक्षुर्दोषादिदर्शनात् । तनु सूक्ष्मसुन्दर यस्या सा
तनूदरी । नरेषु रमते, मनासि रमयति वा रामा १२ । मुटु द्वियते आद्रियते जनोऽत्र शोभनो दरो २०
वराङ्गच्छिद्रमस्या वा १३ मुन्दरी । अथवा ‘मुन्दर’ इति सौत्रोऽय धातु । युवत्शब्दाज्जदादिविहितमिति १४,
युवति । यु मिश्रणे र्याति नरान् मिश्रयति आणादिको वा अति युवति । स्त्रियमा । युवती ।
यूनीत्यन्व । तथाहि प्रयोग —

“भर्ता मगर एव मृत्युवमति प्राप्तः समवृन्धुभि,

यूनी काममयं दुनोति च मनो वैधव्यदुःखाद् बधूः ।

२५

बालो दुस्त्यज एक एव च शिशुः कष्ट कृत वेधसा,

जीवामीति महीपते प्रलपति यद्बैरिसीमन्तिनी ॥”

चलचित्तान्पुरुषान् चालयतीति चला ११ । वामनेत्रा पुरन्त्री, वासिता वर्णिनी, प्रमदा, रमणी,

१ का० उ० ८३६ । २ का० सू० ११२।१० । ३ स्त्री० भा० २।६।२ । ४ का० उ०
६।८४ इति धिक् प्र० हस्य गश्च । ५ का० सू० ४।४।५६ । ६ का० उ० १।३५ । ७. स्त्री० भा०
२।६।२ । ८ का० सू० उ० ४६२ । ९ का० सू० ४।४।३४ । १० कारितस्यानामिङ्कारणे का० सू०
३।६।४४ इतीनो लोप । इन. कारितमज्ञा कातन्त्रव्याकरणे । ११ निमित्ताभाये नैमित्तिकस्याप्यपाय इति
परिभाषेन्दुशेखरे अकृतव्यूहपरिभाषार्थरूप । १२ रमते रामा । ज्वलादित्वाण् । रमयतीति तु न युक्तम्,
प्यन्त्यस्य ज्वलादित्वाभावात् । १३ सु अतीव उनात्स सुन्दरी । उन्दी क्लेदने । बाहुलकादप्र० । शकम्भादि-
त्वादुकारस्य पररूपम् । गौरादित्वाङ्गीप् इति रामाश्रम । १४. का० सू० २।४।५० । १५ चलचित्तो
पुरुषैश्चलतीति त चलत्येव विग्रह । पचायच्च । शिञ्जन्तात् चाला इति स्यात् ।

दयिता, प्रतीपदशिनी, कान्ता, वशा, महिला, महिला च ।

भार्या जाया जनिः कुल्या कलत्र मेहिनी गृहम् ।

महिला मानिनी पत्नी तथा दाराः पुरन्ध्रयः ॥३२॥

- दश कलत्रे । दुभृज्धारणपोषणयोः । भ्रियते पुष्यते गर्भेण भार्या । “^१ऋवर्णव्यञ्जना-
 ५ न्तात्प्यण्” । यकारमात्र । अत्योपधावृद्धि । भार्या इति जातम् । “^२स्त्रियामादा” । आप्रत्यय । प्र०
 सि । “^३श्रद्धाया सिलोपम् ।” सिलोपः । “ज्या वयोहानौ” जा (जि) नाति जाया । जनी प्रादुर्भावे
 च । सुवी जायते आत्मा पुत्रजाया । “^४सन्ध्यादयः-सन्ध्या वन्ध्या जाया इत्यादयः शब्दाः यक्प्रत्ययान्ता
 निपात्यन्ते । जनयति पुत्राञ्जनिः । इ ” सर्वधातुभ्यः” । कुले साधु कुल्या “यदुगवादित” । “कड
 मदे” कड तादादि० । कडति मायति योवनेनेति “कलत्रम्” । “अमिनत्किङ्किभ्योऽत्र” अत्रप्रत्यय ।
 १० कडत्रम् । डलयोरेक्यम् । प्रथ मि० नपु० “अका० मुरा० ।” मोऽनु० । गेहमस्त्यस्या मेहिनी ।
 ‘ग्रह उपादाने’ । गृह्णाति प्रत्युपाजित गृहम् । “^{१०}गेहेत्वक्” अक्प्रत्यय । “ग्रहिज्या” ^{११}—सम्प्रसारणम् ।
 मयते पूज्यते । माहिला । मान प्रणयकोपोऽस्या मानिनी । पति पतति याति पत्नी । ‘द विदारणे’ । द०
 क्र० । दोर्यते शतलण्डोभवति पुरुष एभिरिति दारा । “^{११}भावे” घञ् । अकारमात्र । “वृद्धि । दार
 इति जातम् । प्रथमा जम् । प्रया बहुत्व च । पुर धमयन्ति, नेत्रान्ते पुर शरीर धरन्तीति “^{१२}पुरन्ध्रयः ।
 १५ ज्ञेयम्, सहधर्मचारिणा, गृहाः, सहचरी, सहचरा । ^{१३}

वल्लभा प्रेयसी प्रेष्ठा रमणी दयिता प्रिया ।

इष्टा च प्रमदा कान्ता चण्डी प्रणयिनी तथा ॥ ३३ ॥

- एकादश वल्लभायाम् । वल्लते पत्युश्चित्त सवृणोतीति वल्लभा । “^{१४}कृशलिगर्दिरासि-
 वलिबल्लिभ्योऽभः” अभ प्रत्यय आप्रत्ययः । अतिशयेन प्रिया प्रेयसी । “नर” ^{१५}तमेयन्विष्ट ” प्रकर्षाऽर्थे
 २० ‘तर तम ईयसु इष्ट’ इत्येते प्रत्यया भवन्ति । अतिशयेन प्रिया प्रेष्ठा । रमते जनोऽत्र, मनासि रमयति

१ का० म० ४२।३५ इति घ्यण्प्रत्यय । २ का० सू० २।४।४९ । ३ का० ल० २।१।३७ ।
 ४ का० उ० ४।३० । ५ का० उ० ३।१४ । ६ का० सू० २।६।११ इति यत्प्र० । ७ का० उ० ३।५।
 गड संचने । गडति गड्यते वा “गडेगदेश्च कः” पा० उ० इत्यत्रन् । डलयोरेक्यम् । कड शासने मदे ।
 कडति कड्यत वा बाहुलकादत्रन् । कल मधुर ध्वनि त्रायते रक्षति वा । त्रैङ् पालने क इत्यन्यत्र ।
 ८ अकारादसम्बुद्धौ युञ्च इति पूर्णं का० सू० २।२।७ इति सेलापो मुरागमश्च । ९ मोऽनुस्वार
 व्यञ्जने इति पूर्णं का० सू० १।४।१५ इत्यनुस्वार । १० का० सू० ४।२।६० । ११ का० सू० ३।४।२
 ग्राह्यार्थाव्यवस्थावर्षाचिप्रच्छिन्नश्चिभ्रस्त्रीनामगुणे इति पूर्णवृत्तम् । १२ का० सू० ४।५।१३ । १३ का०
 सू० ३।६।९ । अत्योपधाया दीधौ वृद्धिर्नामिनामिनिचट्शु इति सूत्रस्वरूपम् । १४ स्यातु कुटुम्बिनी पुरन्ध्री
 २।६।६ । इयमरादिकोशेषु दार्ढ्यकारान्तपुरन्ध्रीशब्दस्यैव सत्त्वात् पुरन्ध्रय इति पाठोऽयुक्त इति न
 भ्रमितव्यम् । पुर धरन्तीति विग्रहे “अव इ” पा० उ० ४।१३९ इति इ । पृषोदरादित्वात्पुरोऽकारान्तत्व
 मुमागमञ्चिनी रीत्या तस्याऽयुपपत्तेः । अत एव “तौ स्नातकैर्वन्धुमता च राजा पुरन्ध्रिभिर्यत्र क्रमशः
 प्रयुक्तम्” इति रघु । पुरन्ध्रमयन्तीति न विचारसहम्, तत्साधकानुशासनविरहात् । १५ भार्यादियुरन्ध्रयन्त-
 शब्देषु सामान्यविशेषभावान्दर्शयेदो न विस्मर्तव्यः । तद्यथा—भायः, जाया, कुल्या, कलत्र, मेहिनी, गृह, पत्नी
 दारा परिणतस्त्रीवाचका । महिलामानिनी विशिष्टनाविके । पुरन्ध्री पतिपुत्रवती । १६ का० उ० ३।१२ ।
 १७ एतच्च कातत्रसूत्रं नोपलब्धम् । गुणाद्भाद्रेष्येयसू शा० सू० ३।४।७५ इतीयमुपत्ययो बोध्यः ।

वा रमणी । नरेषु दयते गच्छति ईष्टे वा दयिता । ग्रीणाति पतिचित्तं रञ्जयति प्रिया । इज्यते इष्यते वा इष्टा । प्रकृष्टो मदोऽस्याः प्रमदा । काम्यते नरेण कान्ता । चण्डते कुप्यति चण्डी । चण्डिका च । प्रणयोऽस्या अस्तीति प्रणयिनी ।

सती पतिव्रता साध्वी पतिवत्येकपत्यपि ।

मनस्विनी भवन्त्यार्या—

५

सप्त पतिव्रतायाम् । एक पतिरस्तीति संती^१ । पतिव्रत करोति, पतिरेव व्रत सेव्यो नान्यो यस्या इति वा पतिव्रता । पतिसेवैव व्रत यस्याः पतिव्रता । यत्नति — “नास्ति^२ स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतमिति ।” साधयति साध्वी । पतिरस्या अस्तीति पतिवती^३ । एक पतिर्यस्याः सा एकपती । मनोऽस्या अस्तीति मनस्विनी । अर्थते सेव्यते आर्या । सुचरिता ।

विपरीता निरूप्यते ॥ ३४ ॥

मया धनञ्जयेन, भाष्यकर्त्रा अमरकीर्तिना वा कथ्यते विपरीता असदृशा ।

१०

बन्धकी कुलटा मुक्ता पुनर्भूः पुंश्चली खला ।

पङ् बन्धकयाम् । बन्धाति तरुणचित्तानि बन्धकी । कुलमवति कुलटा । तथा चोणादौ । “टल टवल यकल्ये” हेताविन । अस्योपवाया दीर्घः । कुलपूर्वः । कुल टालयति कुलटा । “कुले” टालेरिलुक् इञ्” कुले उपपदे टालेरिवन्तस्य डः प्रत्ययो भवित इत्क् च । स्वाचार मुच्यते (लम्) पत्या जनैर्वा मुक्ता । पुनर्भवतीति पुनर्भूः । पुमास चालयति पुंश्चली । य पञ्चेन्द्रियोपपन्नमुख लाति गृह्णातीति खला, अन्यपुरुषलम्पट्वात् । पाशुला, स्वरिणी, असती, इत्वरी, घर्षणी, अविनीता, अभिसारिका, चपला ।

१५

स्पर्शाभिसारिका दृती स्वैरिणी शम्फली तथा ।

पञ्च दूयाम् । ‘स्पृश सस्पर्श’ । स्पृशति, स्पृशयति, अस्पर्शात् पस्पर्श वा घञ् । स्वर्शः । “पद-
रजविशस्पृशोच घञ्” । नामिनश्च गुणः । “जियामादा” आप्रत्यय । स्पर्शा । पुरुषान्तरमभिसरति अभिसारिका । दूयन्तेऽस्या^१ मालयति दृती । ‘ईर् गती कम्पने च’ । ईर् । ईरण्म ईर् । “भावे”
घञ् प्रत्यय । स्वस्य ईर् । स्वरः । स्वैरो विद्यतेऽस्या स्वैरिणी । “तदस्याऽस्तीति” मन्त्वन्त्वीन्” इन् ।
“नदाद्यञ्चिवाह” ई प्रत्ययः । रपृवणस्य^२ नस्य सन्त्वन् । श मुखम पलति निष्पादयतीति शम्फली । तथा तैर्नैव प्रकारेण ।

२०

गणिका लज्जिका वेश्या रूपार्जावा विलासिनी ।

पण्यस्त्री दारिका दार्मी कामुकी सर्ववल्लीभा ॥ ३६ ॥

२५

नव वेश्यायाम् । गणः पेटकोऽस्त्यस्या, गणयतीश्वरानीश्वरो वा गणिका । ‘लजि लाजि लाजा लज तर्ज भर्त्सने’ । लज्जयति निः स्वान्पुरुषान् तर्जयतीति लज्जिका । वेशे वेश्यावाटे भवा वेदया^१ । रूपेण आ समन्ताजीवतीति रूपार्जावा । विलामोऽस्याऽस्तीति विलासिनी । तथा चोक्तम्—

“हावां मुखविकारः स्याद् भावश्चित्तसमुद्भवः ।

विलासो नेत्रजो ह्येयो बिभ्रमोऽत्र दृगन्तयोः ॥

३०

१ अस्मातो शत्रुप्रत्ययान्तो डीवन्तः सतीशब्दः । २ “नास्ति स्त्रीणां पृथग् यज्ञो न व्रत नाप्युपोषणम् । पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे न हीयते” इति मनुस्मृतिः । ५।१५५। ३ पतिवन्ती, एकपती इति पाठो युक्तः । ४ का० उ० ५।४७ । ५ का० सू० ४।५।१ । ६ का० सू० ३।५।२ नामिनश्चोपधाया लघो इति पूर्णसूत्रम् । ७ दूयन्ते परितप्यन्ते । अथ कर्तार स्त्रीपुमासः । ८ का० सू० ४।५।३ । ९ का० सू० २।६।१५ । १० का० सू० २।६।५० । ११ का० सू० २।४।४८ । “पृथक्पृथक् नोममन्त्य स्वर्गद्वयकवर्गाऽन्तरोऽपि” इति पूर्णसूत्रम् । १२ वेशेन नेपथ्येन शोभते, “कर्मवेशाद्यत्” इति यत् । वेशे भवा दिगादित्वाद्यत् ।

पण्यस्व स्त्री पर्यस्त्री । परिमाणं कृत्वा रमयतीत्यर्थः । दृणाति विदारयति कामिनम् दारिका । दस्यति परिकर्मणा क्षयति, ददात्यात्मानं वा दासी । दाशी । तालव्यदन्त्यः । कामयते इत्येवंशीला कामुकी । सर्वेषां पुरुषाणां वल्लभा सर्ववल्लभा । सैरिन्ध्री ।

“चतुष्पष्टिकलाभिज्ञा शीलरूपादिसेविनी ।

५

प्रसाधनोपचारज्ञा सैरिन्ध्री कथ्यते बुधैः ॥”

गन्धकारिका । पण्यस्त्री च ।

कान्तेष्टौ दयितः प्रीतः प्रियः कामी च कामुकः ।

वल्लभोऽसुपतिः प्रेयान् विटश्च रमणो वरः ॥३७॥

- त्रयोदश कान्ते । काम्यतेऽभिलष्यते कान्तः । इष्यते इष्ट । दया कृपा सजाता अस्येति दयितः ।
 १० “तागकितादिदर्शनात्सजातेऽर्थे इतच् ।” “इवर्णावर्णयोर्लोपः स्वरे प्रत्यये पे च ।” आकारलोपः । सौरिकः । प्र प्रकर्षेण इ काममुखम् इत प्राप्तः प्रीतः । पुषीदरादित्वात् आकारलोपः । प्रीणातिस्म प्रीतः । प्रीणाति प्रीणीते वा प्रियः । “नाम्युपधप्रोक्कृजा कः” । “स्वरादाविवर्णावर्णान्तस्य धातोर्निजुवौ ।” कामोऽस्यास्तीति कामी । कामयते इत्येवंशील कामुक । वल्लभे वल्लभः । “कृशशलिगर्दि-
 रासिवलिवल्लिग्योऽभः” । अभ प्रत्ययः । असूना प्राणानां पतिः असुपति । अतिशयेन प्रिय प्रेयान् ।
 १५ “प्रियस्थिरस्किरोरुबहुलगुरुवृद्धन् प्रदीर्घवृन्दारकाणां प्रत्यक्षवर्वादिगर्वाधिन्नवृद्धाविवृन्दाः ।” विट शब्दे विटति कामोद्रेकशब्दं करोतीति विटः । “इगुपधेति कः । ‘रमु क्रीडायाम् ।’ रम् । रमते कश्चित् । त प्रयुङ्क्ते इत् । अस्योपधादीर्घः । “मानुबन्धानां ह्रस्वः ।” रमयतीति रमणः । “नन्यादेयु ।” “युवुभानामनाकान्ता” अनः । “कारितस्य” कारितलोपः । “रपृ” नस्य णत्वम् । वृणोति वर-
 यति वा वरः । कमिता । पतिः । वरयिता । भर्ता । भोक्ता । धवः । रुच्य । अभीकः । “अम्य-
 २० नुभ्यां कामपितरि को वा दीर्घश्च” जनयति कः । अभिकः । अमुकः । प्राणाधिनाथः । सेत्ता ।

सवित्री जननी माता

त्रयः मातरि । सूते जनयति सवित्री । जनयति जायतेऽस्या वा जननी । माति गर्भोऽत्र
 “मानयति वा माता । अम्ना ।

जनकः सविता पिता ।

२५

त्रयः पितरि । जनयति उत्पादयतीति जनकः । पुत्रान् सृजते (सूते) सविता । अहितान् पाति रक्षतीति पिता । “उणादौ” पा रक्षणे, पातीति पिता । ‘स्वस्वादयः’ १० । ‘स्वस्वनपृनेष्टृत्वष्टृ-
 क्षत्तृहोतृप्रशास्तृपितृमातृदहितृजामातृभ्रातरः’ एते शब्दास्तृप्त्ययान्ता निपात्यन्ते ।

१. “चतुष्पष्टिकलाभिज्ञा शीलरूपादिसेविनी । प्रसाधनोपचारज्ञा सैरिन्ध्री स्ववशेति चेति कात्य”
 इत्यमरकोशे स्त्री० स्वा० । २ का० सू० पू० ५०८ । ३ का० सू० २।६।४४ । ४ का० सू० ४।२।५१ । ५
 का० सू० ३।४।५५। इतीप् । ६ का० उ० सू० ३।१० । ७ पा० सू० ६।४।१५७। इति प्रियशब्दस्य प्रादेशः ।
 ८. “इगुपधज्ञाप्रोकिर कः” पा० सू० ३।१।१३५। ९ का० सू० ३।४।६५। इति ह्रस्वः । १०. का० सू०
 ४।२।४९। इति युप्रत्ययः । ११ का० सू० ४।६।५४। इति योरनादेशः । १२ का० सू० ३।६।४४।
 इतीनो लोपः । १३ का० सू० २।४।४८। १४ का० सू० नैतत्सूत्रमुपलब्धम् । जैनेन्द्रध्याकरणे-“शृङ्खलि-
 कोदरिके” त्यादि सूत्रम् ४।१।१७। तेन कप्रत्ययान्तः पक्षे दीर्घान्तश्चाभिर्कोऽभीक इति निपातितः । १५
 मानयतीत्यर्थः, विग्रहस्तु मातीत्येव । मा माने । तृच् प्रत्ययान्तः । १६. का० उ० २।४२ ।

देहापघनकायाङ्गं वपुः संहननं तनुः ॥ ३८ ॥

कलेवरं शरीरं च मूर्तिः

दश देहे । देहश्च अपघनश्च कायश्च अङ्गं च । समाहारसमासत्वादेकवचनम् । दिह । देहीति देहः । “दिहिदिहिदिलिपिश्चसिन्ध्यतीप्श्यातां च” । एषा णो भवति । अपहन्यते अपघनः । ‘मूर्ती’ घनिश्च” अल् । चिञ् चयने । चि । चीयतेऽसौ कायः । “शरीरनिवासयोः कश्चादेः” ५ चिनोते शरीरे निवासे चायं घञ् भवति आदेशश्च को भवति । उख, खल, वल, मल, रल, लखि, इखि वल्ग, रगि, लगि, अगि, वगि, मगि, स्वगि, इगि, रिगि, लिगि गत्यर्था । अङ्गति मरणं गच्छतीति अङ्गम् । उप्यन्ते पुरुषार्था अनेनेति वपुः । “पृवपिचक्षिजनितनिघनिभ्य उत्” एभ्य उत् प्रत्ययो भवति । सहन्यन्ते सपद्यन्ते धातवोऽत्र संहननम् । धातुभिः रसासृग्मासमेदोऽस्थिमज्जशुक्लैस्तन्यते तनुः । तन् । उणादौ तनुवित्तारे । तनोतीति तन् । ‘कृषि’ चमितनिधनि- १० बधिसर्जिखर्जिभ्य ऊ” एभ्य ऊप्रत्ययो भवति । कलते स्थिरत्वं गच्छति कलेवरम् । कडति मायति वा कलेवरम् । कडेवर च । अमरसिंहभाष्ये “कलयते कलेवरम्” शीयते क्षय गच्छति रोगज्वरादिभिः शरीरम् । “कृ-शृणोऽभ्य ईर ।” एभ्य ईरप्रत्ययो भवति । उणादित्वात् । मूर्त्वा मोहसमुच्छ्राययोः । मूर्छ । मूर्छन मूर्तिः । मित्र्या” किं । ‘घोपवन्थोश्च कृतिः’ इति नेट् । “राल्लोप (प्या)” इति छकार-लोप । “नामिनाबोदकुलुरोर्व्यञ्जने” दीर्घ । व्यञ्जनम् । प्रथ० सि । “रेफ०” विग्रहः । १५ वर्ष्म । पुरम् । पिण्डम् । क्षेत्रम् । गोत्रम् । घनः । पुद्गल । प्रतीक । अवयवः ।

अस्मिन् भवः

अस्मिन् काये भवः कायभव । देहभव । अपघनभव । अङ्गभव । वपुर्भवः । संहनन-भव । तनुभव । कलेवरभवः । शरीरभव । मूर्तिभव । कायज । देहज । अपघनज । अङ्गज । वपुर्ज । संहननज । तनुज । कलेवरजः । शरीरजः । मूर्तिजः । एतानि पुत्रनामानि भवन्ति । भव २० प्रयोगे ।

सुतः ।

पुत्रः सनुरपत्यं च तुक् तोकं चान्मजः प्रजा ॥३९॥

अथौ पुत्रे । सूयते सुत । पुनातीति पुत्रः । “पूजो ह्रस्वश्च ।” अस्मात् व्रक्प्रत्ययो भवति धातोर्ह्रस्वश्च । कोऽगुणार्थः । तथा च सोमनीयाम् — “य उत्पन्नः पुनाति वशं स पुत्रः । अथ २५ पुत्राभ्यो नरकात्त्रायते वा पुत्रः । सूयते सूनुः । “सूविषिभ्या यणवत् ।” आभ्या नु प्रत्ययो भवति, स च यणवत् । “पूङ् प्राणिगर्भविमोचने ।” पल शल पल्लु पये च गर्तौ । पत् नञ् पूर्व । न पतन्ति येन जातेन पूर्वजा नरकादौ तदपत्यम् । “नञि” पतेर्य” यप्रत्ययः । नस्य” तत्पु० सि । नपु०

१. का० सू० ४।२।५८। २. का० सू० ४।५।५८। इत्यल् घन्यादेशश्च । ३. का० सू० ४।५।३५ । ४. का० उ० २।४६। ५. का० उ० १।३१। ६. कले शुक्रे मधुराव्यक्तध्वनौ वा वर श्रेष्ठम् । “हलदन्तादि” ति सप्तम्या अलुक् । इत्यन्यत्र । ७. क्षीर० भा० २।६।७०। ८. का० उ० ३।४८। ९. का० सू० ४।५।७२। इति क्तिप्रत्ययः । १०. का० सू० ४।६।८०। ११. का० सू० ४।१।५८। १२. का० सू० ३।८।१४। १३. “व्यञ्जनमस्वर पर वर्णं नयेत्” इति पूरणं कातन्त्रसूत्रम् । १।१।२१। इति व्यञ्जनस्य पर-वर्णयोगः । १४. “रेफसोर्विसर्जनीय” इति पूर्णम् । का० सू० २।३।६३। इति सकारस्य विसर्गः । १५. का० उ० ४।४१। १६. नी० वा० समु० ५ सू० ११। १७. का० उ० २।८। १८. का० उ० ६।३०। १९. “नस्य तत्पुरुषे लोप्य” इति पूर्णम् । का० सू० २।५।२२। इति नलोपः ।

अका०^१ । मोऽनु०^२ । तोजति^३ तुक् । स्तूपते तोकम्^४ । आत्मनो जात आत्मज । प्रकपेण जाता प्रजा । “सप्तमीपञ्चम्यन्ते जनेर्द” बाल, पाक, अर्भकः, गर्भपोतश्च । पृथुक, शिशु, शव, डिम्भ, वटु, माणवक, भ्रूण ।

उद्वहस्तनयः पोतो दारको नन्दनोऽर्भकः ।

स्तनन्धयोत्तानशयौ-

५

अष्टो बालक । उद्वहतीति उद्वह । खश् । तनोति विस्तारयति वशम्, तनयः । “तनेः^६ कयः ।” पवते वातेन पोत^७ । दारयति दृणाति वा तरुणीना मनानि ‘दारक । ‘दुनदि सम्बद्धौ । नद् । अत एव नन्द । नन्दति कश्चित्तमन्यः प्रयुङ्क्ते । “धातोश्च होतो (हेतो)” इत् । नन्दयतीति नन्दन । “नन्दि” वासिमदिदूषिसाधिशोभिवर्धिभ्य इनन्तेभ्योऽसञायाम्^८ युप्रत्ययः । स्वमते “नन्दादे-
यु” यु प्रत्ययः^९ “युवुक्तानाम०”- इति युस्थाने अनः । “कारितस्यानामि० कारितलोप ।
१० ‘अर्ह मह पूजायाम्’ अर्हत्यर्भक । “मूकादयः^{१०}” मूकयुकाऽर्भकपृथुकवृकसृकमूका एते कप्रत्य-
यान्ता निपात्यन्ते । स्तनौ धयतीति स्तनन्धयः । “शुनीस्तनमुञ्जकूलास्यपुष्पेषु घेऽ” खश् ।
उत्तान, शेने उत्तानशय । “उत्तानादिषु कर्तृषु” अच् ।

स्त्री चेद् दुहितरं विदुः ॥४०॥

पुत्र्या दुहितरं^{११} दोग्धि मातृकुल दुनोति वा विदुः कथयन्ति । तनया, पुत्री ।

१५

वयस्याऽली सहचरी सग्रीची सवयाः सखी ।

पट् सख्याम् । वयसा तुल्या वयस्या । वयसी च । आ समन्ताच्चित्ता लाति आलिः ।
स्त्रियामी । अली । सह सार्धं चरतीति सहचरी । सहाश्रतीति सधृङ् । “सहसन्तिरसा सत्रिममिति-
रय ।” ईप्रत्यये सग्रीची । सह वयसा वर्तते सवया^{१२} । समान खयातीति सखि (खा) । स्त्रियामी
सखी । “सख्यादयः” सखि अश्रि प्रहि इत्यादयो डिप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते ।

२०

आलोविर्वर्जितं मित्रं गम्बन्धो मित्रयुक् सुहृत् ॥४१॥

चत्वारो मित्रे । आली रहितानि वयस्यादीनि नामानि मित्रवाच्यानि सुरित्स्वर्थः । “जिमिडा स्नेहने” । मेघति स्म मेदते स्म वा स्नेहयुक्तो भवति स्म वा मित्रम् । “चिमिदिन्या ऋक्” आभ्या^{१३}

१ “अकारादसम्बुद्धौ मुश्च इति पूर्णम् । का० सू० २।२।३। इति सेलोपो मुरागमश्च ।
२ “मोऽनुस्वार व्यञ्जने” इति पूर्णम् । का० सू० १।५।१५। ३ “तुज हिसात्रलादाननिकेतनेषु” । चुरादौ
वा णिच् । तोजति पितृधनमादने ‘तुक्’ इति टीकाशयः । ४. तौति पूरयति पितृकार्यं पितुरभावेऽपीति
तोकम् । तु सौत्रो धातुर्हिमावृत्तिर्त्तिषु । बाहुलकात्क इति व्युत्पत्त्यन्तरमप्यूहम् । ५ का० सू० ४।५।५१।
इति जनेर्द । ६ का० उ० २।२५। इति तन् धातोः कयप्रत्ययः । ७ पवते वातेनेति विग्रहस्तु नौका-
वाचकपोते ब्रौव्य । पुत्रार्थे तु पुनाति पवते वा वश पोत । मृगवाहम्यमि” इति का० उ० ४।२७।
सूत्रेण तन्वयः । ८ पुत्रमनोदारण बालद्राग न घटते । अतो दृणाति दारयति वा मातृयौवनम्,
पित्रोर्निस्सन्तानता जन्यातिवति तदाशयोऽभ्युज्जेय । ९ का० सू० ३।२।१०। १० का० सू० ४।२।४९।
“नन्दादे युः” इति सूत्रे दुर्गवृत्तिः । ११ का० सू० ४।६।१४ । १२ का० सू० ३।६।१४। इतीनो लोपः ।
इन कारितसञा कातन्त्रे । १३ का० उ० २।५।८। १४ का० सू० ४।३।३१। १५. का० सू० ४।३।१८
अत्र दुर्गवृत्तिः । १६ दोग्धि पितृकुलं दहति दुनोति वा मातृकुलं दुहिता । स्वसादित्वातृन्प्रत्यय
इत्याशयः । १७ का० सू० ४।६।७१। इति सहस्य सभ्यादेशः । १८ समान वयो यस्या इति विग्रहो
न्यायः । ज्योतिर्जनपदेति समानस्य सादेशः । १९ का० उ० ४।९। २० का० उ० ४।४० । २१. मेघति
मेदते इति वर्तमानकालिको विग्रहो युक्तः, न तु भूतकालिकः ।

त्रक् प्रत्ययो भवति । ककारो यण्वद्भावाऽर्थस्तेनागुणत्वम् । सम्यक् स्नेहेन बध्नातीति सम्बन्धः । मित्र युनक्तीति मित्रयुक् । सुष्ठु हरति चित्तं सुहृद्^१ । शोभन हृदय यस्य वा । सखा, मित्रम् ।

सहकृत्वा सहकारी सहायः सामवायिकः ।

चत्वारः सहाये । सहकृतवान् सहकृत्वा । 'कृञश्च^२' कनिष् प्रत्यय । प्र० सि० । "घुटि^३ चा०" दीर्घः । सह समन्तात्करोतीति सहकारी । 'नाम्यजातौ^४ णिनिस्ताच्छीत्ये' । सह सार्धम् अयते ५ गच्छति सहाय । समवाये नियुक्तः सामवायिकः । इकण् ।

सनाभिः सगोत्रो बन्धुश्च सोदर्यः

चत्वारो भ्रातरि । समाना नाभिर्यस्य सनाभिः । समान गोत्र यस्य सगोत्रः । बध्नाति स्नेहेन बन्धुः । "पट्यसि" वसिहनिमनित्रपोन्दिबन्धिब्रह्मणिभ्यश्च" एभ्य एकादशभ्य उ प्रत्ययो भवति । सोदर्यः । समानोदर्य, सगर्भः, सोदर, समानोदर, आत्मीय, स्वजनः, आतः, शातिः, १० सनाभेयः, सपिण्ड ।

अवरजोऽनुजः ॥ ४२ ॥

कनीयान्-

द्वौ (त्रयो) लघुभ्रातरि । अवर पश्चाज्जातः अवरजः । (अनु) पश्चाज्जातः अनुजः । "सप्तमी-^६ पञ्चम्योर्ज (म्यन्ते ज) नेर्ङ" । अयमनयोरतिशयेन युवा कनीयान् । "युवाऽल्पयो^७ कन्वा । कनिष्ठः । १५

अग्रजो ज्येष्ठः

अग्रे जातः अग्रजः । प्रकृष्टो वृद्धो ज्येष्ठ । "वृद्धस्य^८ ज्य" वृद्धशब्दस्य ज्य आदेशो भवति । पूर्वजः, वरिष्ठ, वर्षीयान्, अग्रिय ।

भ्रातृजानी स्वसाऽनुजा ।

त्रयो भगिन्याम् । भ्रातृजाता भ्रातृजानी^९ । स्वस (स्य) ति क्ष्यति क्षिपति चित्तं स्वसृ^{१०} । २० अदन्तः । अनु पश्चाज्जाता अनुजा । भगिनी । भगनी च । जामि । यामिश्र ।

भर्तुः स्वसा ननान्दा स्यात्-

स्यात् भवेत् । भर्तुः स्वसा भगिनी । ननान्दा । "टुनदि समृद्धौ" । नद् । "अत^{११} एव०" नन्पूर्व । न नन्दति भ्रातृजाया यस्या सत्या सा ननान्दा । "नञि^{१२} च नन्देऽर्त्तुन् दीर्घश्च" नञि उपपदे

१ सुष्ठु हरतीतिव्युत्पत्तिस्तु तान्तसुष्ठुशब्दे सम्भवति । मित्रवाचकदान्तसुहृद्शब्दे तु शोभन हृदय यस्येत्येव । हृदयस्य हृदादेश समासे । २ का०सू० ४।३।९०। ३. "घुटि चासम्बुद्धौ" ४. का०सू० २।२।१७ । का०सू० ४।३।७६। ५ का०उ० १।६। ६ का०सू० ४।३।११। ७ वर्तमानकातन्त्रे नोपलब्धम् । ८ वर्तमानकातन्त्रे नोपलब्धम् । ९. नान्यस्मिन्कोषे भ्रातृजानीशब्द उपलब्ध, नाप्येत-साधक किमपि व्याकरणसूत्रम् । भ्रातृजातेति विग्रहोऽपि भगिन्यर्थेऽसंगत । तथापि भ्रात्रा सह भ्रातृजातेति विग्रह बाहुलकादौणादिकमण्यप्रत्यय जनभातो प्रकल्प्य अणन्तत्वान्दोपि भ्रातृजानीति शब्दो ग्रन्थकारप्रत्ययात् कथञ्चित् समाधेय । १० स्वस्यति क्षिपति चित्तं भ्रातृ स्वसेति विग्रहो बोध्य । "अमु क्षेपणे" दिवादै । सुपूर्वकात्तत् "सुज्यसेऽर्त्तुन्" इति ऋन्प्रत्यय । कातन्त्रोणादौ तु "स्वसादयः" इति 'श्वस् प्राणने' इत्यत ऋन्प्रत्यये शकारस्य सकारे च "श्वसितीति स्वसा" इत्याह । अत्र क्षिपतीति दर्शनात् 'अमु क्षेपणे' इत्येव भाष्य कर्तुरभिप्रेत इति ज्ञायते । ११. "अत एव वर्जनादिदमनुबन्धाना नोऽस्तीति" दुर्गवृत्ति । का० सू० ३।६।१०। १२ का० उ० सू० २।३।९।

सति नन्देर्धातोः प्रत्ययो भवति अकारो दीर्घश्च भवति । ननान्दा इति जातम् ।

मातुलानी प्रियाम्बिका ॥ ४३ ॥

द्वौ मातुलभार्याभ्याम् । मातुलस्येय भार्या मातुलानी । “इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रहिमयमारण्य-
यवयवनमातुलाचार्याणामातुक् ईप्च्” । अम्बैव अम्बिका । ‘अम्बादिभ्यो डलोका’ ड, ल, इक, प्रत्यया
५ भवन्ति । प्रिया चार्षा अम्बिका प्रियाम्बिका ।

वैर्यारातिरभित्रोऽरिर्द्विट् सपत्नो द्विषद्रिपुः ।

भ्रातृव्यो दुर्जनः शत्रुर्दुष्टो द्वेषी खलोऽहितः ॥ ४४ ॥

पञ्चदश शत्रौ । विशिष्टाम् ई लक्ष्मीम् ईरयति निर्गमयति वीरः, वीरस्य कर्म वैरम् ।
[वैरमन्यास्तीति वैरी ।] वैरिपुरमिथर्ति गच्छति आरातिः^१ आरातिश्च । न मित्रम् अमित्रम् ।
१० अधर्मादृतादिवत् । “विपक्षे नञ्” इति सारस्वतसूत्रम् । शत्रुत्वमिथर्ति अरिः । द्वेष्टीति द्विट् ।
“सत्”सूत्रिषुद्दुहदुहयुजविदभिदक्षिदजिनीराजामुपसर्गेऽपि” क्तिप् । एकार्थाऽभिनिवेशेन समान
पतति सपत्न । द्विष्टे द्विषन् । निष्ठुर इति रिपुः । “ऋजुतर्कुवल्गुफल्गुशिगुरिपुपृथुनघव ।”
एते उप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । निपातनमप्राप्तप्राप्तार्थं प्राप्तस्य बाधनार्थम् । लवणेन यद्यदसिद्धं तत्सर्वं
निपातनात्सिद्धम् । तथा क्षीरस्वामिन—^२“रेपयति रिपुः । रेपु गतो । भ्रातर व्यथति मारयति
१५ “भ्रातृव्य । दुष्टजन दुर्जनः । परमभट्टारकश्रीयश कीर्तिसम्भाषितग्रन्थ—

“प्रशस्या न नमस्याऽपि दुजनैर्या विधीयते ।

कण्टकः पादलग्नोऽपि न शुभाय प्रजायते ॥”

तथा च सूक्तिमुक्तावल्याम् —

“वर क्षिप्तः पाणिः कुपितफणिनो वक्त्रकुहरे

२० वरं भ्रम्पापातो ज्वलदन्तलकुण्डे विरचितः ।

वर प्राप्तप्रान्तः सपदि जठरान्तर्निहितो

न जन्य दोर्जन्य तदपि विपदा सद्म विदुषा ॥”

अत्र ये केचिद् दुर्जना, मन्ति, तेषां मस्तकेऽशनिपातो भवतु । तथा च^३ —

“दुज्जण सुहियउ होठ जगि सुयणु पयासिउ जेण ।

२५ अमिउ विसे वासरु तिमिण जिमि मरगउ कच्चेण ॥”

शृणाति शीर्यते वा “शत्रु । दूष्यते निन्यते लोके दुष्ट । द्वेष्टि^४ द्वेषोऽस्यस्य वा द्विषन् ।

१ पा० सू० ४।१।४९। अत्र गृत्रे यमेत्यधिकं पाठ । २ “हायनान्तयुवादिभ्योऽण्” युवादित्वादण् ।
ततो मत्वर्थे “अत इनूठनौ” इतीन् । ३. “शृ गतो” । आङ्पूर्वकाद् शृधातोर्बाहुलकादातिप्रत्यय ।
अन्यत्र तु न राति सुखं ददातीति नञ्पूर्वकात् ‘रा’ (दाने) धातो क्तिच् क्तोच सञ्जयामिति क्तिच् ।
४. “तदन्यतद्विरुद्धतदभावेषु नञ् वर्तते” इति वक्तव्यम् । “अन् स्वरे” सार० समा० १४ सू० । ५ का०
सू० ४।१।७४। ६ का० उ० सू० १।६। ७ क्षीर० भा० २।८।१०। ८ “व्येञ् सवरणे” धातूनामनेकार्थ-
त्वादिसाऽयं वृत्तिः । आतोऽनुपगो क । ९. निरुयसागरयन्त्रालयप्रकाशितकाव्यमालासप्तमं गुच्छेयुक्ति-
मुक्तावलौ ६१ श्लो० । १० सावयध० दो० २ । ११ “जञ्वादय । जनुश्मसु शिशुशत्रव । एते वप्रत्य-
यान्ता निपात्यन्ते” । इति का० उ० दुर्ग० वृ० ३।६६। १२ द्वेषोऽस्यस्येति केवलमर्थाऽभिप्रायेण ।
विग्रहस्तु द्वेष्टीत्येव । शत्रुप० ।

खलति सन्नगुणानाच्छादयतीति खलत् । न मैत्रीं हिनोति गच्छति, न हितो वा, 'ग्रहित । अभियातिः, प्रतिपन्न, असहनः, जिघासु, परिपन्थी, पर, असुहृन्, अपथी, पर्यवस्थाता, शात्रव, प्रत्यनीकः, द्वेषणः, दुहृद्, दस्यु, अभिमन्थी ।

दीधितिर्भानुरुक्तोऽशुर्गभस्तिः किरणः करः ।

पादो रुचिर्मरीचिर्भास्तेजोऽर्चिगौर्धुतिः प्रभा ॥४५॥

५

षोडश किरणो । दीधति दीधने दीधिति । "दीधीडो डिति" दीधीडो धातोर्ङितिः प्रत्ययो भवति । 'भा दीमौ' भाति भानुः । "दाभाविट्ठ्यो नु ।" एभ्यो नु. प्रत्यय स्यात् । वसति रवौ 'उत्त । पुसि । अश्रुते जगद् व्याप्नोति अंशुः । स्त्री । उणादौ । अनच् । अनितीति अशुः । अनेः "शु" अनेधातो शुप्रत्ययो भवति । ["भा दीमौ" भाति भानुः । "दाभारी"] गा भुव वभस्ति 'गभस्ति ।

१०

"वर्णोगमो गवेन्द्रादौ सिहे वर्णविपर्ययः ।

षोडशादौ विकारस्तु वर्णनाशः पृषोदरे ॥"

कीर्यते किरणः । हलायुधे—'किरति विक्षिपति तमांसि किरणः ।' "९ कृभूभ्या कन् । कीर्यते करः । पद्यते पादः । "पदरुजविशस्पृशोच्चा घञ् ।" रोचते रुचिः । प्रियते तमोऽनेन मरीचि । स्त्रीनो । उणादौ । प्रियते मरीचि । "११ मृकणिभ्यामीचि" आभ्यामीचि प्रत्ययो भवति । भासते क्विप् सान्तो भास् । स्त्रीनो । 'पु स्येवेति शब्दभेद । भा । भासौ । भास । तेजयतीति तेजस् । अर्चयतीति अर्चिप् । अर्च्यते पूज्यते अर्चिः । 'अर्चि' 'शुचिर्हचिहुम्पिछिर्दिभ्य इतिः ।" गच्छति तमोऽजोदिते गौ । स्त्रीनो । द्योतन द्युति । द्योतने (वा) द्युति । प्रभाति प्रभा । रोचि, अमीशु, प्रद्योत, रश्मि, वृणि, रुचि, विभा, धाम वसु केतु, प्रग्रह, उपधृति, धृष्टि, पृश्नि, मयूख, विरोक, शेकञ्च ।

२०

दीप्तिर्ज्योतिर्महो धाम रश्मिरूर्जो विभावसुः ।

सप्त तेजसि । दीधने दीप्ति । द्योतते ज्योति । 'ज्योतिरादयः' १३ । ज्योतिर्वहिरादय । महति मह १४ । सान्तम् । दीधने सूर्येण सान्तम् धामन् । रश्मि सोत्र । रश्मि अश्रुते रश्मि । "ऊर्ज बलप्राणनयो ।" ऊर्जयतीति ऊर्ज । क । ["विभा वसुर्यस्य स विभावसुः ।"] (विभा । वसु ।)

शीतोष्णप्रायपूर्वाञ्चौ तदन्ताविन्दुभास्करो ॥४६॥

२५

तयोरन्तौ १५ तदन्तौ । इन्दुभास्करो । इन्दुश्च भास्करश्च इन्दुभास्करो । कथभूतौ १ शीतोष्ण-

१ न मैत्रीं हिनोतिस्मेनि भूते विग्रहो बोध्य । गत्यर्थवाकर्त्तरि क । न हितमस्मादिति रामाश्रम । २ का० उ० सू० ६।२६ । ३ का० उ० सू० २।७ । ४ "वस् निवासे" वस् धातो 'स्फाप्ति तञ्जी' त्यादि उ० मृत्रेण रक्त्प्रत्यय सप्रसारण च । ५ का० उ० सू० ५।४८ । अशयति विभावयति "अश विभावजने" उपत्यय व्युत्पत्त्यन्तर च । ६ पुनरुक्तत्वात्परिहार्य । ७ वभस्ति दीपयति । "भस भर्त्सनदी-प्यो" । तिप्रत्यय । पृषोदरादिन्वाल्षोडशादौ वर्णविकारवदोकारस्याकार । ८ शा० सू० २।२।१७२ । "पृषोदरादय" इत्यत्र कारिकारूपेण पठित । ९ का० उ० सू० ६।१४ । १० का० सू० ४।५।१ । ११ का० उ० सू० ३।६३ । १२ का० उ० सू० २।४। १३ का० उ० सू० २।४५ । १४ महन् मह । मह्यते पूज्यते वेति रामाश्रम । १५ वस्तुतस्तु "विभा" इति "वसु" इति च तेजसः सहा । समुदितो "विभावसु" शब्दस्तु सूर्याग्निवाची । तदुक्त "सूर्यवह्नी विभावसू" इति अम० को० ३।३।२२६ । १६ ते दीधित्यादयः शब्दा अन्ते यथोक्तौ तदन्तौ इत्येव समामो बोध्यः । तयोरन्ताविति समासस्तु लेखकप्रमादात्प्रयुक्त ।

- (प्राय) पूर्वाञ्चौ । शीतोष्णौ (प्रायेण) पूर्वाञ्चौ ययोरिन्दुभास्करयो (तौ) शीतोष्ण (प्राय) पूर्वाञ्चौ । शीतदीधिति । शीतदीधितिमान् । शीतभानु । शीतभानुमान् । शीतांशु । शीतांशुमान् । शीतगभस्ति । शीतगभस्तिमान् । शीतकिरण । शीतकिरणवान् । शीतपादः । शीतपादवान् । शीतरुचि । शीतरुचिमान् । शीतमरीचि । शीतमरीचिमान् । शीतार्चि । शीतार्चिमान् । शीतभा । शीतभावान् । शीतगु । शीतगोवा^१ (मा) न् । शीतद्युति । शीतद्युतिमान् । शीतप्रभ । शीतप्रभावान् । शीतदीप्ति । शीतदीप्तिमान् । शीतज्योति । शीतज्योतिमान् । शीतमहा । शीतमहस्वान् । शीतधामा । शीतधामवान् । शीतरश्मि । शीतरश्मिवान् । शीतोर्ज । शीतोर्जवान् । शीतविभावसु । शीतविभावसुमान् । किरणशब्दानां (ब्देभ्य) पूर्वं शीतशब्दप्रयोगे चन्द्रनामानि भवन्ति । उष्णशब्दप्रयोगे सूर्यनामानि भवन्ति । उष्णदीधिति । उष्णदीधितिमान् । उष्णभानु । उष्णभानुमान् । उष्णोक्ष । उष्णोक्षवान् । उष्णांशु । उष्णांशुमान् । उष्णगभस्ति । उष्णगभस्तिमान् । उष्णकिरण । उष्णकिरणवान् । उष्णपाद । उष्णपादवान् । उष्णरुचि । उष्णरुचिमान् । उष्णमरीचि । उष्णमरीचिमान् । उष्णभा । उष्णभास्वान् । उष्णनेत्रा । उष्णनेत्रवान् । उष्णार्चि । उष्णार्चिमान् । उष्णगु । उष्णगोमान् । उष्णद्युति । उष्णद्युतिमान् । उष्णप्रभ । उष्णप्रभावान् । उष्णदीप्ति । उष्णदीप्तिमान् । उष्णज्योति । उष्णज्योतिमान् । उष्णमहाः । उष्णमहस्वान् । उष्णधामा । उष्णधामवान् । उष्णरश्मि । उष्णरश्मिवान् । उष्णोर्ज । उष्णोर्जवान् । उष्णविभावसु । उष्णविभावसुमान् ।

शशी विधुः सुधासूतिः कौमुदीकुमुदप्रियः ।

कलाभृच्चन्द्रमाश्चन्द्रः कान्तिमानोषधीश्वरः ॥ ४७ ॥

- दश चन्द्रे । शशोऽस्यास्तीति शशी । विदधात्यमृतं विधुः । “वै धात्रश्च^२” । सुधा अमृत
 २० स्यते सुधासूतिः । कुमुदानामियं विकाशः (स) हेतुत्वात्कौमुदी (ज्योत्स्ना तस्याः प्रियः कौमुदीप्रियः) ।
 कुमुदानां प्रियः अमीष्टः कुमुदप्रियः । कला बिभर्तीति कलाभृत् । “मा माने” चन्द्र मातीति
 चन्द्रमाः^३ । “चन्द्रे” माने ” चन्द्रे उपपदे अस्मादस्तु प्रत्ययो भवति । अगुणवद्भावादकारलोपः ।
 भिन्नयोगः स्वार्थः एव । चन्द्रतीति चन्द्र । “स्त्वायि” तन्निवन्निश्चितिपिस्तुदिरुदिमदिमन्दिचन्द्रन्दी-
 न्दित्यो रक् । कान्तिरस्वास्ति कान्तिमान् । ओषधीनामीश्वरः ओषधीश्वरः । इन्दुः, सोमः, राजा,
 २५ रोहिणीवल्गुः, अञ्जः, ऋक्षेशः अत्रिनेत्रप्रसूतः । तथा चोक्तं यशस्तिलके—^४

“आहुर्नेत्रोत्थमन्त्रैः स्तुतममृतनिधेयं हरं नर्मबन्धु
 मित्रं पुण्यायुधस्य त्रिपुरविजयिनो मौलिभूषाविधानम् ।
 वृत्तिक्षेत्रं सुगणं यदुक्कलतिलकं बान्धवकरवाणं,
 सम्प्रीतिवस्तनोतु द्विजरजनियतिश्चन्द्रमाः सर्वकालम् ॥”

१ “मादुपधायाश्च” इत्यादि वत्विधायकं सूत्रम् । मवर्णाऽवर्णान्तान्मवर्णावर्णोपधाच्च
 मतोर्मकारस्य वकारः शास्ति । अत्र तथात्वाभावान् “शीतगोमान्” इति वक्तव्यम् । वस्तुतस्तु शीत-
 गोशब्दस्य कर्मधारये ततो “गोस्तद्धितलुकि” इति टचो दुर्वारत्वात् “शीतगववान्” इति सुवचम् ।
 सिद्धान्तस्तु नेटशब्दले मनुबिष्ट । तदुक्तं “न कर्मधारयान्मत्वर्थयो बहुव्रीहिश्वेतदर्थप्रतिपत्तिकरः ।
 २ का० उ० सू० ५।२। कुत्त्यय । ३. चन्द्र कर्पूरं मातिं तुलयति सादृश्येनेति ग्रन्थोक्तविग्रहार्थः ।
 चन्द्रमाह्लादं मिमीने तुलयति सादृश्येनेति विग्रहान्तरमप्युक्तम् । ४ का० उ० सू० ४।५७।
 ५. का० उ० सू० २।४७। आशवा० २।४७ श्लो० ।

प्रालेयाशुः, श्वेतरोचिः, शशाङ्कः, द्विजराजः, रजनिकरः, पीयूषरुचिः, निशीथिनीनाथः, जैवातुकः, मृगाङ्कः, दाक्षायणीरमणः, मा^१ अप्युच्यते, सत्यभामेतिवत् । सुधामर्तिः अमृतनिर्गमः, समुद्रनवनीतम् । देश्याम्^२ ।

उडूनि भानि तारकं नक्षत्रम्—

चत्वारो नक्षत्रे । अवति प्रभाम् उडु^३ । ब्रीह्मीवे । तथा चामरसिद्धे^४—

५

“नक्षत्रमृक्षं भन्तारा तारकाऽप्युडु वा स्त्रियाम् ।”

भाति दीप्यते भम् । क्षीरस्वामिनि—“भा विद्यतेऽस्य भम् ।” तरन्त्यनया तारा^५ । तारयति वा । ऋक्षोति दिनस्ति तम् ऋक्षम्^६ । नक्षत्रि खे याति न तम् क्षि (क्ष) णोति वा नक्षत्रम् । “अमि^७ नक्षिकडिभ्योऽत्रः” । तारक क्लीबेऽपि । यच्च^८ शाश्वतः—

“नक्षत्रे वाऽक्षिमध्ये च तारकं तारकाऽपि च ।

१०

लक्ष्य च—

द्वित्र्योर्मि पुराणमौक्तिकघनच्छाये. स्थितं तारकैः”

तत्पतिः

(नक्षत्र पर्यायेभ्य पर) पतिशब्दप्रयोगे चन्द्रनामानि भवन्ति । उडुपति । तारापति । ऋक्षपति । न.त्रपतिः । उडुराजः । उडुस्वामी । उडुनाथः । नक्षत्रेश्वर । तारेन्द्र ।

१५

निशा ।

क्षणदा रजनी नक्तं दोषा श्यामा क्षिपा

सप्त रात्रौ । निशाति तनूकरोति चेष्टामिति निशा, निशो वा । “आत^१°श्चोपसर्गो” । क्षणमवसर ददातीति क्षणदा । तमसा रञ्जति रजनि । स्त्रियामी. । रजनी । रजनशब्दाद् वा नदा-दित्वादाः । नेनेकि नक्तम् । तुष्ट दूषयति याऽत्र दोषा । आदन्तोऽव्ययाऽनव्यय । श्यावन्ते गच्छन्ति रात्रिञ्चरा अत्र श्यामा । तथाऽनेकार्थ^२ । “(धनि)सङ्घर्षम्—

२०

“श्यामा रात्रिस्तु चिद्श्यामा श्यामा स्त्री मुग्धयौवना ।

श्यामा प्रियङ्गुराख्याता श्यामा स्याद् वृद्धदारिका ॥”

क्षिप प्रेरणे । क्षिप् । क्षेपण क्षिपा । “^३पाऽनुबन्धभिदादिभ्यस्त्वङ्” । क्षिप्यते स्वायेन जनैः, निर्गम्यते वा । तमी । तमा आदन्तोऽव्ययानव्यय । तमिस्ता । तमस्विनी । विभावरी । नक्तमुखा । शर्बरी । श्रियाम् । निशीथिनी । यामिनी । वसति । वासनेयी । रात्रि ।

२५

१. “लोपः पूर्वपदस्य च अच्प्रत्यये तथैवेष्ट” इति कात्यायनवार्तिकम् । ५।३।८३। पा० सूत्रस्य पूर्वपदलोपविधायकमत्र प्रमाण बोध्यम् । २. “देशी” शब्दः प्रान्तभाषावाचकः । क्षीरस्वामि-कृताऽमरभाष्येऽपि बहुत्र उपलभ्यते । साधुत्वमस्य पचादेराकृतिगणत्वात् “देवी” इतिवद् बोध्यम् । वस्तुत-स्त्वर्यं शब्दो दैशिक एव । ३. अवति प्रभा रञ्जतीति ऊ । “अव रक्षणे” क्षिप् । “ज्वरत्वे” त्यूट् । डयते इति डुः । डयतेर्ङुप्रत्ययः । ऊर्ध्वासौ डुश्चेति कर्मधारय । नक्षत्राणां रक्षणाहंत्वादाकाशोत्पत्तनशीलत्वाच्च उडुत्वमुपपन्नम् । “इको ह्रस्वः” इत्युकारस्य ह्रस्व इति टीकाशयः । ४. अमं को० १।३।२१। ५. क्षीरं भा० १।३।२२। ६. भिदादित्वादङ् । अङि परे गुणः । निपातनाद्दीर्घः । ७. ऋषति गच्छति “ऋषी गतौ” तुदादि । औणादिकः सप्रत्ययः कित् । प्रत्यक्त्ववृत्तानि । ऋक्षमिति । ८. का० उ० सू० ३।५। ९. “यच्च शाश्वतः” इत्याख्य “स्थित तारकै” इत्यन्तः पाठ १।२।२२। क्षीरस्वामिभाष्यस्योऽत्र गृहीतः । १०. का० सू० ४।५।८। ११. ९६ श्लो० श्लोका० । १२. का० सू० ४।५।८ ।

करः ॥४८॥

(निशापर्यायात्परं) करशब्दे प्रयुज्यमाने चन्द्रनामानि भवन्ति । निशाकर । क्षणदाकर । रजनीकर । नक्तङ्कर । दीपाकर । श्यामाकर । क्षपाकर ।

तरणिस्तपनो भानुर्ब्रध्नः पूषाऽर्यमा रविः ।

५

तिग्मः पतङ्गो द्युमणिर्मार्तण्डोऽर्को ग्रहाधिपः ॥४९॥

इनः सूर्यस्तमो ध्वान्ततिमिरारिर्विरोचनः ।

- सप्तदश सूर्ये । तरन्त्यनेनेति तरणिः । “ऋतृ^१सृष्टृत्र^२ध्वम्य^३विष्टृतिग्रहिभ्योऽनि ।” तपति त्रिलोको तपनः । भाति दीप्यते करैः भानुः । “^२दाभारिवृन्भ्यो नुः” नुः प्रत्ययः । “बन्ध बन्धने” बन्धाति जन्तुदृष्टीर्ब्रध्नः । “^३बन्धेर्ब्रध्निश्च” । अस्मान्नक् प्रत्ययो भवति ब्रह्मादेशश्च । इकार उच्चारणार्थः ।
- १० पुष पुष्टौ । पुष्णाति वर्धते तेजसा पूषा । पूषादयः — “पूषन्नर्यमन्नुक्षत्रवन्लाहन्मातरिखन्क्लेदन्स्नेहन्-मूर्धन्यूपनदोषन्” एते कन्यन्ता निपात्यन्ते । इयतीति अर्यमा । ‘ऋ गतो’ । रूप्यते स्तृयते रविः । “इ” सर्वधातुभ्यः । तीतिक्षतीति तिग्मः । “युञ्जिह्वचितिञा ^५ध्मक्” । पतति नक्षत्रपथे पतङ्गः । “तृ-^७पतिभ्यामङ्ग” । आन्त्यामङ्गः प्रत्ययो भवति । दिवो मणिरिव द्युमणिः । मृतण्डस्यापत्य मार्तण्डः । मृतण्डश्च । आकाशमियति अर्कः । उणादौ “अर्च पूजायाम्” । अर्च्यते अर्कः । “^८इण्भीकापाशत्य चिकृदाधाराभ्य कः” एभ्यः क प्रत्ययो भवति । ग्रहाणामधिप स्वामी ग्रहाधिपः । एतीति इनः । “^९इण्जिकृषिभ्यो नक्” । सुवति (प्रेरयति कर्मणि) लोकान् सूर्यः । “सूर्यरूच्याभ्यः ^{१०}कर्तरि” । सूर्य इति यप्रत्ययान्तो निपातः । तमश्च ध्वान्तश्च तिमिरश्च तमो ध्वान्ततिमिरा, तेषामरिः, — तमोऽरिः, ध्वान्तारिः तिमिरारिः । विरोचते इत्येवशीलो विरोचनः । “^{११}रुचादेश व्यञ्जनाद्” । रुचा-देर्गुणाद् व्यञ्जनादेर्यु भवति । आदित्यः, सविता, सइन्द्रकिरणः, प्रद्योतनः, भास्करः, तिमराणुः, दिनमणिः,
- २० भास्वान्, विवस्वान्, हरिः, विकर्तनः, भगः, गोपतिः दिनकरः, सूरः सूरश्च, अशुमाली, मिहिरः, तिमिर-रिपुः, अशुमानः, अशुः, हरिदश्वः, सनाश्वः, प्रभाकरः, भानुमान्, हसः, खगः, मित्रः, चित्रभानुः, अहर्षति, कर्मसाक्षी, जगच्छुः, द्वादशात्मा, त्रयोतनुः ।

दिनं दिवाऽहर्दिवसो वासरः—

- पञ्च दिवसे । “दोऽवखण्डने” यति खण्डयति अन्धकारमिति दिनम् । “दोनात^{१२} इ (यतेरि) च” यते न प्रत्ययो भवत्याकारस्येच । रविर्दी [घान् दी] प्यतेऽत्र, आदन्तमव्ययम् दिवा । अदन्तः क्लीबम् । दिवं विदन् । न जहाति कालं (रवि) महः । ‘नत्रि^{१३} जहाते’ इति क्षिप् (कनिः) । दीव्यतीति दिवसः ^{१४} । दिवसम् । “^{१५}वेतसवाहसदिवसफनसाः” एतेऽसप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । वासयत्यत्र वासरः ^{१६} । वासोऽपि । उभयम् । “देवि^{१७}वटिजठिप्रमिवासिभ्योऽरः” एभ्योऽर् प्रत्ययो भवति । शुः । घसः ।

१. का० उ० सू० २।४३ । २. का० उ० सू० २।७ । ३. का० उ० सू० २।५२। दुर्गवृत्तिश्च । ४. का० उ० सू० २।५ । ५. का० उ० सू० ३।१४ । ६. का० उ० सू० १।५७ । ७. का० उ० सू० ५।२२ । ८. का० उ० सू० २।५७ । ९. का० उ० सू० २।५१ । १०. का० सू० ४।२।३० । ११. का० सू० ४।४।३१ । १२. का० उ० सू० ६।३७ । १३. का० उ० सू० २।४ । १४. दीव्यन्ति ऋडन्ति प्राणिनोऽत्र दिवस इत्यपि । १५. का० उ० सू० ३।११ । १६. “वास उपसेवायाम्” वासयति सूर्यालोक प्राणिन वा वासरः । विग्रहे “अत्र” इति पदमधिकम् । १७. नैतत्सूत्रम् का० उणादौ लब्धम् । तत्र “कृवाभ्यः सरक्” ३।६२। इति सूत्रम् । वातीति वासरः, वाधातोः सरक् प्रत्यय इत्युक्तम् । तत्रैव चतुर्थपादे ३३ तमपरमपि सूत्रम् “मद्यसिबशिवासिभ्यः सरः” इति वासिधातोः सरप्रत्यय उक्तः । वासयतीति वासरः । कौमुदीस्थमुणादिसूत्रम् “अतिक्रमिचमिभ्र-मिदिबिवासिभ्यश्चि” ३।१२७। इति वासिधातोरप्रत्ययः ।

तत्करश्च स ॥ ५० ॥

दिनकरः, दिवाकरः, अहस्करः, दिवसकरः, वासरकरः, इत्यादि सूर्यनामानि भवन्ति ।

चक्रवाकाब्जपर्यायबन्धुः—

चक्रवाकश्च अब्ज च चक्रवाकाब्जे, तयोश्चक्रवाकाब्जयोः (परत्र) बन्धु शब्दप्रयोगे सूर्य-
नामानि भवन्ति । चक्रवाकबन्धु । अब्जबन्धु । पद्मबन्धु । कमलबन्धु । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

५

कुमुदविप्रियः ।

कुमुदानां (परत्र) विप्रियशब्दे प्रयुज्यमाने सूर्यनामानि भवन्ति । कुमुदविप्रियः । कैरवविप्रिय ।
कुमुदविवल्लभः । इत्यादि ।

यमुनायमकानीनजनकः सविता मतः ॥ ५१ ॥

यमुनाजनक । यमजनकः । कानीनजनक । सविता । मतः कथित ।

१०

वाहोऽश्वस्तुरगो वाजी हयो धुर्यस्तुरङ्गमः ।

सप्तिरर्वा हरी रथ्यः—

एकादशाश्वे । वाहते गम्यतेऽश्ववाहैर्वाहः । तथा ऽनेकार्थः (ध्वनि) मञ्जर्याम्—

“वाहो युग्यं घनो वाहो वाहके वाह इत्यपि ।

वाहो मानविशेषश्च वाहो बाहुरिति स्मृतः ॥”

१५

“अशू व्यामौ ॥ अश् । अस्रुते व्यानोति वेगेनाभीष्टस्थानमित्यश्वः । अथवा “अश् भोजने”
अश्नाति भक्षयति मुद्गादीनित्यश्वः । “अशिलटिलटिविशिष्य क” । वमात्रः । “घोषवत्योश्च”
कृति” नेट् । “उरो (रसा) गच्छतीति उरगः । “डोऽसशायामपि” । पूर्वमश्वाना वाजा अभूवन्निति
श्रुतिः । वाजाः सन्त्यस्य वज्रतोत्येवशीलो वा वाजी । इदन्तोऽपि, वाजि । तथा हैमनाममालायाम्—

“वाज वाजस्तु पक्षेऽपि मुनो निःस्वनवेगयोः ।”

२०

हिनीति गच्छति वर्धते (वा) अनेन हयः । धुरि सङ्ग्रामे साधुर्युयः^१ । “यदुगवादितः” । तुर
(रेण) गच्छति तु (तो) तांति त्वरते वा तुरङ्गमः^२ । “गमश्च^३” नाम्युपपदे गमेश्च सशया खो भवति
“घात्वादेः^४ ष स” । सप्त्यध्वान गच्छतीति सप्ति । “सपेस्तिततितनः” सपेर्धातोस्तित तति तन् एते
प्रत्यया भवन्ति । अर्धति गच्छति अनेन नान्त, ^५ अर्धन् । इत्यनेन हरिः । रथे साधू रथ्यः^६ । गन्धर्वः,
तार्क्ष्य, ययु, घोटक, अर्दनि^७, वीति, पीति ।

२५

१ कानीन कर्ण । कन्याऽवस्थाया कुन्त्या कर्णादुत्पन्न इति पौराणिकी कथाऽनुसन्धेया ।
२. ११ श्लो०श्लोका० । ३ का० उ० सू० २।१।४ का० सू० ४।६।८।५ आन्तोऽय पाठः । उचितस्तु तुरेण
वेगेन गच्छतीति तुरग । ६ का० सू० ४।३।४।७ अने० स० २।७।८ धुर वहतीति धुर्यः । “धुरो यदुहको”
इत्यन्यत्र । ९ का० सू० २।६।११। १० तुरपूर्वकादुगमे “गमश्च” इति खे तुरङ्गमः । तोतोति त्वरते वेति विग्रहे
तत्सिद्धिप्रकारोऽन्यथा कल्पनीयः । ११. का० सू० ४।३।४।५। १२ का० सू० ३।८।२।४। १३ का० उ० सू०
५।३।८। १४, “अर्धं गतौ” बाहुलकात्कनिन् । १५ “रथ वहतीति सुवच । “तद् वहति रथयुग्रासङ्गम्”
इति यत् । १६ अर्दनिशब्दस्याश्वार्थे प्रमाण मृग्यम् । कोशान्तरेऽर्दनिशब्दार्थश्चेत्यम्—“अर्दनी चार्दनि-
रपि स्त्रियः स्यु प्रार्थनाऽर्थना” कल्प० को० १।१।२१। अर्धतीशब्दोऽश्विनीपर्यायस्तु सर्वसम्मत । “वीति”
“पीति” शब्दयोरश्वार्थे प्रमाणमधस्तात् “वीति सतिर्दधिकावा वातस्कन्धार्थ इत्यपि” कल्प० को० १।५।
१९३। “पीति पाने सपूर्वा तु सहपाने हये पुगान्” विश्व० ।

सप्ताद्यश्वो मयूखवान् ॥ ५२ ॥

अश्वशब्दस्य (ब्दात्) पूर्वं यदि सप्तादि (तशब्दः) तदा सूर्यनामानि भवन्ति । सप्तवाहः । सप्ताश्वः । सप्ततुरगः । सप्तवाजी । सप्तहयः । सप्तधुर्यः । सप्ततुरङ्गमः । सप्तसतिः । सप्तार्वाः । सप्तहरिः । समरथ्यः ।

५

ख विहायो वियद् व्योम गगनाकाशमम्बरम् ।

धौर्नभोऽन्तरीक्षं च-

एकादश गगने । खनति शून्यत्वेन खन्यते वा 'खम्' । विजहाति सर्वं विहायः । अवाय विहायसा पक्षिणा मार्गं विह यच्छतीति वियत् । (अथवा वीना पक्षिणा मार्गं यच्छति वियत्) । अमरेन्द्रभाष्ये — "वियच्छति^३ विरमति वियत् ।" वायुना वीयते (व्यवति व्यव्यते वा) व्योमन् । "स्त्रिव्यविमविज्वरित्वरामुपधाया" एवामुपधाया वकारस्य चोऽ भवति । "सर्वधातुभ्यो मन्" (इति विपूर्वकादवेर्मन्) । गम्यते सर्वमनेन गगनम्^६ । क्लीवे वा । गच्छत्यनेन गगनं वा । आकाशान्ते सूर्यादयोऽत्राकाशम् । न काशते वा छान्दसो दीर्घः । अम्बते शब्दायते अम्बरम् । दीव्यन्ति पक्षिणोऽत्र द्यौः । स्त्रियाम् । नह्यति ब्रह्माति सर्वमात्मना सान्तम् नभः । नभम् इत्यदन्तम् नभस च । न भ्राजतेऽभ्रम् । अन्तः शब्दायत्र अन्तरीक्षम् । पृषोदरादित्वम् । द्यावाभूम्योरन्तरीक्ष्यते वा अन्तरिक्षम्, अन्तरीक्षं च । मरुद्वर्त्मन् । तारापथः । पुष्करम् ।

१५ विष्णुपदम् । त्रिदिवम् । नाकम् । अनन्तम् । सुरवर्त्म । महाव^७ (वि) लम् । देश्याम् ।

मेघवायुपथोऽप्यथ ॥ ५३ ॥

मेघशब्दाग्रे वायुशब्दाग्रे च पथशब्दे प्रयुज्यमाने आकाशनामानि भवन्ति । मेघपथः । मेघमार्गः । घनपथः । घनमार्गः । पर्जन्यपथः । पर्जन्यमार्गः । मिहिरपथः । मिहिरमार्गः । नभ्राट्पथः । नभ्राण्मार्गः । तडित्पतिपथः । तडित्पतिमार्गः । सौदामिनीपतिपथः । सौदामिनीपतिमार्गः । वायुपथः । वायुमार्गः । वातायः । वातमार्गः । अनिलपथः । अनिलमार्गः । मरुपथः । मरुमार्गः । समीरणपथः । समीरणमार्गः । गन्धवाहपथः । गन्धवाहमार्गः । श्वसनपथः । श्वसनमार्गः । सदागतिपथः । सदागतिमार्गः ।

तच्चरः खेचरः-

तत्र आकाशे चरतीति तच्चरः । आकाशाग्रे चरशब्दे प्रयुज्यमाने विद्याधरनामानि भवन्ति । खचरः । विहायचरः । वियचरः । व्योमचरः । नभश्चरः । गगनचरः । अम्बरचरः । आकाशचरः । अन्तरिक्षचरः । मेघपथचरः । मेघमार्गचरः । वायुपथचरः । वायुमार्गचरः । घनपथचरः । घनमार्गचरः । घनाघनपथचरः । घनाघनमार्गचरः । जीमूतपथचरः । जीमूतमार्गचरः । अभ्रपथचरः । अभ्रमार्गचरः । बलाहकपथचरः । बलाहकमार्गचरः । पर्जन्यपथचरः । पर्जन्यमार्गचरः । इत्यादिनामानि विद्याधरस्य ज्ञेयानि ।

तद्गः,

तत्र गगने गच्छतीति तद्गः । गगनाग्रे "ग" शब्दे प्रयुज्यमाने शकुन्तनामानि भवन्ति । खगः । विहायोगः । वियद्गः । व्योमगः । नभोगः । गगनगः । द्योगः । आकाशगः । अन्तरिक्षगः ।

१ "खनु अवदारणे" डप्रत्ययः । "खर्व गतौ" खर्वत्यस्मिन्निति वा विग्रहः । अत्रापि ड । २ उक्तविग्रहे "ओहाक त्यागे" हाधातो "वहिहाधान्यशकुन्दसि" ४।२२। इत्यमुन् शित्व च । शित्वाद्युक् । विशेषणं हाययति गमयति विमानादीन् इत्यपि बोध्यम् । "हय गतौ"प्यन्तादसुन् । ३ क्षीर० भा० १।२।२। ४ का० सू० ४।१।५।७। ५ का० उ० सू० ४।२।८। ६ "गमेर्गश्च" इति युच् गश्चान्तादेशः । ७ महाविलशब्दस्याकाशवाचकत्वेऽमरकोषमधस्तात्प्रमाणम् — "तारापथोऽन्तरीक्षं च मेघाध्वा च महाविलम्" १।२।२। क्षेपकः ।

मेघपथग । मेघमार्गग । इत्यादिनि शतभ्यानि ।

पक्षी पत्री पतत्र्यपि ।

शकुन्तिः शकुनिर्विश्च पतङ्गो विष्किरोऽन्यथा ॥५४॥

सप्त पतङ्गे । पक्षाः सन्त्यस्य पक्षी । पत्राणि सन्त्यस्य पत्री । नान्त । पततीति पत्रिः । त्रिप्रत्यये इदन्तः । पत्राणि सन्त्यस्य पतत्री । नान्त । पततीति पते परतोऽत्रिप्रत्यये इदन्तो वा पतत्रि । हलायुष- ५
भाष्यकारेण डाल्लिणिकेन—पत्रिशब्द पत्रिन् नकारान्त पत्रिकारान्तश्च व्याख्यात । अमरसिंह-^१
नाममालायाम्—

“पतत्रिपत्रिपतगपतत्पत्ररथाण्डजाः ।

नगोकोवाजिविकिरत्रिविष्करपतत्रयः ॥”

इकारान्त पत्रिशब्द पठितोऽस्ति । भाष्यकर्त्ता क्षीरस्वामिना पत्रिकारान्तो निषिद्धः । १०
“पतेरत्रिरिति” भ्रान्त्या पतत्रि ग्रन्थकृदिदन्त मन्यते । एव कथितमस्ति श्रीमदमरकीर्तिना द्वयोर्वचन
प्रमाणम् । शब्दानां वैचित्र्यं वर्तते । नमसा गन्तुं शक्नोति शकुन्त । शकुन्ति । एव शकुनि । एव
शकुनी । शकुन्त । शकुन । ङौ अदन्तौ । वयतीति वि । “वेजो ङि” । पतेन वेगेन गच्छतीति पतङ्गः ।
विक्रिगति पत्राणि विष्किरः ।

“वर्णामो गवेन्द्रादौ सिद्धे वर्णविपर्ययः ।

१५

षोडशादौ विकारस्तु वर्णनाशः पृषोदरे ॥”

सुटागम । विकिरश्च ।

जाङ्गलं पिशितं मांसं पलं पेशी च—

पञ्च मासे । गन्त्यते अग्रते जाङ्गलं जङ्गलं च । पिशयते रुविरादिभिः पूर्यते पिशितम् । मन्यते
सम्भाव्यते शरीरोपचयोऽनेनेति मांसम् । “वृत्”वदिहनिमनिकस्यशिकपिण्य स” । एव सः प्रत्ययो २०
भवति । पलयते (पालयते) देहं पलम् । रुधिरादिभिः पिशयते (पिशति) शरीरम् पेशी । आमिषम् ।
रुच्यम् । तरसम् ।

तन्प्रियः ।

तस्य मासस्य प्रियः । आमिषशब्दाग्रे प्रियशब्दे प्रयुज्यमाने राज्ञसनामानि भवन्ति । जाङ्गलं
प्रियः । पिशितप्रियः । मासप्रियः । पलप्रियः । पेशीप्रियः । २५

यातुधानस्तथा रक्षो—

ढौ यातुधाने । यातूनि यातना धीयन्ते ऽस्मिन् यातुधानः । रक्षतीति रक्षः । राज्ञसः ।
कोणपः । कव्यादः । नैर्द्धतः । नैकसेयः । नैकपेयश्च । त्रिपुसेऽपि (कञ्चरः । अस्त्रपः) । कीनाशो नानार्थः ।

राज्यादिचर इष्यते ॥ ५५ ॥

१ अम० को० २।५।३४। २ क्षीर० मा० २।५।३४। ३ का० उ० सू० ४।५। रामाश्रमस्तु
वातीति विः । “वातेर्ङिच” इत्याह । ४ पतेन वेगेन गच्छतीति विग्रहे तत्साधु च कल्पनीयम् । तादृशसूत्राऽ-
नुपलम्भात् । पतत्युड्डयते इति पतङ्गः । “तृपतिभ्यामङ्ग” का० उ० सू० ५।२२। इत्यङ्गप्रत्ययस्तु
युक्तः । “तृपतिभ्यामङ्ग” इत्यङ्गप्रत्ययः । ५ “पृषोदरादयः” २।२।१७२। शा० कारिका । ६ “पिश अवयवे”
पिशति पिशयते स्म वा पिशितम् । “पिशे किञ्च” उ० सू० ३।६५। इतीतम् । अथवा क । इति रामा-
श्रमः । ७. का० उ० सू० ४।५३ । ८ रक्षन्तृभ्यादिति रक्षः । “सर्वधातुभ्योऽसुन्” । “मीमादयोऽपादाने”
इत्यन्यत्र ।

रात्रिशब्दाग्रे चरशब्दं प्रयुज्यमाने राक्षसनामानि भवन्ति । रात्रिचर । निशाचरः । क्षणदा-
चरः । रजनीचर । नक्तञ्चरः । दोषाचरः । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

प्रारभ्यते स्वर्गवर्गः

सुतोऽदितेस्-

५ अदितिशब्दाग्रे सुतशब्दे प्रयुज्यमाने दैत्य (देव) नामानि भवन्ति । अदितिमुतः । अदिति-
तनय । अदितिपोतः । अदितिदारकः । अदितिनन्दनः । अदित्यभङ्कः । अदितिस्तनन्धयः ।
अदित्युत्तानशयः ।

तडिद्धन्वा सेन्द्रो देवः सुरोऽमरः ।

१० पञ्च देवे । सह इन्द्रेण वर्तते इति सेन्द्र । “दिदु क्री०”—। दिव् । दीव्यन्ति क्रीडन्ति स्वर्गेऽ
 प्सरोमि सह विलसन्ति देवाः । अचा सिद्धम् । अथवा दीव्यति क्रीडति परमानन्दपदे
 देवः । सुष्ठु गजते सुर । तथा सुरन्ति सुरा । “सुर ऐश्वर्ये” सुरा एषामस्तीति वा । “अर्शसादि-भ्योऽच्”
 यतोऽब्धिजा सुरा तै पीता । न क्षिप्यते अमर । आदित्या । त्रिदशा । सुमनसः । स्वर्गाकसः । देवताः ।
 गीर्वाणाः । ऋभवः । मरुतः । वृन्दारकाः । निर्जराः । अस्वप्नाः । विबुधाः । त्रिविष्टपसदः । लेखा ।
 सुपर्वाणः । अमृताशनाः । अनिमिपाः । दैवतम् ।

१५ स्वर्घीः स्वर्गोऽथ नाकश्च,

चत्वारः स्वर्गैः । मुदितो जनः स्वरति शब्दं करोत्यत्र रान्तमव्ययम् । स्वरः । “दिवुः क्रीडादिषु” । दीव्यन्ति क्रीडन्ति अत्र पुण्यवन्त इति द्यौः । “दिवेर्दिविः” प्रत्ययो भवति । अतो तुष्टु अर्ज्यते स्वर्गः । “स्वः भूया गः” गप्रत्ययः । नास्त्यकः दः खमत्र नाकः । उभयम् ।

तद्वासस्त्रिदशो मतः ॥ ५६ ॥

२० तस्य स्वर्गस्य वास, तद्द्वास -स्वर्गवास । द्योवास, स्वर्गवासः, इत्यादीनि देवनामानि भवन्ति ।
तत्पतिः

तस्य देवस्य (स्वर्गस्य च) पति, तत्पतिः । देवपति, सेन्द्रपति, स्वर्गवासपति, स्वर्गपति, नाकपति, नाकेन्द्र, इत्यादिपर्यायनामानि इन्द्रस्य ज्ञेयानि ।

शक्र इन्द्रश्च शुनासीरः शतक्रतुः ।

२५ प्राचीनबर्हिः सुत्रामा वज्री चाखण्डलो हरिः ॥ ५७ ॥

शत्रुर्बलस्य गोत्रस्य पाकस्य नमुचेरपि ।

वृत्रहा च महस्राक्षो गीर्वाणेशः पुरन्दरः ॥ ५८ ॥

विडौजाश्चाप्सरोनाथो वासवो हरिवाहनः ।

मरुतश्च मरुत्वौश्च वृषा चैरावणाधिपः ॥ ५६ ॥

शतमन्युस्तुराषाट् च पुरुहूतश्च कौशिकः ।

संक्रन्दनोऽथ मधवान् पुलोमारिर्मरुत्सखः ॥ ६० ॥

त्रयस्त्रिंशदिन्द्रे । पातु शक्नोतीति शुक्र । “स्फायितश्चित्रश्चिशकिर्निषिधुदिरुदिमदिचन्दु-

१ "अर्श आदेर" जै० सू० ४।१।५०। २. का० उ० सू० ६।५३। ३. का० उ० सू० ५।६०।

४ तस्मिन् स्वर्गे वसतीति तद्वास । एप्रत्यय । स्वर्गपर्यायार्थात् परत्र वासशब्दे प्रयुज्यमाने त्रिदशनामानि भवन्तीत्यर्थः । ५. का० उ० सू० २।१४।

इदीन्द्रियो रक्' । इन्दति परमैश्वर्ययुक्तो भवति इन्द्र । रक् । शुन आदित्य शीरो वायुस्तयोरपत्यमणो लुक्प्रमेदाद्वा, दीर्घे शुनाशीरः । तालव्यद्वयम् । शोभनं नासीर कटकं वा यस्य स मुनासीरः । द्वौ दन्तौ । शु अव्यय तालव्यमपि । अत्र पक्षे प्रथमस्तालव्यो द्वितीयो दन्त्यो भवति । तथा च शोभना नामीरा अग्रेसरा अस्य, शुनासीर । शु पूजायाम्, श्वशुरवत्^१ । शुनासीरयोरपत्यमित्येके । शत क्रतवो यज्ञा यस्य शतक्रतु । प्राचीना प्राचीनमुखा बर्हिषो दर्मा यस्य स^२ । सुष्टु त्रायते नान्त^३ सुत्रामा । वज्र विद्यते यस्य स वज्री । आखण्डयति भिनत्त्यरीनाखण्डल । ह्रियते शचीकटाक्षैर्हरि ।

“शत्रुर्बलस्य गोत्रस्य पाकस्य नमुचेरपि”-

बलशत्रुगोत्रशत्रु पाकशत्रुर्नमुचिशत्रु, इत्यादीनि इन्द्रनामानि भवन्ति । वृत्र दानव यज्ञ वा हतवान् वृत्रहा । किप् । “(“किन्)ब्रह्मभूणवृत्रेण” किप् सहस्रमक्षीणि यस्य स सहस्राक्ष । गोर्वाणानां देवानां मीश (गीर्वाणेशः) । विट्सु प्रजासु ओजो यस्य । पृषादरादित्वाद् वृद्धि । विड मेदने वा । विड मेदकमोजो यस्य वा (विडौजा^३) । अप्सरसा नाथोऽप्सरोनाथ । वस्वपत्य वासव । हरिर्वाहन^४ यस्य हरिः । १०
पुण्यक्षये प्रियते च्यवते मरुत् । तान्तम् । मरुतो देवाः सन्त्यस्य मरुत्वान्^५ । वर्षति, नान्तम्, वृषा । ऐराव-
णानामधिप (ऐरावणाधिप) । शत मन्यवः क्रतवोऽस्य शतमन्यु । “पह मर्षणे” । पृह् । “धात्वादेः^६
ष स” । सहते कश्चित्तमपर प्रयुक्ते, “धातोश्च^७ हेतोः” इत् । अस्योप० दीर्घः । साहि जाते । तुर्पूर्वक ।
तुर त्वरितं साहयत्यभिभवत्यरीनिति तुरापाट् । “सहश्छन्दसि^८” विण् । “कारित्त्या०” कारितलोप ।
वेलोप^९ । “नहि^{१०} वृत्तिवृषिभ्यधिरुचिमहितनिपु को” कियन्तेषु प्राथकाराणां दीर्घः । तुरा जातम् । तुरासाह्
निष्पन्न । सि । “वृज्जनास्ताच्च^{११}” मिलोप । “हृष^{१२} च्छान्तेजादीना ड” इत्यडः । “सहे साड्^{१३} ष^{१४}”
सस्य पत्वम् । रपरत्वात्परपदेऽपि सस्य पत्वम् । स्वमते अपिशब्दबलात् । अथवा तुर वेग सहते तुरापाट् ।
“सह^{१५} श्छन्दसि” विण् पूर्ववत् । पुरु प्रभूत हूत यज्ञे यज्ञेष्वा (ज्ञे आ) ह्वान यस्य पुरुहूत । जातमात्रोऽ-
दित्या कुशैराच्छादितत्वात् (कौशिक) । तथा पुराणम्^{१६} —

“जानमात्रोऽथ भगवानदिश्या स कुशैर्वृतः ।

तदा प्रभृति देवेशः कौशिकत्वमुपागतः ॥”

कुशैर्दमैश्चरति वा । अरिस्त्री सङ्क्रन्दयति खड्गक्रन्दन । मङ्ग्यते पूज्यते नान्तो मघवा ।
“मङ्घे^१ नलुगवन्तश्च” मङ्घे कनि प्रययो भवति नलुगवन्तश्च । पुलोमस्या (ग्नोऽ) रि पुलोमारिः ।
मरुता पवनानां सखा मित्रः । (त्र) मरुत्मुख । टुश्यवन् । वृत्रारिः । बलसूदनः । वृद्धश्रवा । जिष्णु ।
वज्रधर । वास्तोष्पतिः । गोपति । पर्जन्य । हरिहयः । पूर्वदिक्पतिः । खराट् । गोत्रभिद् । अग्रधन्वा ।
हर्मिन् । पाकशामन । दिवस्पतिः ।

१. शु पूजायाम् अश्रुते व्याप्नोति “श्वशुर” इति व्युत्पत्त्या “श्वशुर” शब्दो निष्पन्नः । तद्व-
च्छुनासीरशब्देऽपि शु शब्दः पूजार्थ इत्याशयः । २. का० सू० ४।३।८३ । ३. वेवेष्टि व्याप्नोति विट् ।
“विण् व्याप्तौ” किप् । विड व्यापकमोजो यस्य स विडौजा । पृषोदरादित्वादोकारस्योकारः । इत्यप्यु-
ह्यम् । ४. त्वक्केशवालरोमाणि सुवर्णानि यस्य न । हरिः स वर्णतोऽवबन्तु पीतकौशेयसप्रभः । इति
शालिहोत्रोक्तप्रकारोऽश्वो हरिः । ५. मरुतो देवाः शास्यत्वेन सन्त्यस्येति यावत् । ६. का० सू० ३।८।२४।
७. का० सू० ३।२।१०। ८. का० सू० ४।३।६० । ९. का० सू० ३।६।४४ । १०. “वैरपृक्तस्य” पा० सू०
६।१।६७ । ११. पा० सू० ६।३।११६ । १२. का० सू० २।१।८९ । १३. का० सू० २।३।४६ । १४. पा० सू०
८।३।५६ । १५. का० सू० ४।३।६० । १६. श्लोकोऽयम् अभि० चि० २।८७ । टीकायामप्येवमेवोपलभ्यते ।
१७. का० उ० सू० ५।४ ।

काष्ठा ककुब् दिगाशा च दक्षकन्या तथा हरित् ।

षड् दिशायाम् । काशन्ते राजन्ते (नक्षत्रादयोऽत्र) काष्ठा^१ । क स्कुम्भाति विस्तारयति ककुब्^२ । भान्तम् । दिशत्यवकाश दिक् । “ऋत्विग्दधृक् खग्दिगुष्णिहश्च” इति साधु । आशुते आशा । दत् प्रजापति, तस्य कन्या, दक्षकन्या । हरत्यनया हरित्^३ ।

५

तत्पर्यायपरं योज्यं प्राज्ञैः पालगजाम्बरम् ॥ ६१ ॥

काष्ठादिनामतः परं योज्यं प्राज्ञै विद्वद्भिः पालगजाम्बरम् । काष्ठापालः । ककुपालः । दिक्पालः । आशापालः । दक्षकन्यापालः । हरित्पालः । पालप्रयोगे दिग्गजनामानि भवन्ति । काष्ठागज । ककुब्गज । दिग्गज । आशागज । दक्षकन्यागज । हरिद्गज । अम्बरशब्दप्रयोगे दिग्गजनामानि भवन्ति । काष्ठाऽम्बर । ककुब्गम्बर । दिग्गम्बर । आशाऽम्बर । दक्षकन्याम्बर । हरिद्गम्बर ।

१० तथा च —

“गिरिकन्दरदुर्गेषु ये वसन्ति दिग्गम्बराः ।

पाणिपात्रपुटाहारास्ते यान्तु परमा गतिम् ॥”

एवविधा मुनयो मध्याना शरणं भवन्तु जन्मनि ।

पवनः पवमानश्च वायुर्वातोऽनिलो मरुत् ।

१५

समीरणो गन्धवाहः श्वसनश्च सदागतिः ॥ ६२ ॥

नभस्वान् मातरिश्वा च चरण्युर्जवनस्तथा ।

प्रभञ्जनः—

पञ्चदश वार्यौ । पवते जगत् पवित्रीकरोति पवन । युच् । “पूङ् पवने ।” पू । पवते पवमान । ““पूङ् यजो शानङ्” आनमात्रः । अन्वि०^१ अनिच०^२ नाम्यन्तगुण । “ओ अच् ।” “आन्मो^३ ऽन्त आने” मोऽन्त । वातोति वायु । ““कुवापाजी”—ति उण् । वाति सर्वत्राऽस्वलित वा वायु । वाति अस्वलित याति, वात । ““भृगुवाइत्यमिदमित्पूयस्त” । अनेन जगत् अनिति प्राणिनि, न निलति वा अनिल । “निल गहने” । क्षुद्रजन्तवो म्रियन्ते स्पशैनास्य मरुत् । तान्तम् । ““मृधोऽति” उतिप्रत्यय । समन्तादीरयति समीरण । गन्धं वहति गन्धवह । गन्धवाह । गन्धवाही । श्वसन्यनेन श्वसन । सदा सर्वकालं गतिर्यस्य स सदागति । नभ आकाशमस्यास्तीति नभस्वान् । मातरि रेत श्वयति वर्धते नान्तो मातरिश्वन् । मातरिश्वेव भवति^४ मातरिश्वा । चगचर याति चरे-

२५

१ “काशू दीमौ” “हनिकुशि” इत्यादि २।२। पा० उ० सूत्रेण कथम् । २ क वात स्कुम्भाति विस्तारयति । कृप् । पृषोदरादिवात्सलोप । केनादित्येन जलेन वा कुम्भितानि भानि नक्षत्राणि यस्यामिति “ककुभा” इत्याद्यन्तोऽपीति केचित् । ३ का० सू० ४।३।७३। ४ हरन्ति नयन्ति अनया हरित् दिग्गजानेनैव कञ्चित् कुतश्चित् कुत्रचिन्नयति । “दृसृष्टिभ्यश्च इति” इतीति । ५ का० सू० ४।४।८ । ६ “अन्विकरणं कर्तरि” इति पूर्णं सूत्रम् । का० सू० ३।२।३२। इत्यन्विकरण । ७ “अनि च विकरणे” का० सू० ३।५।३। ८ का० सू० १।२।१।५ का० सू० ४।४।७। १० का० उ० सू० १।१।११ का० उ० सू० ४।२।७। १२ का० उ० सू० १।३।०। १३ मातरि जनन्या रेतः प्रसिक्त यथा वर्धते, तथाऽन्तरीक्षे वर्धमानो वायु ‘मातरिश्वा’ इत्याशय । क्षीरस्वामी तु—‘मातरि खे श्वयति’ इत्याह । रामाश्रमस्तु—‘मातरि जनन्या श्वयति वर्धते सप्तसप्तकल्पत्वात्’ इत्याह । धापन्नसत्त्वाया दितेर्निद्राऽवस्थाया तत्कुक्षिप्रविष्टेनेन्द्रेण कुलिशद्वाग तद्गर्भस्यैवोनपञ्चाशच्छुक्लीकरणस्य पुराणप्रसिद्धत्वात्सप्तसप्तकल्पमुपपन्नम् । “दृ ओश्चि व गतिवृद्धयो ।” शिवघातो “श्वन्नुद्भि” ति कनिन्नन्तो निपातः सप्तम्या अलुक् च ।

“रण्युः । ‘केवयुमुरण्यव्यर्वादयः’ केवयादयः शब्दा बहुप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । तथा च द्विसन्धानकाव्ये^२—

“असूययाऽगम्य निशाम्य यां पुरो
विलज्जयाऽम्भःपरिणामिनीदशाम ।
गता इवाभान्ति कुलाद्रिपेशला-

अरण्युलोलाः परिखाऽम्बुवीचयः ॥”

५

“जु” इति सौत्रो धातुर्गतो । मौत्रा धातवोऽपि स्वादौ पठ्यन्ते । जवतीति जवन । ‘जुचट्-
कम्यदन्त्रम्यसृष्टधिवल्लुचपतपदाम’ एभ्यो युभवंति । सर्वा दिशाः प्रभनक्ति प्रभञ्जन । जगत्प्राण ।
पृथदश्व । स्पर्शन । समीर । हरि । महाबलः । आशुग ।

अस्य पर्यायपुत्रौ भीमाञ्जनात्मजौ ॥६३॥

अस्य पर्यायात् प्रभञ्जनादिशब्दात्परत्र पुत्रशब्दो दीयते तदा भीमहनुमतोर्नामानि भवन्ति । १०
पवनपुत्र । पवनतनय । पवमानतनय । वायुपुत्र । वायुतनय । वातपुत्र । वाततनय । अनिलपुत्रः ।
अनिलतनयः । समीरणपुत्र । समीरणतनय । गन्धवाहपुत्र । गन्धवाहतनय । श्वसनपुत्र । श्वसनतनय ।
मदागतिपुत्र । मदागतिनय । नभस्वरपुत्र । नभस्वतनय । मातरिश्वपुत्र । मातरिश्वतनय ।
चरण्यपुत्र । चरण्युतनय । जवनपुत्र । जवनतनय । चलपुत्र । चलतनयः । प्रभञ्जनपुत्र । प्रभञ्जन-
तनय । भीमभ्य हनुमतश्च नामानि जातव्यानि ।

१५

तत्तमखाऽग्निः,

तस्य वायो, मत्वा तत्सखः । वायुशब्दाग्रे सख्यशब्दे प्रयुज्यमाने अग्निनामानि भवन्ति ।
पवनसख । वायुसख । अनिलसख । वातसख । मरुसख । गन्धवाहसख । समीरणसख । श्वसनसख ।
मदागतिसख । नभस्वसख । मातरिश्वसख । चरण्युसख । जवनसख । चलसख । प्रभञ्जनसख । पवनेष्ट ।
पवमानेष्ट । इत्यादीनि अग्नेर्नामानि जातव्यानि ।

२०

शिखी वह्निः पावकश्चाशुशुभणिः ।

हिरण्यरेता मसार्चिर्जातवेदास्तनूनपात् ॥ ६४ ॥

स्वाहापतिर्हुताशश्च ज्वलनो दहनोऽनलः ।

वैश्वानरः कृशानुश्च रोहिताश्वो विभावसुः ॥ ६५ ॥

वृषाकपिः समीगर्भो हव्यवाहो हुताशनः ।

२५

एकविंशतिर्ग्नो । “अक अग कुटिलाया गतौ ।” अगति वायुवशाद्ध्व गच्छतीत्यग्नि ।
शिखाऽस्त्यस्य शिखी । उद्यते वह्निः^५ । “अग्निश्चश्रियुवहिभ्यो नि” एभ्यो धातुभ्यो नि प्रत्ययो
भवति । पुनाति पात्रकः । आशु शोषयति रसान्^६ आशुशुभणिः । “आशौ शुपे सनिक्” । “शुप

१ चरण्युशब्दोऽयम्, न तु चरेण्युः । द्विसन्धानेऽपि चरण्युशब्दस्यैव दर्शनात् । एतत्साधकमुष्णा-
दिमृत्रम् अभिधानचिन्तामणिटीकायाम् (३।४८३) उपलभ्यते, नैवान्यत्र । वस्तुतस्तु वैदिकोऽयं प्रयोगः ।
‘चरण् वरण् गतौ’ कण्डवाद्वा चरण् धातुर्यक् प्रत्ययान्त । ततः “क्याच्छन्दसि” पा०सू० ३।२।७० । इत्यु-
प्रत्ययः । सुन्नयु, तुरण्यु, भुण्य, सपर्यु, आदिशब्दवदस्य सिद्धिः । विशेषस्तु “क्याच्छन्दसि” इत्यस्य
तत्त्वबोधिन्या द्रष्टव्यः । चरण्यतीति चरण्यु । २ स० १ श्लो० १९ । ३. का० स० ४।४।३२ । ४ वहति
हव्य वह्निरिति व्युत्पत्तिरन्यत्र । ५ का० उ० सू० ३।५० । ६ आशोऽमुमिच्छतीति आशुपूर्वकाच्छुपेः
सञ्जनात् “आडि शुपे सनश्छन्दसि” पा०उ०सू० २।१०६ । अनि । आशु शीघ्रम्, आशु वीहि वा शु
मुण्डु क्षणोतीति वा । “सर्वधातुभ्य इन्” इत्यन्यत्र । ७ का० उ० सू० ५।१५ ।

शोपे ।” अन्तर्भूतकारितार्थोऽयम् । आशुपूर्वः । आशानुपपदे शुषे सन्निक् प्रत्ययो भवति । हिरण्यं रेतोऽस्य स हिरण्यरेता । यत् स्मृतिः—“अग्नेरपत्यं प्रथमं सुवर्णम्” । सप्तार्चिषो यस्य स सप्तार्चिः । भवन्ति “हिरण्या, कतका, रक्ता, कृष्णा, प्रसुतभावाऽन्या । अतिरिक्ता बहुरूपेति सप्त सप्तार्चिषो जिह्वाः ।” जाते जाते विद्यते सान्तो जातवेदस् । जाता वेदा अस्माद् वा जातवेदाः^२ ।

- ५ तनू न पातयति तनूनपात् । अपि तान्तो दान्तो वा । ‘स्वाहा’ इत्यस्य (स्याः) पतिः भर्ता स्वाहापतिः । हुत वषट्कारकृत वस्तु अश्नातीति हुताश । हुतम् आशो भोजन यस्य वा । ज्वलतीत्येवशीलो ज्वलन । दहतीत्येवशीलो दहनः । अनिति प्राणिन्येन अनलः । विश्वानरस्यापत्य वैश्वानरः । कृश्यति तनूकरोति कृशानुः । रोहिताऽख्यो मृगोऽश्वो बाहनमस्य रोहिताश्वः । विभावमुर्धन यस्य स विभावसु । वृषो धर्मः कपिर्वराहः श्रेष्ठश्च तद्रूपात् वृषाकपिः । “पुराणम्—

१०

“कपिर्वराहः श्रेष्ठश्च धर्मश्च वृष उच्यते ।

तस्माद् वृषाकपिः प्राह काश्यपो मां प्रजापतिः ॥”

हमीनाममालायाम्^६—

“वृषाकपिर्वासुदेवे शिवेऽग्नौ च ॥”

- १५ शम्पा गमो यस्य स शमीगर्भः । हव्य वहतीति हव्यवाट् । हुतमश्नातीति हुताशन । बहुल । वसु । सिततरंगति । अर्चिष्मान् । धूमवज्रः । बहिर्ज्योतिः । उपवृध । चित्रमान् । शुचि । कृषीटयोनि । दमुना । कृष्णवर्मा । अपापितम् । वीतद्वेष्टः । वृहद्भानु । आश्रयाशः । धनत्रयः । तमोन । दमुना इत्येके । दमेरुनमि ।

तदादिसुनुः,

अग्निस्सुनुः । बह्निपुत्र । वृषाकपिसुनुः । वृषाकपिपुत्र । इत्यादीनि स्कन्दनामानि भवन्ति ।

२०

सेनानीः स्कन्दश्च शिखिवाहनः ॥ ६६ ॥

कार्तिकेयो विशाखश्च कुमारः पण्मुखो गुहः ।

शक्तिमान् क्रौञ्चभेदी च स्वामी शरवणोद्भवः ॥ ६७ ॥

- २५ द्वादश स्कन्दे । सेना नयतीति सेनानीः । “सत्सु” द्विपट्टद्वयजविदभिदछिदजिनीराजामुपसर्गेऽपि एवामुपपत्तेऽयनुपसर्गेऽपि नाम्यनाम्न्युपपदे किञ् भवति । स्कन्दस्यरीन् स्कन्दः । स्कन्दः शुष्क रेतोऽस्य वा । शिखी मयूरो बाहनमस्य शिखिवाहनः । कृत्तिकानामपत्य कार्तिकेयः । दानवबलौत्रस्तेजासि इयति विशेषेण तनूकरोति विशाखः । विशाखामुतो वा । कुमारो ब्रह्मचारित्वात् ।

१. अम को० क्षी० भा० १।१।५५ । २. सर्वत्रोत्पन्नपदार्थे वर्तमानत्वाद् वेदोत्पत्ति-
रणात्वेन चाग्नेरुत्पत्त्याच्च । जात वेदो धन (सुवर्ण) यस्मात् जात वेति वेदयते वा इति न्युत्पत्तिर्गपि ।
३. तनू स्वस्वरूप न पातयति दहतीत्यर्थः । किप् । “नभ्राण् नपात्” इति नलोपाभावः । तन् न पति
रक्षति जाते जाते विनष्टत्वादिति वा । पाते शनृप्रत्ययः । तन्वा ऊन पाति रक्षतीति तनूनप धृत
तदतीति । “आदोऽनन्ने” इति विट् । इत्यप्युक्तम् । ४. कृशोऽयनिति वर्धते कृशानुरिति वा ।
५. श्लाकोऽयम्, अभि० चि० २।१२९ । टीकायामेवोपलभ्यते । ६. अनेका० स० ४।२।१८ ।
७. का० सू० ४।३।७४ । ८. स्कन्ध रेतोऽस्येत्यर्थोभिप्रायेण । विग्रहस्तु स्कन्दति शुष्करेता भवतीति स्कन्द
इत्येवंरूप । ब्रह्मचारिणा शुष्करेतस्त्वमागमात्सिद्धम् । पचाद्यच् । ९. विपूर्वात् “शो तनूकरणे”
इत्यस्माद् बाहुलकात्त्वप्रत्ययः, विशाखानक्षत्रे जातो वा । विशाखयति विशेषेण व्याप्नोति दानवबलमिति
वा । “शावृ व्याप्नोति” पचाद्यच् ।

कुत्सितो मारोऽस्येति कुमारः^१ । पण्डितानि यस्य स परमुखः । गूहति रक्षति देवसैन्यं गूढः । “नाम्बुपुष
मीकृगृहा कः ।” शक्तिविद्यतेऽस्य शक्तिमान् । कौञ्चं पर्वतं भिनत्तीति कौञ्चमेदी । स्वमस्त्यस्य स्वामी^३ ।
शराणां वनम्, शरवणम्, तस्मिन्नुद्भव शरवणोद्भवः । गौरीपुत्रः । शक्तिपाणि । तारकारि । अग्निभूः ।
बाहुलेयः । गाङ्गेयः । ब्रह्मचारी । महासेनः । महातेजा । पार्वतीनन्दनः ।

तत्पिता शङ्करः शम्भुः शिवः स्थाणुर्महेश्वरः ।

५

त्र्यम्बको धूर्जटिः शर्वः पिनाकी प्रमथाधिपः॥ ६८ ॥

त्रिपुरारिविशालाक्षो गिरीशो नीललोहितः ।

रुद्रेन्दुमौलिर्गङ्गारिस्त्रिनेत्रो वृषभध्वजः ॥ ६९ ॥

उग्रः शूली कपाली च शिपिविष्टो भवो हरः ।

उमापतिर्विरूपाक्षो विश्वरूपः कपर्धपि ॥ ७० ॥

१०

एकोनविंशदीश्वरे । तस्य स्कन्दस्य पिता । शं सुखं करोतीति शङ्कर । शम्भवती (त्यस्मादि)
ति “शम्भुः” । “सुखो दुर्विशप्रेषु च ।” शेते प्रलयकाले जगदत्र शिवः । जगति प्रलीनेऽपि तिष्ठति
स्थायुः । महोऽव्यशौ ईश्वरः महेश्वरः । त्रीण्यम्बकानि अक्षीण्यस्य त्र्यम्बकः । त्रयाणां लोकानाम् अम्बक
पितेत्यामम् । धूम्रांभृता जटयो जटा यस्य, धूर्गङ्गा जटिपु यस्य वा धूर्जटिः । शृणाति वैश्वान् शर्वः ।
“शर्वजिह्वाप्रीवा” एते क्रप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । पिनाकमस्त्यस्य पिनाकी । प्रमथाया “अधिपः, प्रम- १५
थाधिपः । त्रिपुरामुरस्वारिस्त्रिपुरारिः । विशाले विस्तीर्णे अक्षिणी यस्य विशालाक्षः । “सक्यक्षिणी
स्वाङ्गे ।” गिराणामीशो गिरीशः । कालकूटमक्षणात्रीलं कृष्णं लोहितं यस्य स नीललोहितः । “नीलः”
कण्ठे लोहितश्च वेशे इति नीललोहितः” इति पुराणम् । रोदयत्यरिस्त्री रुद्रः । “स्फायितश्चिवञ्चि-”
शक्तिक्षेपिष्ठुदिरुदिमदिमन्दिचन्नुन्दीन्दियो रक् ।” इन्दुमौलिमुकुट यस्य (स) इन्दुमौलिः^३ ।
यज्ञानां पशुकारणलक्षणानाम् अग्निः, यज्ञारिः । त्रीणि नेत्राण्यस्य त्रिनेत्रः । वृषभो बलीवदो ध्वजाया २०
यस्य स वृषभध्वजः । कोपमूर्जति उग्र । “शूलमस्त्यस्य शूली । कपालं मनुष्यकरोदिरस्त्यस्य कपालो ।
शिवः पिष्टो हता अस्थिरूपो (विष्टे) मूर्ध्नि यस्य स शिपिविष्टः^४ । भवतीति भव^५ । हरत्यग्र हरः ।

१ “कुमारं क्रीडायाम् ।” कुमारयतीति पचायच् । को पृथिव्या मारयति दृष्टान्ति वा
विग्रहो बोध्यः । २ का० उ० सू० ६।६८ । इतीन्प्रत्ययः । ३ स्वशब्दादामिन् प्रत्ययः । “स्वामिर्देवयै”
पा० सू० ५।२।१२६ । अथवा शोभनममति रक्षतीति स्वामी । “सावमेरिन् दीर्घश्च” का० उ० सू० ६।६८
इतीन् प्रत्ययः । ४ शम्भवति भावयतीत्यर्थो वा । अन्तर्भावित्यर्थोऽत्र भवतिः । ५ का० सू० ४।४।५६ ।
६ उक्तविग्रहे शोभां हुलकाङ्गुविप्रत्ययः । शिवं करोतीति शिवयति, ततः पचायच्च शिवो वा । शिवम-
स्यास्त्यस्मिन्नेत्यपि विग्रहो बोध्यः । ७ का० उ० सू० २।२। ८ प्रमथाया दुर्गायाः । परन्तु “प्रमथाः स्युः
पारिपदाः” इत्यमरादिषु प्रमथशब्दस्य शिवपर्यायत्वेन प्रसिद्धेः, दुर्गात्वेनाप्रसिद्धे प्रमथानामधिपः
इति सुवचम् । ९, “राजादीनामदन्तता” का० सू० २।६।४१ । वृत्तिः ५०। १० नीलं कण्ठे लोहितं जटाया-
मङ्गं यस्येति विग्रहार्थः । तदुक्तम्—“नीलं येन ममाङ्गु रसाकं लोहितं त्विवा । नीललोहितं इत्येष
ततोऽहं परिकीर्तितः ॥ इति स्कान्दे” इति मुकुटः । ११ अम० को० क्षीर० भा० १।१।३३ । १२ का० उ० सू०
२।१४ । १३ इन्दुमौलिं यस्येति विग्रहः सरलः । १४ उच्यति क्रुधा समवैति उग्रः । “उच् समवाये”
उच् घातु । ततो रक् । गङ्गान्तादेशः । ऋग्रेन्द्रादि उ० सू० । १५ शिवपिष्टशब्दयोराद्यक्षरोपादानेन
शिपिशब्दोऽ । १६, अभ्यायं भवति कल्पते इत्यर्थः ।

उमायाः पति उमापतिः । विरूपाण्यक्षीण्यस्य विरूपाक्षः । विश्वेषु रूप यन्त्र स विश्वरूपः । कपर्दोऽ
स्त्यस्य कपर्दी । कपर्दो जटाजूटः । क शिरः पिपतीति कपर्दः । औष्णादिको द । अपिशब्दात्-ईशान ।
शशिशेखर । पशुपति । शम्भु । गिरिश । श्रोकण्ठ । सर्वजः । त्रिपुरान्तक । भूतेश । परमेश्वरः ।
अन्वकरिपु । दत्ताध्वरध्वसक । स्रष्टा । वामदेव । कामध्वमी । व्योमकेश । वह्निरेता । भीम । भर्ग ।

५ कृत्तिवासा । वृषाङ्क ।

भागीरथी त्रिपथगा जाह्नवी हिमवत्सुता ।

मन्दाकिनी—

पञ्च गङ्गायाम् । भागीरथेन राजाऽवतारितत्वात्तस्यापत्यं वा भागीरथी । त्रिभिः पथिभि-
र्गच्छति त्रिपथगा^१ । त्रिमार्गगा च । जह्नुना पीता श्रोत्रेण त्यक्ता जाह्नवी । जह्नुरपत्यं वा जाह्नवी ।
१० हिमवतो हिमाचलस्य सुता हिमवत्सुता । मन्दाका मन्दा गतिरस्त्यस्या मन्दाकिनी । सुरसरि ।
विष्णुपदी । सरिद्वरा । त्रिदशदीर्घिका । त्रिलोता । भीष्मसू । सुरनिम्नगा ।

द्युपर्यायधुनी

आकाशशब्दतो (तः परत्र) नदीपर्यायेषु गङ्गानामानि भवन्ति । खलोतस्विनी । विहायो-
धुनी । वियस्तिन्धु । व्योमस्रवन्ती । नभोनदी । गगननिम्नगा । अम्बरापगा । द्योनदी । आकाशनदी ।
१५ अन्तरीक्षद्विरेका । मेघपथसरि । वायुपथतरङ्गिणी । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

गङ्गानदीश्वरः ॥ ७१ ॥

भागीरथ्यादिशब्दतः (परत्र) ईश्वरपर्यायेषु हरनामानि भवन्ति । भागीरथीराजः । त्रिपथ-
गाधिप । जाह्नवीपति । हिमवत्सुतास्वामी । मन्दाकिनीनाथ । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

विधिवेधा विधाता च द्रुहिणोऽजश्चतुर्मुखः ।

२०

पद्मपर्याययोनिश्च पितामहविरञ्चिनौ ॥ ७२ ॥

हिरण्यगर्भः स्रष्टा च प्रजापतिस्तद्वत्स्रपात् ।

ब्रह्मात्मभूरन्तात्मा कः

सप्तदश ब्रह्मणि । विधति^३ सृजति विधि । विधत्ते वा विधिः । “उपसर्गे द. कि. ० ।” विधति
सृजति वेधा । “सर्वधानुभ्योऽसृज् ।” “विध विधाने ।” विदधाति धारयति भूतानीति विधाता ।
२५ द्रुह्यत्यसुरेभ्यो द्रुहिण । न जायतेऽजः । चत्वारि मुखानि वक्त्राण्यस्य चतुर्मुख । “पद्मपर्याययोनिः”—
पद्मपर्यायशब्दाग्रे योनिशब्दे प्रयुज्यमाने धातुर्नामानि भवन्ति । तामरसयोनिः । कमलयोनिः ।
नलिनयोनिः । पद्मयोनिः । सरोजयोनिः । सरसीरुहयोनिः । खरदण्डयोनिः । पुण्डरीकभव । महोत्प-
लज । अरविन्दयोनिः । शतपत्रयोनिः । पुष्करयोनिः । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि । दत्तमन्त्रादीना लोक-
पितृणां पिता पितामह । आत्मनो भूतानि विरिङ्क्ते पृथक् करोति विरिञ्चन । विरिञ्च । विरिञ्चिश्च ।

१ त्रयाणां पथां समाहारस्त्रिपथ तेन गच्छतीति वा । इत्यत्र पूर्वं समाहारद्विगौ कृते तत्र
समासान्तविधानेन त्रिपथशब्दस्याकारान्तत्वं सूचयामास भवति । गंगायास्त्रिपथगामित्वे भारतोक्तवचनम्-
“क्षितौ तारयते मर्त्यान् नागोस्तारयतेऽप्यधः । दिवि तारयते देवांस्तेन त्रिपथगा स्मृता ॥” २ मन्द-
मकितु गन्तु शीलमस्या इति वा । “अक कुटिलाया गतो ।” णिन् । डीप् । ग्रन्थोक्तविग्रहे मन्दाकशब्द-
स्य मन्दगत्यर्थे प्रमाणं नृगम् । ३ “विध विधाने” । तुदादिः । सर्व धातुभ्य इन् क्तिव च । ४ का० सू०
४।५।७० । ५ का० उ० सू० ४।५६ ।

हिरण्य गर्भे यस्य, हिरण्य गर्भो वा यस्य हिरण्यगर्भः । 'पुराणम्—

“हिरण्यगर्भमभवत्तत्राण्डमुदके तथा ।

तत्र यज्ञे स्वयं ब्रह्मा स्वयम्भूर्लोकविश्रुतः ॥”

सृजतीत्येवशीलं स्रष्टा । प्रजानां पतिः प्रजापतिः । “पदं गतौ ।” पदं । पश्यन्ते गम्यन्ते (गच्छन्ति) प्राणिनः, तान् पश्यमानं जन्तून् चरणा एव प्रपुञ्जते । “धातोश्च हेतोः” इज् । अम्योप० दीर्घः । पादि जा० । पादयन्तीति पादः । द्विष् च । “कारितस्या०” कारितलोपः । वैलोपः । पादः । सहस्रं पादो यस्य स सहस्रपादः । बृहन्ति वर्धन्ते चराचराण्यत्र ब्रह्म । उभयम् । इदं ब्रह्म । अयं ब्रह्मा । अथवा बृहन्ति व्रतानि यस्मिन्निति ब्रह्म । बृहद् मन् प्रत्ययो भवति, अच्चे हकारात् पूर्वम् । आत्मना भवति आत्मभूः । न अन्तो विद्यते यस्य सोऽनन्तः, अनन्तो विनाशरहितः आत्मा यस्य सः अनन्तात्मा । कायतीति “क” । परमंष्टी । सुरज्येष्ठः । शतानन्दः । स्वयम्भू । जगत्कर्ता । शतवृत्तिः । स्थविरः ।

तत्पुत्रोऽथ नारदः ॥७३॥

तस्य पुत्रस्तत्पुत्रः । ब्रह्मणः शब्दात् (परत्र) पुत्रशब्दे प्रयुज्यमाने नारदनामानि भवन्ति । विधिपुत्रः । वेधपुत्रः । विवातपुत्रः । विरिञ्चिपुत्रः । दृहिणपुत्रः । अन्नपुत्रः । चतुर्मुखपुत्रः । पद्म-
योन्यपुत्रः । पितामहपुत्रः । हिरण्यगर्भपुत्रः । प्रजापतिपुत्रः । महस्त्रातपुत्रः । ब्रह्मपुत्रः । आत्मभूस्तः । अनन्तात्मपुत्रः । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

कृष्णो दामोदरो विष्णुरुपेन्द्रः पुरुषोत्तमः ।

केशवश्च हृषीकेशः शार्ङ्गो नारायणो हरिः ॥ ७४ ॥

केशी मधुर्वलिर्वाणो हिरण्यकशिपुर्भुवः ।

तदादिमूदनः शौरिः पद्मनाभोऽप्यधोऽक्षजः ॥७५॥

गोविन्दो वासुदेवश्च—

एकविंशतिनारायणे । कर्षण्यरीन् कृष्णवर्णत्वाद्वा कृष्णः । “इण्यजिकृपिभ्यो नक्” । दाम उदरे यस्य स दामोदरः । यल्लक्ष्मण-बालो हि चापलाददाम्ना बद्धोऽभूत् । वेवेष्टि व्याप्नोति विष्णुः । “सूविपिन्या यण्वत् ॥” उपगतमिन्द्रमुपेन्द्रः । इन्द्र उपगतोऽनुजत्वाद् वा उपेन्द्रः । पुरुषेषु उत्तमः पुरुषोत्तमः । केशा सन्त्यस्य केशवः । हृषीकाणामिन्द्रियाणामीशो वशिंत्वाद् हृषीकेशः । शार्ङ्गं धनु-
रस्तस्य शार्ङ्गो । नारा आपः अयन यस्य नारायणः । यत्स्मृतिः ।

“आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ।

अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥”

१ “पुराणम्” इत्यारभ्य “लोक विश्रुतः” इत्यन्तम् अभिधानचिन्तामणिटीकायाम् २।१२७। उपलभ्यते । २. का० सू० ३।२।१०। ३ का० सू० ३।६।४४। ४ “सर्वधातुभ्यो मन्” का० उ० सू० ४।२।८। ५ “कै शब्दे” वेदध्वनिकर्तृत्वेन ब्रह्मणि कायतीति क इति विग्रहः । “कच दीर्घौ” कचते वा । “अन्येभ्योऽपि दृश्यते” पा० सू० ३।२।१०। सूत्रवार्तिकेन ड । ६. का० उ० सू० २।५।१७ बालकृष्णो हि यशोदया तच्छापल्यनिवारणाय कटिपदेशे बद्ध इति पौराणिकी कथा “लक्ष्मणम्” इति पदेन स्मार्यते ८ का० उ० सू० २।८। ९. नाराणां समूहो नारम्, तदयन यस्य, नराद् विराट्पुरुषाज्जातं तत्त्वं नारम्; तदयते जानाति वा, आययति प्रवर्तयति वा, “नारायण” इत्यपि व्युत्पत्तिरत्र । १० मनुस्मृति १।१०। तुल्यचरणे “ता पदस्यायनम्पूर्वम्” इति पाठो लभ्यते ।

- नरस्यापत्यं वा । नरानयते इति वाक्येन नरायणोऽपि । हरत्यथ हरि । वेशाः सन्त्यस्य केशी ।
 'मन्यते जनै मधु । "मनि जनिनमा मधजतनाकाश्च" एषामुप्रत्ययो भवति मधजतनाकाश्च यथासख्य-
 मादेशा भवन्ति । "बल वल्ल च ।" बलतीति बलि । "इ "सर्वधातुभ्यः ।" वण्यते बाण । तदादि-
 सूदनः । तदादीना केश्यादीना सूदनो नाशकर्ताऽगि । केशी मधु, बलिः, बाणः हरिण्यकशिपुः, मुर,
 ५ एभ्यः शब्देभ्यः परत्वारिशब्दे प्रयुज्यमाने नारायणनामानि भवन्ति । केशिवैरी । केश्यरातिः । केश्यमित्रः ।
 केशिद्विट् । केशिसपत्न । मधुवैरी । मन्वराति । मन्वमित्र । मन्वगिः । मधुद्विट् । मधुसपत्न । मधुरिपु ।
 बलिवैरी । बल्यरातिः । बल्यमित्र । बलिद्विट् । बलिसपत्न । बलिरिपु । बाणवैरी । बाणाराति । बाणा-
 मित्र । बाणारि । बाणद्विट् । बाणसपत्नः । बाणरिपु । हिरण्यकशिपुद्विट् । हिरण्यकशिपुसपत्न ।
 हिरण्यकशिपुरिपुः । मुरवैरी । मुरगिः । मुराराति । मुरद्विट् । मुरसपत्नः । मुररिपुः । मधुशत्रुः । बाण
 १० शत्रु । मधुसूदन । बलिसूदन । बलिवन्धनः । बाणसूदन । हिरण्यकशिपुसूदनः । केशिसूदन । इत्यादि
 पर्यायनामानि । शूरस्तस्यादिपुरुषस्तस्यापत्यम्, शौरिः । सारिर्वा । पद्म नामावस्य पद्मनाभः ।
 "सत्राया नाभिः ।" अघोक्षाणा जितेन्द्रियाणा त्रायते प्रत्यक्षीभवति, अघोक्षज । गा भुव विन्दति
 गोविन्दः । वसुदेवस्यापत्यं वासुदेवः । मञ्जुकेश । आंवत्साङ्क । श्रीपति । पीतवासा । विष्वक्सेन । विश्व-
 रूप । मुकुन्दः । धरणिधर । सुपर्णकैतु । वैकुण्ठ । जलगयन । रथाङ्गपाणि । दाशार्हः । कतुप्स्व ।
 १५ वृषाकपि । अच्युतः । इन्द्रावरज । बभ्रु । विण्ढरश्रवा । वनमाली । सनातन । जिन । शम्भुः ।
 इत्याद्यह्यम् ।

लक्ष्मीः श्रीगोमिनीन्दिरा ।

- चत्वार श्रियाम् । लक्ष् दर्शनाकाङ्क्षयो । "लक्षयति दर्शयति पुण्यकर्माण जनमिति लक्ष्मी ।
 "लक्ष्मेमोऽन्तश्च" अस्मादीप्रत्ययो भवति मोऽन्तश्च । "भज् श्रिञ् (सेवायाम्) ।" पुण्यकृत श्रवतीति
 २० श्री । "वचिपच्छिद्रिष्टुपुञ्जा किञ्दीर्घश्च" एभ्यः क्तिप्प्रत्ययो भवति दीर्घश्च म्वरस्य चैपम् । गा मिनी-
 तीति गोमिनी । इन्द्राति परमैश्वर्ययुक्ता भवति इन्दिरा । कमला । पद्मा । पद्मवासा । हरिप्रिया ।
 क्षीरोदतनया । माया । मा । ता । ई । आ । रमा । सीता । वला (चला) । भर्भरी । अध्विजाऽपि ।

तत्पतिः शैलभूम्यादिधरश्चक्रधरस्तथा ॥ ७६ ॥

- तस्याः पतिस्तत्पति । लक्ष्मीपति । श्रीपति । गोमिनीपति । इन्दिरापति । इत्यादीनि हरि-
 २५ नामानि स्युः । शैलभूम्यादिधरः । पर्वतधर । शैलधर । दरीभृद्धरः । अचलधर । गङ्गिधरः । सानुम-
 दधर । गिरिधर । नगधरः । शिलोच्चयधर । भूमिधर । भूधर । पृथ्वीधर । गङ्गरीधर । मेदिनीधर ।

१ मन्यते जनै 'खलत्वेन इति शेष । २ का० उ० सू० १।८ । ३ का० उ० सू० ३।१४ ।
 ४. का० सू० २।६।४१ । वृत्तिः । ५ अथ कृतमल्लजमैन्द्रियक ज्ञान येन, अधो न क्षीयते जातु इति
 वा विग्रहोऽधिकोऽन्यत्र । ६. "मञ्जुकेश" शब्दस्य "विष्णु" पर्यायत्वे कल्पद्रुपि प्रमाणम्- 'मञ्जुकेश'
 कौस्तुभोरा. लोमगर्भो धराधर ।" ३।२।७ । ७ बभ्रु शब्दस्य नारायणार्थेऽमरोऽपि प्रमाणम् । "विपुले
 नकुले विष्णौ बभ्रुः स्यात्पद्मले त्रिपु ।" ३।३।१७० । ८ का० उ० सू० ३।३५ । ९ का० उ० सू०
 २।२३ । १० "गोमिनी" शब्दस्य लक्ष्म्यर्थे प्रमाण मृग्यम् । अत्रत्यविग्रहोऽपि चिन्त्य । मन्वर्थे गोशब्दा-
 म्निनिप्रत्यये ङीपि गोपालकार्ये तस्य प्रसिद्धौ कोपान्तरसवादः । ११. ता, ई, आ, एषा लक्ष्म्यर्थे प्रमाणम्-
 "लक्ष्मी पद्मा रमा या मा ता धी कमलेन्दिरा" अभि० चि० २।१४० । "या" इत्यत्र ई आ इति
 च्छेदः । "लक्ष्म्यान्तु भर्भरी विष्णुशक्ति क्षीराब्धिमानुषी ।" इति तट्टीकायाम् ।

महीधरः । धराधरः । वसुन्धराधरः । धात्रीधरः । क्षमाधरः । वसुमतीधरः । विद्वन्मराधरः । अरुनीधरः । धरणीधरः । क्षमाधरः । धरित्रीधरः । क्षितिधरः । कुधरः (व्रः) । कुम्भिनीधरः । इलाधरः । उर्वरीधरः । उर्वीधरः । गोधरः । जगतीधरः । इत्यादीनि हरेर्नामानि ज्ञातव्यानि । तथा चक्रधरोऽपि ।

तत्पुत्रो मन्मथः कामः सूर्पकाराति (कारि) रत्नयजः ।

कायपर्यायरहितो मदनो मकरध्वजः ॥ ७७ ॥

५

पट् कामे । तत्पुत्रः । कृष्णपुत्रः । दामोदरपुत्रः । विष्णुपुत्रः । उपेन्द्रतनयः । पुरुषोत्तमसूनुः । केशवपुत्रः । हृषीकेशपुत्रः । हृषीकेशतनयः । शार्ङ्गिनन्दनः । नारायणोद्भवः । हरिसूनुः । गोविन्दसूनुः । इमानि मदनस्य पर्यायनामानि ज्ञातव्यानि । मन्थाति चित्तं 'मन्मथः । कामयते जन (अनेन) कामः । 'सूर्पकारातिः । मनसोऽन्यमात्रं जायते अनन्यजः । कायपर्यायरहितः । विदेहः । अकायः । अनङ्गः । अनपघनः । अवपुः । असहननः । अरुलेवरः । अमूर्तिः । इत्यादि (दीप्यति तस्य) पर्यायनामानि । जन १० मलयतीति मदनः । मकरो 'वजे यस्य स मकरध्वजः । प्रभुम् । मनसिजः । सङ्कल्पजन्मा । अङ्गजः । पञ्चपुः । श्रीनन्दनः । हृच्छ्रयः । मधुसूतः ।

शिलीमुखः शरो बाणो मार्गणो रोपणः कणः ।

इषुः काण्डं क्षुरप्रं च नाराचं तोमरं खगः ॥ ७८ ॥

द्वादश बाणे । शिलीमुखः शरः । शिलीमुखः । "शू हिमायाम्" । शृण्वन्त्यनेनेति १५ शरः । "पु सि सजाया घ" घप्रत्ययः । वणति "बाणः । "व्यञ्जनाच्च" घञ् । मार्गयति अन्वेपयति मार्गणः । रोप्यते देहे निखन्यते रोपणः । कणति "कणः । "इप् गतौ" । इष्यते गम्यते शत्रुसम्मुखमिति "इषुः । जन्तुमिष्यति दिनमतीति वा इषुः । "इषिष्टुपिमिदिष्टुषिमृदिष्टुष्य कु" । कामयते रिपुवधाय "काण्डम् । उभयम् । खनति भिनति "क्षुरप्रम् । नारः नरसमूहम् अञ्चतीति "नाराचम् । स्तोभ्यते श्लाघ्यते तोमरम् । "त्वमाकाशं गच्छतीति खगः । कङ्कपत्रः । चित्रपुङ्खः । विशिखः । कलम्बः । २० कदम्बोऽपि । सायकः । प्रदहः । पृषत्कः । रोपः । गार्ध्रपक्षः । "खरः । भल्लः । भल्लः ।

१ विग्रहे चित्तस्थाने मनःशब्दपाठो योज्यः । मनसि हलोपाधौ णोदरादिगणपाठायामोऽपि तस्य कार्यः । क्षीरस्वामिगमाश्रमौ तु मननं मत् चेतना । मन्थातीति मथः । पचाद्यच् । मतश्चेतनाया मथ "मन्मथः" इत्याह तु । २ छन्दोभङ्गभयाच्छूर्पकारिरिति पाठो बोध्यः । शूर्पको नाम कश्चिद् दानवस्तस्य नाशकारित्वान्कामः शूर्पकारिः । तदुक्तम्- अभि० चि० २।१४२ । "पुष्पाण्यस्येपुचापास्त्राण्यरी शम्भरसूर्पकौ ।" ३ शिली नाम गण्डूपदः । "केचुवा" इति लोके ख्यातः । ४ का० सू० ४।५।१६ । ५ वणति शब्दायते पुङ्खोऽस्मिन्निति पूर्णो विग्रहः । ६ का० सू० ४।५।१९ । ७ कणति शब्दायते कणः । पचाद्यच् । ८ इषति गच्छति शत्रुसम्मुखमिति वा । ९ का० उ० सू० १।१० । १० कनति दीप्यते काण्ड इति रामाश्रमः । "कनी दीप्तौ" । "कादिभ्य कित्" उ० १।१२ । इति डः । अनुनासिकस्येत्युपधादीर्घश्च । अमरकोत्पुङ्कवियहं "कमु कान्ता" कमघातोः स एव प्रत्ययः । कणत्यनेनाहतः काण्ड इति हेमचन्द्रः । "कणः शब्दः" इत्यतो डः । ११ क्षुरः तैक्ष्ण्येन प्राति गच्छतीति क्षुरप्रम् इत्यपि । क्षुराभः लोहः प्राति गच्छति वा । १२ नारमाचामतीति रामाश्रमः । नरमञ्चतीति नराची, नराच्यास्तुल्यो नाराच इति हेमचन्द्रः । १३ "तु गतौ" सौत्रः । तांतीति तौ । विच् । म्रियतेऽनेनेति मरः । पु सि सजाया घ । तौश्चासौ मरश्चेति तोमर इत्यन्यत्र । १४ खरबाणः । तदुक्तं कल्पद्रुकोशे १।५।२६९ । "विकर्णं पत्रवाहश्च चित्रपुङ्खः शरः खरः ।" इति ।

कामुकं धन्व चापं च धर्म कोदण्डकं धनुः ।

शिलीमुखादेरसनम्—

- पट्ट धनुषि । कर्मणे शत्रुबधलक्ष्णाय प्रभवतीति 'कामुकम्' । दधन्ति मारयत्यनेन 'धन्वन्' ।
अदन्तम् धन्वम् । चपस्य वेषोर्विकारश्चापम् । उभयम् । धरति 'धर्मन्' । धर्मं च । "कुट्ट अमृतमापणे" ।
५ कोदयत्यनेन 'कोदण्डम्' । शत्रुवधार्थं धन्यते अर्थ्यते धार्यते वा धनुः । उभयम् । उणादौ दधन्तीति
धनुः (नृः) । "कृषिचमितनिधनिवधिसर्जिलिङ्गिभ्य ऊ" । शिलीमुखादेरसनम् । शिलीमुखासन ।
शरासनः । मार्गणासन । रोपणासन । कणासनः । इप्वासन । काण्डासनः । क्षुरासन । नाराचासनः ।
तोमरासन ।

तत्कोटिमटनीं विदुः ॥ ७६ ॥

- १० तस्य धनुषः कोटिमप्रभागम् । कामुककाटि । धन्वकोटिः । चापकोटिः । काण्डकोटि ।
धनुष्कोटिः । शिलीमुखासनकोटिः । शरासनकोटिः । बाणासनकोटिः । रोपणासनकोटिः । मार्गणासन-
कोटिः । इत्यादिकमटनीति कथ्यते । अटति गच्छति भूमिमटनि । इयाम् । अटनी । द्वौ स्त्रियाम् ।

पुष्पं सुमनसः फुल्लं लतान्तं प्रमवोद्गमौ ।

प्रसूनं कुसुमं ज्ञेयम्—

- १५ पट् (अष्ट) पुष्पं । पुष्पयति विकसति पुष्पम् । सुष्ठु गन्त्यन्ते आनिः सुमनसः । स्त्रोत्ववहुत्वे ।
"त्रिकला विशरणे" । फल् । फलति स्म फुल्लः । फुल्लं वा । "गन्त्यथऽकर्मक- 'त' । "आदनुगन्धश्च"
इति नेट् । "अनुपसर्गाः फुल्लक्षीयकुरोच्छावा" निष्ठातसारग्य लत्वम् । "चरफलोद्गम्य" तसारादावगुणे
उत्त्वम् । सि । रेफ । लताया अन्त पतिन लतान्तम् । प्रस् (य) ते प्रसवम् । उद्गच्छति प्रादुर्भ-
वति उद्गमः । श्रिय प्रसूते प्रसूनम् । सून मनक च । एता उभयम् । को शोभा मते 'कुसुमम्' ।
२० सुम च । ज्ञेयं ज्ञातव्यम् ।

तदाद्यस्त्रशरः स्मरः ॥ ८० ॥

पुष्पपर्यायतो (त, परत्रा) स्त्रपर्यायेषु तथा बाणपर्यायेष्वपि स्मरनामानि भवन्ति ।
पुष्पेषु । पुष्पबाणः । पुष्पशिलीमुख । पुष्पशरः । पुष्पमार्गणः । पुष्परोपणः । पुष्पकाण्डः । पुष्पकणः ।
पुष्पक्षुरप्रः । पुष्पनाराचः । पुष्पतोमरः । सुमनःक्षुरप्रः । सुमशिलीमुख । सुमनोनाराचः । लतान्तेषु ।

१ 'कर्मण उक्च' पा० सू० ५।१।१०३ । इति प्रभवत्यर्थे उक्चन् । टिलोपः । २ 'धन धान्ये'
जुहोत्यादिः । वन्प्रत्ययः । धातूनामनेकार्थत्वात्माग्यतीत्यर्थः । धान्वर्थानुरागे तु दधति धान्यमर्जयत्यनेने-
त्यर्थो बोध्यः । वीराणां वनधान्यार्जनमाधनत्वाच्च धनुषः । धन्यति गच्छति धन्वेति क्षीरवामिरामाश्रम-
हमचन्द्राः । कनिन्प्रत्ययः । ३ धरती रत्नत्वापन्नस्त्वानित्यर्थः । मनिन्प्रत्ययः । अकारान्तधर्मशब्द-
स्य धनुर्वाचित्वे मेदिनी प्रमाणम् — 'धर्मोऽस्त्री पुण्य आचारे स्वभावोपमयोः कर्तौ । अहिमोपनिषन्वाये ना
धन्यममोमपे ॥' मान्तव० १६ श्लो० ॥ ४ बाहुलकादण्डप्रत्ययः । रामाश्रमस्तु 'कुट्ट अमृतमापणे'
कोटती विग्रहमाह । स एव प्रत्ययः । पृषोदरादिस्वाहृस्य द । कदि सौत्रः । कथतेऽनेनेति हमचन्द्रः ।
'कु शब्दे' कौतीति कौ । कौ. शब्दायमानो दण्डोऽस्त्येत्यन्यत्र । ५ का० उ० सू० १।३१ । ६ सुप्रीत
मन आभिरिति सुकुट । ७. का० सू० ४।६।४९। ८ का० सू० ४।५।९१। ९. का० सू० ४।६।११। १० का०
सू० ४।१।७६। ११ कुस्यति कुसुमम् । "कुस सश्लेषणे" दिवादि । "कुसेरुभोमेदेता" पा० उ० सू०
४।१०६। इत्युमप्रत्ययः । इति रामाश्रमः ।

लतान्तकाण्ड । लतान्तधुरप्र । लतान्तनाराचः । लतान्ततोमरः । प्रसवमार्गण । प्रसवरोपण । प्रसवकण । प्रसवेषु । प्रसवकाण्ड । प्रसवधुरप्र । प्रसवनाराचः । प्रसवतोमर । उद्गमशिलीमुखः । उद्गमशर । उद्गमबाण । उद्गममार्गणः । उद्गमरोपण । उद्गमकणः । उद्गमेषु । उद्गमधुरप्र । उद्गमनाराच । उद्गमतोमरः । प्रसूनशिलीमुख । प्रसूनशर । प्रसूनबाण । प्रसूनरोपण । प्रसूनकण । प्रसूनकाण्ड । प्रसूनपुः । प्रसूनधुरप्र । प्रसूननाराच । प्रसूनतोमर । कुसुमशिलीमुख । कुसुमशर । कुसुमबाण । कुसुम- ५ मार्गण । कुसुमरोपण । कुसुमकण । कुसुमेषु । कुसुमकाण्ड । कुसुमधुरप्र । कुसुमनाराच । कुसुमतोमर । पुष्पशब्दाग्रे धनुषि शब्दे प्रयुज्यमाने कन्दर्पनामानि भवन्ति । पुष्पकामुक । पुष्पधन्वा । पुष्पचाप । पुष्पधर्मा । पुष्पकोदण्ड । पुष्पधनु (न्वा) । लतान्तकामुक । लतान्तधनु (न्वा) । लतान्तचाप । लतान्तधर्म (र्मा) । लतान्तकोदण्ड । लतान्तधन्वा । प्रसवचाप । प्रसवकोदण्ड । प्रसवधनु (न्वा) । प्रसूनकामुक । कुसुमधन्वा । कुसुमचाप । कुसुमधर्म (र्मा) । कुसुमकोदण्ड । कुसुमधनु (न्वा) । १० इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

स्वान्तमास्वनितं चित्तं चेतोऽन्तःकरणं मनः ।

हृदयं विशिखाऽकृतम्-

नव चित्ते । “स्यम स्वम ध्वज शब्दे ।” आङ्पूर्वः । स्वनति स्म, आस्वनति स्म इति स्वान्तम्, आस्वान्तम् । “गत्यर्थो”^१ निष्ठा क । “वा रुष्यमत्वरसधुषाऽस्वनाम” एव के विभाषये १५ भवति । वेट् । “पञ्चमो”^२ । “मनोरनुस्वारो”^३ उटि” । मनोऽर्थे “क्षुभिवाही”^४ त्यादिना के नेट् । कथितस्वकथनेऽपि परत्वात्पूर्वात्परोक्तयो परोक्तविधिर्यलवान् इति वचनात् । अनेन सूत्रेणायमेव विकल्पो भवति । मनोऽभिधानेऽपि परत्वादयमेव विधिर्भवति । चेतति चित्तम्^५ । चेतति जानाति अनेनात्मा चेतस् सान्तम् । अन्तः निश्चयः । क्रियतेऽनेन, अन्तःकरणम्^६ । मन्यते बुध्यतेऽनेन सान्तम् मनस् । बुद्ध्यार्थे हरति हृदयम् । “द्वनो दोऽन्तश्च” । दान्त च हृद् । विगत (ता नष्ट (ष्ट) शिख (खा) २० यस्य तत् विशिखम्^७ । आ समन्तात् कूयते आकूयते (आकृतम्) । तथा चाष्टादश्याम्^८— “जाताकृतेनाकारेणेति मानसम्” ।

मारस्तत्रोद्भवो मतः ॥ ८१ ॥

तत्र चित्ते उद्भवो मारो मतः कथित । स्वान्तमम्भवः । स्वान्तज । आस्वनितज । चित्त मम्भव । चित्तज । चेतस्सम्भव । चेतोजः । अन्तःकरणसम्भव । हृदयसम्भवः । हृदयजः । विशिखसम्भवः । २५ विशिखज । आकूयसम्भव । इत्यादीनि कन्दर्पनामानि ज्ञातव्यानि ।

मौर्वी जीवा गुणो गव्या ज्या-

पङ् गुणे । मूर्वति हिनस्यनया मूर्वा । तदारूपस्य नृणस्य विकारो मौर्वी । धनुरनया जीवतीति

१ का० सू० ४।६।४९। २ का० सू० ४।६।९। ३ का० सू० ४।१।१५। “पञ्चमोपभाया उटि चागुणे” इति पूर्णं सूत्रम् । ४ का० सू० २।६।४। ५ का० सू० ४।६।९३ । ६ आस्वनितमित्यत्र मनोऽर्थेऽपि परत्वात् “वा रुष्यमत्वरसधुषाऽस्वनाम” इति वेट् । आङ्पूर्वकत्वाभावे तु स्वान्तमित्यत्र “क्षुभिवाही” त्यादिनेट्-प्रतिषेधः । तेन स्वान्तमित्येकमेव रूपम् । आङ्पूर्वकत्वे तु आस्वनितमार्वान्तमित्युभयमित्याशयः । ७ “ज्यनुब्रन्धमतिबुद्धिपूजार्थेभ्यः क” इति का० ६।४।६६। सूत्रेण जानार्थत्वाद्वर्तमाने क । ८ अन्तः शब्दस्याऽत्राधिकरणशक्तिप्रधानरेफान्ताव्ययत्वेनान्तो निश्चय इति व्युत्पत्तिर्न युक्ता । अन्तर्गतं करणम्, करणानामन्तर्गतं वेति व्युत्पत्तिर्नोऽप्या । ९ का० उ० सू० २।२६ । १० विशिखशब्दस्य हृदयार्थे न किमप्यन्यत्र प्रमाणमुपलब्धम् । अधोमुखपुण्डरीकाकारत्वाद्दृढस्य शिखारहितत्वं कथञ्चिन्नेयम् ।

जीवा । गुण्यते अन्यस्यतेऽनेन गुण । पुंस्ति । गोभ्यो हिता गव्या । जीयतेऽनया ज्या । बाणासनम् । टृणा ।

अलिभृङ्गः शिलीमुखः ।

अमरः षट्पदो ज्ञेयो द्विरेफश्च मधुव्रतः ॥ ८२ ॥

सप्त भृङ्गे । अलति मण्डयति पुष्पजाती. अलि । मधुना विमर्त्यात्मानं भृङ्ग । ४५ भृङ्ग-
५ भृङ्गाङ्गानि एतेऽङ्गप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । शिलीसदृश शिलासदृश वा मुखमस्य शिलीमुख । अमन्-
रातीति निस्कृत्या अमर । 'शकन्धादय' " शकन्धुप्रभृतीनाम् अकारस्य लोपो भवति । आदिशब्दान्-
नकारस्य लोपः । उणादौ "अमु चलने" । अमतीति अमरः । 'देवि' वटिजटिभ्रमिवाभिम्योऽर ।
षट् पदानि चरणा अस्य षट्पद । द्वौ रेफौ यस्य द्विरेफः । मधु व्रतयति मुहूर्ते मधुव्रत । मधुकर ।
पुष्पलिङ् । इन्दिन्दिर । षट्चरणः । पडिङ्घ्र । चञ्चरीक । भसल । रोलम्ब । देश्याम् ।

१०

मौर्व्यादिप्रान्तमल्यादिकन्दर्पस्यैक्षवं धनुः ।

इक्षार्किकर ऐक्षवम् । अलिमौर्वी (कम्) । भृङ्गमौर्वी (कम्) । शिलीमुखमौर्वी (कम्) ।
अमरमौर्वी (कम्) । षट्पदमौर्वी (कम्) । द्विरेफमौर्वी (कम्) । मधुव्रतमौर्वी (कम्) । अलिजीवा (वम्) ।
भृङ्गजीवा (वम्) । शिलीमुखजीवा (वम्) । अमरजीवा (वम्) । षट्पदजीवा (वम्) । द्विरेफजीवा (वम्) ।
मधुव्रतजीवा (वम्) । अलिगुण (णम्) । भृङ्गगुण (णम्) । शिलीमुखगुण (णम्) । अमरगुण (णम्) ।
१५ षट्पदगुण (णम्) । द्विरेफगुण (णम्) । मधुव्रतगुण (णम्) । अलिज्या (ज्यम्) । भृङ्गज्या (ज्यम्) ।
द्विरेफज्या (ज्यम्) । मधुव्रतज्या (ज्यम्) । इत्यादीनि कन्दर्पशिलीमुख (धनु) नामानि ज्ञेयानि ।

हेतिरस्त्रायुधं शस्त्रम्—

चत्वार शस्त्रे । हिनाति अनया हेतिः । स्त्रियाम् । 'सातिर्हिनिज्जिधूतय' । एने-
तिप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । अन्यते क्षियतेऽनेनेति अस्त्रम् । आयु-यनेऽनेन आयुधम् । उभयम् ।
२० शस्यतेऽनेन शस्त्रम् । 'नीदापुशसुयुजस्तुदसिचिचमिहपतदशनहा करणे' धृन् । त्रमात्र । 'व्यञ्जनम्' ।
इति सपरगमनम् । ननु अन्येऽप्रतिपधाभावान् धृनि प्रत्यये इडागम कथं भवति । आगमशास्त्रमनित्यमात्र-
वचनात् शसुधानोः धृनि प्रत्यये टट् न भवति । 'युग्य' पत्रे इति जापकादेव (डा) ।

पुष्पाद्यस्त्रः स्मरगे मतः ॥ ८३ ॥

पुष्पाद्यायत अस्त्रपर्यायेषु शरपर्यायेषु तथा चापपर्यायेष्वपि स्मरनामानि भवन्ति । पुष्प-

१ गोभ्यो बाणेभ्यो हितित्यर्थः । २ जिनाति जीयतेऽनया । 'ज्या वयोहानौ' । 'अन्येष्वपि
दृश्यते' इति ड । ३ अल भूषणादौ । सर्वधातुभ्य इन् । ४ का० उ० १।४८ । ५ का० सू० वृ० ।
६ कातन्त्रोणादौ नोपलब्धम् । ७, अमरपदे रेफद्वयसत्त्वाद् द्विरेफ । ८ कन्दर्पस्य धनुर्ऐक्षवम् । इक्षुदण्ड-
निर्मितम् । अत एव काम इक्षुधन्येन्युच्यते । मौर्व्यादय शब्दा अन्ते यस्य, अलि, अलिपर्याय आदौ यस्येदृश
तद्वद्वनुरिति यथाश्रुतपाठार्थः । अस्मिन्नर्थे धनुर्विशेषणतया अलिमौर्वीकम् भृङ्गमौर्वीकम् इत्यादि
टीकाया वक्तव्यम् । वस्तुतस्तु मौर्व्यादिप्रान्तमल्यादिरिति पाठो युक्तः । तत्र पदार्थयोजनाऽपि साधु सगच्छते ।
अत्यादि कन्दर्पस्य मौर्व्यादि धनुश्च ऐक्षवम् इत्यर्थः । तदुक्तम्— 'मौर्वी रोलम्बमाला वनुरय विशिखा
कौसुमा पुष्पकेतो' इति साहित्यदर्पणे । टीकैया तु यथाश्रुतपाठानुगामिनी । ९ "हि गतो वृद्धो च ।
इय व्युत्तिरग्निशिखायं बोध्या । शस्त्रार्थे "हन् हिंसायाम्" हन्यतेऽनयेति सुवचम् । १० का० सू०
४।५।७३ । ११, का० सू० ४।६।१। व्यञ्जनमस्वर परवर्णं नयेत् । १२ का० सू० १।१।२१ इति सकारस्य
परगमनम् । १३ का० सू० ६।२।३३ ।

हेति । पुष्पाब्ज । पुष्पायुध । पुष्पशब्ज । सुमनोहेति । सुमनोऽब्ज । सुमनआयुध । सुमनशब्ज ।
लनान्तहेति । लतान्ताब्ज । लतान्तायुध । लतान्तशब्ज । प्रसवाब्ज । प्रसवायुध । प्रसवशब्ज । उद्ग-
महेति । उद्गमायुध । उद्गमशब्ज । प्रसूनहेति । प्रसूनान्त्रः । प्रसूनायुध । प्रसूवशब्ज । कुसुमहेति ।
कुसुमाब्ज । कुसुमायुध । कुसुमशब्जः । इत्यादिकानि नामानि ज्ञातव्यानि ।

ध्वजं पताका केतुश्च चिह्नं तद्वैजयन्त्यापि ।

५

पत्र पताकायाम् । ध्वजते (ति) ध्रूयते ध्वजः^१ । तथाऽमरसिद्धे—“**ध्वजमस्त्रियाम्**”^२
वज्रिश्च । पताकादण्डे ध्वज इत्यन्यः । पत्यते ध्रियते वातेन **पताका** । यलाकादयः^३—“बलाकापिनाक-
पताकाश्यामाकशलाका” एते ध्वजप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । पताका च । छियाम् । कीयते सैन्यमनेन **केतुः** ।
“केतवादयः—“कन्वतुवत्वाप्तुपीत्वेधतुवहतुजीवातव” एते तुनप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । चह परिकल्कने ।
चहयति (अनेन) **चिह्नम्** । विजयतेऽनया **वैजयन्ती**^४ । जयन्ती च । छीघो । वैजयन्तः । जयन्तः । १०

तत्तदन्तो झपाद्यादिः शम्भोर्विघ्नकरः स्मरः ॥ ८४ ॥

भूपध्वज । भूपपताक । भूपकेतु । भूपचिह्न । भूपवैजयन्ति । पडद्वीणध्वजः । पडद्वीण-
पताक । पडद्वीणकेतु । पडद्वीणचिह्न । पडद्वीणवज्रयन्ति । मपरध्वज । मपरपताक । मपरकेतु ।
मपरचिह्न । मपरवैजयन्ति । अनिमिषवज । अनिमिषपताक । अनिमिषकेतु । अनिमिषचिह्न ।
अनिमिषवैजयन्ति । निमिषवज । निमिषपताक । निमिषकेतु । निमिषचिह्न । निमिषवैजयन्ति । मीनध्वज । मीन-
पताकः । मीनकेतु । मीनचिह्न । मीनवैजयन्ति । पाटीनध्वज । पाटीनपताक । पाटीनकेतु । पाटीनचिह्न ।
पाटीनवैजयन्ति । **शम्भोर्विघ्नकर** । हरविघ्नकर । इत्यादीनि स्मरनामानि ज्ञातव्यानि । १५

कौक्षेयकासिनिस्त्रिशकृपाणाः करवालक ।

तगरिर्मण्डलाग्रं खड्गनामावलि विदुः ॥ ८५ ॥

अष्टौ खड्गो । कुक्षो भव कौक्षेयकः^१ । कौक्षेय । अन्यते क्षियतेऽस्मि । निःकान्तक्षिशतोऽ- २०
हुलि-यो निस्त्रिशः । तालव्यान्त । शत्रून् हन्तु कल्पते याचने कृपाणः^२ । “कृपे काण”^३ । करे चलते
करवालः^४ । “१ । करपालः । तरति (तर्) ख्रवमान वारि यत्रेति निरुक्त्या **तरवारिः** । मण्डल वर्तलमग्र
यस्य तन्मण्डलाग्रम् । खण्डति परमर्माण्यनेन खड्ग । “खण्डर्गक”^५ । स्त्रीजा । ऋष्टि । चन्द्रहास ।

अक्षौहिणी बलानीकं वाहिनी साधनं चमूः ।

ध्वजिनी पृतना सेना मैत्र्यं दण्डो वरूथिनी ॥ ८६ ॥

२५

त्रादश सेनायाम् । अक्षाणा रथानामूहिनी **अक्षौहिणी** । “अक्षम्यौत्वमूहित्याम्”^१ औत्वम् ।
अथवा धात्वर्थेन साध्यते भाष्यकर्त्रा श्रीमदमरकीर्तिना । अक्ष व्यापारौ । अश्रुते व्यापारौतीति अक्ष । “१ वृत्-

१ “वज्र गतौ” । पचायच् । २. अम० को० २।८।१९। ३ का० उ० ३।४०। ४ का० उ०
१।२८। ५ विजयते विजयन्तः, विजयशाली पुरुष । आणादिको भूचप्रत्यय । भूस्यान्तादेशः ।
विजयन्तस्येय पताका वैजयन्तीति । ६ ते ते ध्वजपर्याया अन्ते यस्य भूपादिमीनपर्यायाश्चादौ यस्य
इदृशस्तथा शम्भुविघ्नकरश्च स्मरः कामः । तेऽपि स्मरपर्याया । तद्यथा भूप वज्रेत्यादि । ७ कुलकुलि-
ग्रीवाभ्य आऽस्यलङ्कारेण” पा०सू० ४।२। ६। इति खड्गार्थे ढकन् । ८ कृपा नुदति कृपाण इत्यपि ।
९ का०उ०सू० ५।१७। १० “वल वेष्टने” ज्वलादित्वाण्यः । बलन वालो वेष्टनम् । करे वालो यस्य, करेण
वलयने वीभयमप्यन्यत्र । ११ का० उ० सू० ५।५२। १२. का०सू० वृ० १।२। १३. का०उ०सू० ४।५३।

वदिहनिमनिकम्यशिकपिभ्य स." स प्रत्ययः । "छशोश्च"प । "पडो क २से" अक् प । "कपययोगे क्त." । अक्ष इति जातः । ऊहन ऊह । ऊहो विद्यते यस्या सा ऊहिनी । अत्राणामूहिनी अक्षौहिणी । "समा-
सान्तसमीपयोरनुवादेः" अस्यार्थः समासस्य अन्ते समासस्य समीपे च नकारस्य पूर्वपदस्यान् निमित्तात्
(परस्य) णो भवति वा । इदानीम् अक्षौहिणीप्रमाणं क्रियते । यद्भारतम्—

५

"एको रथो गजश्चैको नराः पञ्च पदातयः ।

त्रयश्च तुरगास्तद्वैः पत्तिरित्यभिधीयते ॥

पत्त्यंगैस्त्रिगुणैः सर्वैः क्रमादाख्या यथोत्तरम् ।

सेनामुखं गुल्मगणौ वाहिनी पृतना चमूः ॥

अनीकिनी"

१०

पतेस्त्रिगुणं सेनामुखम् । गजा ३, रथाः ३, अश्वा ९, पदातयः १५ इति सेनामुखम् । गजा
९, रथाः ६, अश्वा २७, पदातयः ४५ इति गुल्मम् । गजा २७, रथाः २७, अश्वा ८१, पदातयः १३५,
इति गणः । गजाः ८१, रथाः ८१, अश्वाः २४३, पदातयः ४०५ इति वाहिनी । गजाः २४३, रथाः २४३,
अश्वा ७२९, पदातयः १२१५, इति पृतना । गजा ७२९, रथाः ७२९, अश्वा २१८७, पदातयः ३६४५
इति चमूः । गजाः २१८७, रथाः २१८७, अश्वाः ६५६१, पदातयः १०९३५ इत्यनीकिनी । दशानी-

१५

किन्योऽक्षौहिणी । गजा २१८७०, रथा २१८७०, अश्वाः ६५६१०, पदातयः १०९३५० । बलं
मह्योति परभूमि बलम् । उभयम् । अनिति प्राणिति तूर्यस्वनैः न नीयते पराम्भ वा अनीकम् । वाह
अश्वाः सन्त्यस्या वाहिनी । साध्यते (अनेन) साधनम् । परान् शत्रून् चमति ग्रमते चमूः । "कृषि-
चमितनिधनिवधिसंज्ञितजिन्म ऊः ।" चमुश्च । ध्वजाः सन्त्यस्या ध्वजिनी । नायकः पिपति पृतना ।
अङ्गैः सिनोति बन्नाति सेना । "मिनोतेर्नः" सेनाया स्वायें यणि सैन्यम् । दाम्यति दण्डः । वरुथो रथ-

२०

गुप्तिरस्यस्या वरुथिनी । पताकिनी । चक्रम् । अनीकिनी । "गूढः । तन्त्रम् ।

कदनं समरं युद्धं संयुगं कलहं रणम् ।

संग्रामं सम्परायाजी संयदाहुर्महाहवम् ॥ ८७ ॥

एकादश युद्धे । कथं कदनम् । समिपूति प्रतिविकला भवन्त्यत्र नरा समरम् । युध्यते
(त्रा) विभिर्युद्धम् । भटा संयुज्यन्ते मिलन्त्यत्र संयुगम् । कल मधुर वाक्यं हन्त्यत्र कलहः । रणन्ति
२५ दुन्दुभयोऽत्र रणम् । सग्रस्यन्ते सत्त्वान्यनेनेति संग्रामः । पुति । सपरैति मृत्युरत्र सम्परायः । भटा अज्यन्ते
क्षिप्यन्तेऽत्र आजिः । स्त्रीत्रोः । सयतन्तेऽत्र तान्त संयत । महोश्चासौ आहव । महाहव । तम् आहुः

१ का० सू० ३।६।६०। २ का० सू० ३।८।४। ३ 'कपयोगे क्त' । का० सू० पू०
२५६ सू० । ४. प्रथमः श्लोको महाभारत उपलभ्यते । तस्योपलब्धिस्तु द्वितीयः व्याये पञ्चदशश्लोकत्वेन ।
इतरस्तत्र नोपलभ्यते । तत्र "एको रथः" इति श्लोकानन्तरम् — "पत्तिन्तु त्रिगुणामेतामाहुः सेनामुख
बुधा । त्रीणि सेनामुखान्येको गुल्म इत्यभिधीयते ॥ त्रयो गुल्मा गणौ नाम वाहिनी तु गणाद्वय । स्मृता-
स्तिस्रस्तु वाहिन्यः पृतनेति विचक्षणैः ॥ चमूस्तु पृतनास्तिस्रस्तिस्रश्चस्वनीकिनी । अनीकिनी दशगुणा
प्राहुः सेनामुख बुधा ॥ इति । श्लो० १६, १७, १८ । ५ अभि० चि० २।४।१३। ६. का० उ० सू० १।३।१।
७ का० उ० सू० ६।३६। ८. गूढशब्दस्य सेनायैऽन्यत्र प्रमाणं मृग्यम् । ९. "कद वक्लव्ये" । कथं
विक्लव्यतेऽनेनास्मिन्वा । करणेऽधिकरणे वा ल्युट् । १० सङ्ग्राम युद्धे । सङ्ग्रामयन्तेऽनेति । हेमचन्द्र ।
सङ्ग्रामण सङ्ग्राम इति रामाश्रम । ११ आदूयन्ते योद्धारोऽनेत्याहव ।

ब्रुवन्ति । आयोधनम् । जन्यम् । प्रवनम् । प्रविदारणम् । मृद्यम् । आस्कन्दनम् । सख्यम् । समीकम् ।
अनीकम् । विग्रहः । समुदाय । अभ्यागमः । सस्फोटिः (ट.) । समितिः । समित् । द्वन्द्वम् ।
सम्मर्दः । सगरः ।

गजो मतङ्गजो हस्ती वारणोऽनेकपः करी ।

दन्तो स्तम्बेरमः कुम्भी द्विरदेभमितङ्गमाः ॥ ८८ ॥

५

शुण्डालः सामजो नागो मातङ्गः पुष्करी द्विपः ।

करेणुः सिन्धुरः—

विशतिर्गजे । गजति माद्यति गजः^१ । अच् । मतङ्गादेषेर्जातो मतङ्गजः । ^२सप्तमीपञ्चम्यन्ते
जनेर्ङ^३ । हस्तो विद्यतेऽस्य हस्ती । “जातो तु दन्तहस्ताभ्या कराच्चैव इनेव हि” । वारयति परान्
शत्रून् वारण । न एकेन पिबत्यनेनपः । करोऽस्त्यस्य करिन् । दन्तोऽपि करि । दन्तो विद्यतेऽस्य
दन्ती । स्तम्बे तृणे रमते स्तम्बेरमः । “स्तम्बकर्णयो रमिजपो” खच् । कुम्भो विद्यतेऽस्य
कुम्भी । द्वौ रदौ यस्य द्विरदः । एति गच्छति शत्रुसंमुखमितीभ । “इणा” यण्वत् । भ्रत्ययो भवति
स च यण्वत् । मित गच्छतीति मितङ्गमः । “गमेरच्” खप्रत्ययः । ‘ह्रस्वा स्योमोन्त’^४ । शुण्डा लाति
गृह्णातीति, शुण्डालः^५ । साम्न्^६ । सामवेदज्जात सामजः । नगे पर्वते भवो नागः । मन्यते जनेन
मातङ्गः । पुष्करं विद्यतेऽस्य पुष्करी । द्वाभ्यां पिबति द्विपः । करोति कार्यं करेणु । “हृक्ञ-भ्यामेणु”^७
आभ्यामेणुः प्रत्ययो भवति । स्यन्दने खवति मः सिन्धुरः^८ । दन्तावल । पद्मी^९ । पीलु । कालिङ्ग ।

१५

तेषु यन्ता याता निषाद्यपि ॥ ८९ ॥

त्रयो हस्तिपके । यच्छतीति यन्ता । यातीति याता । निषीदति इत्येवशीलो निषादी ।
गजयन्ता । गजयाता । हस्तियन्ता । हस्तियाता । इत्यादीनि जातव्यानि । अपिशब्दात्—आधोरण ।
हस्तिप । हस्त्यारोहः । गजाजीव । महामात्र ।

२०

नागाद्यरिः कण्ठी^१ (ण्ठि) रवो मृगेन्द्रः केसरी हरिः ।

चत्वारः सिंहैः । नागारि । गजरिपुः । मतङ्गवैरी । हस्तिद्विट् । वारणवैरी । अनेकपसपत्न ।
वरिरिपुः । दन्तिवैरी । स्तम्बेरमरिपुः । कचिदृश्यते ईदृश पाठः । कुम्भिवैरी । इभवैरी । मतङ्गशत्रुः ।
शुण्डालरिपुः । सामजद्वेपी । नागारि । पुष्करिरिपुः । द्विपवैरी । करेणुरिपुः । सिन्धुरवैरी । इत्यादीनि
पर्यायनामानि सिंहस्य ज्ञातव्यानि । कण्ठे रवो ध्वनिर्यस्य कण्ठीरवः ।

२५

१ गजति माद्यति गर्जति वा गजः । २. का० सू० ५।३।११। ३ का० सू० २।६।१५। वृत्तिः ।
४ का० सू० ४।३।१६। ५. का० उ० सू० २।२६। ६ का० सू० ४।३। ४५। ७ का० सू० ४।१।२२।
८ शुण्डाऽस्त्यस्येत्यपि । ‘प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम्’ पा० सू० ५।२।१६। इति मत्वर्थीयो लच्प्रत्ययः ।
९ सामवेदो हि गीतपरः । तत्स्वरेण समाकृष्टा हस्तिनो बद्धा अभवन् । बद्धाश्चाकृष्य जनपदे समानीता ।
गीतमूढा यतो बद्धसमानीताः । अत एव सामजा इत्युच्यन्ते । इति सङ्गतिः । प्रमाणान्तरमपि मृग्यम् ।
सामवेदमुच्चारयन् विभिर्गजान् ससर्ज । साम्ना सह जातत्वात्सामजा इति । १० का० उ० सू० २।६।
११ स्यन्दधातोरकर्मकत्वात्सवति मदमित्यर्थश्चिन्तनीयः । १२ अत्र कल्पद्रुकोष १।५।१४४। प्रमाणम्—
“करी मतङ्गजः पद्मी सूर्यकर्णो लतासः” । इति । १३ लुन्दो भङ्गमिथाञ्च कण्ठिरव इति पाठः प्रतिभाति ।
वर्णागमो गवेन्द्रादावित्येकारस्य इकार ईकारश्च विधेयः ।

“वर्णागमो गवेन्द्रादौ सिहे वर्णविपर्ययः ।

षोडशादौ विकारस्तु वर्णनाशः पृषोदरे ॥”

इत्यनेन एकारस्य ईकार । मृगाणां चतुष्पदानां मध्ये इन्द्रः **मृगेन्द्र** । केसराः स्कन्धवेशाः सन्त्यस्य **केसरी** । क्रमप्राप्ते हरति ^२हरि । पद्मानन । हर्षत् । नखरायुध । भृगरिपु । सिंह ।

५

व्याघ्रश्चमूरः शार्दूलः—

त्रयो व्याघ्रे । व्याजिघ्रति प्राणान् उगादत्ते व्याघ्र । चमति अति पशून् **चमूर** । परान् शृणाति हिनमि ^३शार्दूलः । द्वीपो । पुण्डरीकः । तरक्षु । चित्रकाय । मृगारिः ।

शरभोऽष्टापदोऽष्टपात् ॥ ६० ॥

त्रयोऽष्टापदे । शृणाति हिनस्ति **शरभ** । “कृशृगलिगर्दिरासवलिवलिभ्याम्” । अष्टौ पदान्यस्य **अष्टापदः** । अष्टौ पादा यस्यामौ **अष्टपान** ।

क्रोडो वराहो दंष्ट्री च घृष्टिः पोत्री च शूकरः ।

अष्टा (पद) शूकरे । पल्लव सक्रमति **क्रोड** ^४ । वराणाहन्ति **वराह** ^५ । दंष्ट्रा सन्त्यस्य **दंष्ट्री** । धर्पतीति **घृष्टिः** । यष्टिश्च । पूड पवने । पू । भा० । पूड पवने वा । क्रै० । उभयपदी । पृथनेनेनेति **पोत्रम्** ^६ “हलशूकरया पुवः” घृन् । वमात्र । नाम्यन्गुण । मि० नप० । पोत्रमस्यस्य **पोत्रो** । सते प्रचुरा-
१५ पत्त्वानि, श्वयति वर्धते वा पीनत्वेन **शूकर** ^७ । शूकरश्च । दन्त्यतालव्य । कोल । किर । किरिश्च ।

उष्ट्रो मयः शृङ्खलिकः कलभः शीघ्रगामुकः ॥ ६१ ॥

पञ्चोष्ट्रे । उष्यते दह्यते मरौ **उष्ट्र** । “सर्वधातुभ्य घृन्” । मयते गच्छति **मयः** ^८ । मयते इत्येके । शृङ्खल बन्धनमस्य **शृङ्खलिक** ^९ । क शिरो रभते उन्नमयतीति **कलभ** । कलभश्च । शीघ्र गच्छतीति **शीघ्रगामुक** । दासंगक । दीर्घजङ्घ । ग्रीवी । रवण । धू प्राफो (धूपक) ।

२०

कौलेयकः सारमेयो मण्डलः श्वा पुरोगतिः ।

जिह्वापो ग्रामशार्दूलः कुक्कुगे गत्रिजागरः ॥ ९२ ॥

नव सारमेय । कुले रह भव **कौलेय** ^{१०} (यक) । सारमाया अपत्य **सारमेय** । मण्डलानि **मण्डल** । चारादीन् श्वयति गच्छति **श्वा** । श्वानोऽन्तोऽपि । पुरो गच्छति **पुरोगति** । ^{११} “जिह्वा शरीर

१. ‘पृषोदरादयः’ इति शा० सू० २।२।१७२। कारिका । २. प्राणान् हरतीत्येता-
वानिवान्यत्र । ३. यद्वा शारयतीति शार् । क्रिप् । दूयते इति दूल । अन्तर्भावितणिजया दूट् । शार्-
चासौ दूलश्चेति विग्रहः । ४. का० उ० सू० ३।१२। ५. “क्रुड घनत्वे” । क्रोडन घनत्व सोऽस्यास्तीति क्रोड ।
“अर्श आद्यच्” इति रामाश्रम । ६. वरमाहन्तीति वर आहारो यस्येति वा पृषोदरादित्वात् । ७. का० सू०
४६।६२। ८. सुव प्रमव करोतीति । शूकोऽस्यस्य शूकरं खररोमत्वात् । शूक राति वा । शू इति चानि
करोति वा । ९. वष्टि इच्छति कण्टकवृक्षादन मरुशमि वा इति उष्ट्र । “सर्वधातुभ्य घृन्” इति का० उ०
८।२६। सूत्रे दुर्गसिंह — “वश कान्तौ” । वष्टाति उष्ट्रः करभः । अस्य घृन्नन्तस्य सम्प्रसारण निपातना-
त्यन्व च । इत्याह । १०. का० उ० सू० १।२९। ११. मीनायदीन् मय । “मीन् हिंसायाम्” । पचाद्यच् ।
इति वा । १२. शृङ्खलमस्य बन्धन करमे पा० सू० ५।२।७९ । इति कन् । तेन शृङ्खलक हात साधु ।
“न तु शृङ्खलक काष्ठमयै स्यात्पादबन्धनै” । इति अभि० चि० । १३. “कुलकुक्षिश्रीवाम्य श्वाऽस्यलङ्कारेणु”
पा० सू० ४।२।९६। इति श्वाऽर्थे टकम् । १४. जिह्वया रसनया पिबतीति विग्रहः सुवच । जिह्वया शरीर
पातनीत्यपि सम्भवति ।

पति रक्षति जिह्वाप । ग्रामाणां शार्दूलं व्याघ्र ग्रामशार्दूल । कुक् शब्द करोतीति कुक्कुर^१ । कुर शब्दे । कुकुरश्च । रात्रौ जाग्रति रात्रिजागर । लेड्वह । बुक्कण । भषण । मृगदश । शालावृक ।

हेम चाष्टापदं स्वर्णं कनकार्जुनकाञ्चनम् ।

सुवर्णं हिरण्यं भर्मं जातरूपं च हाटकम् ॥ ६३ ॥

तपनीयं कलाधौतं कार्तस्वरशिलोद्भवम् ।

५

पञ्चदश स्वर्णं । हिनीति वर्धतेऽनेन हेमन् । नान्तम् । अदन्त हेम च । अष्टसु लोहेमुपद प्रति-
ष्टास्य अष्टापदम् । “अष्टनः” सत्रायाम्” इति दीर्घ । शोभनो वर्णाऽस्य स्वर्णम् ।
उकारलोपः । अथवा समासे वर्णस्य वा बलोपमाहुः । यथा पञ्चाणां मन्त्रः । कनति दीप्यते कनकम् ।
‘कनिचनिभ्यामक’ । कनी दीप्तिकान्तिगतिषु । अर्जं सर्जं अर्जने । अर्जतीत्यर्जुनम्^४ । “अकृतवृत्रयमि”-
दार्वाज्जिभ्य उतः । काञ्चति शोभा बन्नाति काञ्चनम् । शोभनो वर्णा यस्य सुवर्णम् । उभयम् । पुण्य जिहीते १०
हिरण्यम् । अथवा ओहाम् त्यागे । हीयते हिरण्यम् । ‘हो हिरश्च’ अस्मादन्य प्रत्यया भवति
हिरादेशश्च । अत्रयते धार्यते नान्तम् भर्मन् । अदन्त च भर्मम् । जात रूप यस्य जातरूपम् । क्रीवे ।
नया च ‘यशस्तिलके—“अमङ्गमृहोऽपि जातरूपस्पृह ।’ हटति हाटकम् । हट दीप्ता । अग्निना
नयते तपनीयम् । कला धावति गच्छति कलधौतम्^१ । कुन्म्वराकरे भव कार्तस्वरम् । शिलाया,
नापाणादुद्भवा यस्य शिलोद्भवम् । शातकुम्भम् । गाङ्गेयम् । कबुरम् । चामीकरम् । महारजतम् । १५
रुक्मम् । रुम्भम् । जम्बुनदम् । कल्याणम् । गिरिक । चन्द्रवसु च ।

रूप्यं रजतं गुलिका-

त्रयो रूप्ये । रूप्यते जना मुह्यतेऽनेन रूप्यम्^१ । जन रजति रजतम् । रज्यते हेम्ना रजत वा ।
गुड रक्षायां । गुडति रक्षति आपद सप्ताशद् गुलिका । गुडिका च । कलाधौतम् । तारम् । सितम् ।
दुर्वर्णम् । खर्जुरम् । श्वेतम् । २०

शुक्तिज मौक्तिकं तथा ॥ ६४ ॥

द्वौ मौक्तिके । शुक्त्या जलादियानोपकरणद्वयविशेषाज्जातम् शुक्तिजम् । मुक्तानां समूहो
मौक्तिकम् । समूहार्थे इकण् ।

वित्तं वस्तु वसु द्रव्यं स्वार्थं ग द्रविणं धनम्-

कस्वर्गं

२५

दश धने । विन्दति पुण्यकृत वित्तम् । धात्वर्थेन वृत्तपत्तिः कियतेऽमरकीर्तिना । ‘विद्लृ लाभे ।
विद् । विद्यते स्म मुज्यते (स्म) वित्तम् । निष्ठाकः । ‘भित्तर्णवित्ता’^१ शकलाधमर्णभोगेयु” वित्तमिति

१. कुक् इति शब्द कुरति उच्चारयतीति विग्रह । इगुपधत्वात्प्रत्यय । यदा कोक्ने
स्थ्यादिकमादत्ते कुक् । ‘कुक् आदाने’ । मिप् । कुरति शब्दायते कुर । कुक् चामौ कुश्चेति
विग्रहः । २ पा० सू० ६।३।१२५ । ३ का० उ० सू० ३।४६ । ४ अर्ज्यते पुण्यैर्जुनम् । ५ का०
उ० सू० २।६० । ६ का० उ० सू० ३।३ । ७ अकृतकरूपमित्यर्थः । अथवा प्रशस्त जात जातरूपम् ।
प्रशमाया रूपप्रत्ययः । ८ मुदत्तमुनिवर्णने आ० । ९ हाटकाकरप्रभवत्वाद् वा हाटकम् । १० कला
सुवर्णकलिका धौता गता धावति गच्छति वा यस्मादिति कलधौतम् । ११ रूप रूपक्रियायाम् । प्यन्त ।
अचा यत् । १२ का० सू० ४।६।११४ ।

- निपातः । निपातस्येङ न भवति । “दाहस्य^१ च” तो नो न भवति । वसति सुखमनेन वस्तु । “कमि^२-मनिजनविशिष्टिभ्यश्च” एभ्यस्तुन् प्रत्ययो भवति । वसति सुखमनेन वस्तु । “पय्य^३सिवसिहनिमनि-त्रपीन्द्रिकन्दिबन्निबन्नाशिभ्यश्च” एभ्य एकादशभ्य उ प्रत्ययो भवति । द्रूयते गम्यते द्रव्यम् । पर स्यति अन्तं नयति अथवा पुण्य स्वनति स्वः^४ स्वम् । उभयम् । पुण्यकृतमियति अर्थम् । गुणान् राति रैः ।
- ५ “राते^५ डै ।” स्त्रीत्रा । द्रूयते गम्यते द्रविणम् । दधाति धारयति सारत्वं धनम् । कश गतौ । कशतीत्येव शील कस्वरम् । “कसिपिसियासीशस्थाप्रमदा च” वरप्रत्ययः । युग्म । सारम् । स्वापतेयम् । श्र-कथम् । रिवथम् । हिरण्यम् । विभवः ।

तत्पति प्राहुः कुवेरं चेकपिङ्गलम् ॥ ६५ ॥

वैश्रवणं राजराजमुत्तराशापतिं तथा ।

१० अलकानिलयं श्रीदं धनपर्यायदायकम् ॥ ६६ ॥

- सप्त कुबेरे । तस्य पतिः तत्पतिः । त कुबेरं प्राहुर्ब्रूवन्ति । वित्तपतिः । वसुपतिः । वस्तुपतिः । द्रव्यपतिः । स्वपतिः । अर्थपतिः । रा(रै)पतिः । द्रविणपतिः । धनपतिः । कस्वरपतिः । इत्यादिपर्यायानामानि कुबेरस्य जातव्यानि । कुत्सितो वेरो देह कुञ्जत्वाद्यस्य स कुबेर । पिङ्गलं कनेत्रत्वादेकपिङ्गलः । विश्र-वसोऽपत्यमणि शिवादित्वात् । खादेशो वैश्रवणः । राजा यज्ञाणा राजा राजराजः । उत्तराशायाः पति
- १५ उत्तराशापतिः । अलका निलयो गृह यस्य अलकानिलयः । श्रिय दयते श्रीद । धनपर्यायदायक । धनदायकः । धनद । वित्तदायकः । वित्तद । वसुदायकः । वसुदः । द्रव्यदायकः । द्रव्यद । स्वदायकः । स्वदः । रंदायकः । रंदः । द्रविणदायकः । द्रविणदः । कस्वरदायकः । कस्वरदः ।

राष्ट्र जनपदो निर्गो जनान्तो विषयः स्मृतः ॥

- पञ्च जनपदे । राजने राष्ट्रम् । तथा च सोमनीतौ^१—“पशुधान्यहिरण्यसपदा राजते शोभते इति राष्ट्रम्” । जनी प्रादुर्भावे । जन् । जायते कश्चित्तमन्ये प्रयुज्यते । “घातोश्च^२ हैतौ” इन् प्रत्ययः । अश्वोप० दीर्घ । जानिगिति जातम् । “जनिब-योश्च” ह्रस्वः । जनि जातम् । जनयन्ति प्रजा धनमिति जना । “अच् ” पचादिभ्यः” अच् प्रत्यय । “कारितम्याना०^३” कारितलोपः । पद गतौ । पद । जनैर्वर्णाश्रम-लक्षणै पद्यत गम्यते प्राप्यते आश्रीयत इति जनपदः । “अच् पचादे^४” अच् प्रत्यय । जनपद इति जातः । तथा च सोमनीतौ—“^५जनस्य वर्णाश्रमलक्षणस्य द्रव्योत्पत्तेर्वा स्थानार्मति जनपदः ।” निर्गम्यते यस्मिन्निति निर्गः । “निगो^६ देशेऽधिकरणे” इति उपप्रत्ययः । देशादन्यत्र निर्गम्यते यस्मिन्निति निर्गमनो गिरि । जनानामन्तो निकटे जतान्नः । पित्र् बन्धने । “धात्वादे^७” प सः” सि० विपू० । विपिण्वन्ति अस्मिन्निति विषयः । “पुसि सजाया^८” घः “नाभ्य०^९” गुणः । “ए^{१०} अय” तथा । च सोमनीतौ—“^{११}विविधवस्तुप्रदानेन स्वामिनः सद्धानि गजान् नृवाजिनश्च सिनोति बध्नातीति विषयः ।”

पुः पुरी नगरं चैव पट्टनं पुटभेदनम् ॥ ६७ ॥

१ का० सू० ४।६।१०२। २ का० उ० सू० १।२।७। ३. का० उ० सू० १।६। ४ “पोऽन्त-कर्मणि” । वप्रत्यय । “स्वन शुब्दे” डप्रत्ययो वा । ५ का० उ० म० २।२।७। ६ का० सू० ४।४।५। ७ जन० समु० १।८ का० सू० ३।२।१०। ८ का० सू० ३।४।६। ९ का० सू० ४।२।५। १० का० सू० ३।६।४। ११ घर्थे कविधानम्, पुसि सजाया घः इति कर्मणि कप्रत्ययो घप्रत्ययो वा वक्तव्यः । न तु पचाद्यच्, तस्य कर्तरि विधानात् । १२ जन० समु० ५। १४ हे०श० ५।१।१३३। १५.का०सू० ३।८।५४। १६ का० सू० ४।५।६६। १७. का० सू० ४।५।१। १८ का० सू० १।२।१२। १९. जन० समु० ३।

षट् (पञ्च) नगरे । पृ पालनपूरणयोः । पृ । कै० । पृष्ठातीत्येवशीला पूः । 'किञ्चाजिपृथुर्वि-
भासाम्' क्तिप् । "उरोष्ठयोपधस्य च" उर् । पुर् जातम् । "नामिनोर्वोर०" पूर् । वेलोप ४ । सि ।
'व्यञ्जनाच्च'" सिलोप । "रेफलोर्विसर्जनीयः" रस्य विसर्गः । पू । अदन्त । पुर **पुरी** च । इदन्तोऽपि
पुरि । नगाः सन्त्यत्र, ग्राम्यत्व नश्यत्यत्र वा **नगरम्** १ । क्लीबे । नगरी च । नानादिदेशागताना
वणिजा भाण्डानि पतन्त्यत्र **पत्तनम्** । पट्टन च । अत्र स्मृतिभेद —

५

"पट्टन शकटैर्गम्यं घोटकैर्नौभिरेव वा ।
नौभिरेव तु यद्गम्य पत्तन तत्प्रचक्षते ॥"

पुटा वासा भिद्यन्तेऽत्र **पुटभेदनम्** । क्लीबे । अधिष्ठानम् । निगमः । द्रष्टु । स्थानीयम् ।

वक्त्रं लपनमास्यं च वदनं मुखमाननम् ।

पणमये । वच परिभाषणे । उच्यतेऽनेन **वक्त्रम्** । 'सर्वधातुभ्यः' घृन् । रप् लप् जल्प् व्यक्ताया १०
वाचि । लप्यतेऽनेन **लपनम्** । युट् । अत्यतेऽस्मिन्नास्यम् । 'कृत्यल्युटो बहुल' मिति ण्यच् । वद व्यक्ताया
वाचि । उच्यतेऽनेन **वदनम्** । महति मुख्यति स्तोत्रेण वा **मुखम्** । खन्यते वा मुखम् । उणादा । मुख
दुःख तत्क्रियाम् । चौरादिकन्वादिन् । मुखयति अन्नादिखादनेनेति **मुखम्** । 'मुखेः' को मुखिश्च ।
मुखे क प्रत्ययो भवति धातोर्मुखिश्च । इकार उच्चारणार्थः । आ अनिति श्वसित्यनेन **आननम्** । तुण्डम् ।

श्रवणं श्रोत्र श्रवश्चापि कर्णं चैव श्रुति विदुः ॥ ६८ ॥

१५

पञ्च कर्णे । श्रूयतेऽनेन **श्रवणम्** । श्रूयतेऽनेन **श्रोत्रम्** । क्लीब । शृणोत्यनेन सान्तम् **श्रवः** ।
क्लीबे । करोति शब्दावधान कर्णः १३ । कर्णयति वा कर्ण । छिद्र कर्णभेदे । श्रूयतेऽनया **श्रुतिः** ।
स्त्रियाम् । विदुः कथयन्ति ।

दृगक्षि चक्षुर्नयनं दृष्टिर्नेत्रं विलोचनम् ।

सप्त नेत्रे । दृश्यतेऽनया **दृक्** । तालध्यान्तः । अक्ष व्याप्तौ । अक्षनेते व्यानोऽन्येनात्मा घटादीन- २०
र्थानिति **अक्षि** । 'अशिकुपिभ्या सिक्' । चण्ट दृढयाकूत सान्तम् **चक्षुः** । 'ऋपृथुपिचक्षिजीव-
ननिधनिभ्य उन्' । नीयते चिन्त विषयेषु अनेन **नयनम्** । दृश्यते प्रकटार्थोऽनया **दृष्टिः** । नीयतेऽनेन
दृश्य **नेत्रम्** । उभयम् । विशेषेण लोच्यते अवलोच्यतेऽनेन **विलोचनम्** । अक्षम् । तात्का । ज्योति ।

कटाक्षं केकरापाङ्गं विभ्रमस्तस्य वैकृतम् ॥ ६९ ॥

तस्य नेत्रस्य वकृते षट् (पञ्च) । कटयतीति १६ **कटाक्षम्** । उभयम् । के (शिरमि) २५

१ का० सू० ४।१।५७। २ का० सू० ३।५।४३ । ऋकारस्योत्त्वम् । ३ का० सू० ३।८।१८। इति
दीर्घ । ४ का० सू० ४।१।३४। ५ का० सू० २।१।४६। ६ का० सू० २।३।६३। ७ "नगवासु-
पाण्डुभ्यश्चेति" पा० सू० ५।२।१०७। वार्तिकेन मत्वर्थीयो रः । अथवा नश् धातोर्गोणादिकोऽप्रत्ययः
शस्य गत्वे च । ८ का० उ० सू० ४।३।१। ९ आस्यन्दतेऽम्लादिना प्रस्रवत्यत्रेति । १० "कृत्यल्युटोऽ-
न्यत्रापि" इति का० सूत्रम् । ४।५।९२। टीकोक्तयथाश्रुतसूत्रन्तु पाणिनीयम् ३।३।१९३। ११ खन्यतेऽ-
वदार्थे फलादिकमनेनेत्यपि । "दिन्यनेमुट् चोदातः" उ० अच् स च डित् मुडागमश्चेत्यन्यत्र । "मुदि-
तानि खानोऽग्निषाण्यनेत्येके" इति क्षीर० स्वा० । १२ का० उ० सू० ६।६५। १३ टीकोक्तविग्रहे करोतेर्गोणा-
दिकोऽप्रत्ययः । कीर्यते शब्दग्रहणाय क्षिप्यते, कीर्यते शब्दोऽस्मिन्निति वा, किरति शरीरे मुखमिति वा ।
१४ का० उ० सू० ६।५७। १५ का० उ० सू० २।४६। १६ कटेऽतिशयितेऽक्षिणी यत्र, कट गण्डमक्षति
व्याप्नोति चेति रामाश्रम । कटे आक्षिपतीति क्षीरस्वा० ।

किरति विक्षेप क्षिपतीति (कर्षतीति) केकर । न पाति कामिनमपाङ्ग^१ । उभयम् । विभ्रमण विभ्रम । विकृतस्य भावो वैकृतम् ।

दन्तवासोऽधरोऽप्योष्ठे वर्णितो दशनच्छदः ।

चत्वारश्चतुर्थे ओष्ठे । दन्तानां वासो दन्तवासः । अवति शोभाधरः । ‘अधो’ भवोऽधरो
५ वा । ओष्ठाभ्यां सहितावधरो वा । अधरोऽप्योष्ठमात्रे वर्तते । उपति दहति सपत्नीहृदयमोष्ठः । उप्यते
तीक्ष्णाहारेणोष्ठो वा । वर्णित कथित । दशनस्य छदो दशनच्छदः ।

शिरोधरो गलो ग्रीवा कण्ठश्च धमनी धमः ॥ १०० ॥

पङ् गले । शिरो धरति शिरोधर । शिरोधरा च । गलति भोजन गल । गृणाति गिरति वा
ग्रीवा । उणादौ गृशब्दे गृणातीति ग्रीवा । ‘शर्वजिह्वाग्रीवा’ एते कप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । कण्ठति
१० कण्ठः । ‘कण्ठः’ अस्मादुपत्ययो भवति । धमः सौत्रो धातु । धम्यतेऽनया धमनिः । इदन्त ।
स्त्रियामी । धमनी । धमति धमः । मन्या । कन्धरा ।

दोर्दोषा च भुजो बाहुः-

चन्वारो बाह्वौ । दम्यते विनीयते परोऽनेन दोः । सान्तम् । ‘‘दमेडांस्’’ । दूपयति दृष्ट या इति
दोषा । आदन्त । अव्ययः । न व्ययते । मुच्यतेऽनेन भुज । निपातनात् चक्रोः कर्त्तव्य न भवति । नामिन
१५ इति गुणश्च न भवति । भुज्युर्वर्जो^१ पाणिरोगयो^२ इत्यन्मिन्नर्थे निपातनात् । भुजा च । वहत्यनेनेति
बाहुः । ‘‘बहिस्वदि’’ (रहि) तलि पशिम्य उण् । प्रकोष्ठ ।

पाणिर्हस्तः करस्तथा ।

त्रयो हस्ते । पणायते व्यवहरत्यनेन पाणिः । ‘‘अजिजन्त्यतिरशिपणिभ्य एभ्य इन्’’
भवति । इत्येते हस्तः । ‘‘इसेस्त । कीर्यते क्षिप्यतेऽनेन करः । शयः । शमः’’ इत्यन्यः । पञ्चशाखः ।

२०

प्रादुर्बाहुशिरोऽमश्च-

बाहुशिरो अस इति सशा प्राहुः कथयन्ति । अस्यते भागेणामः^१ । स्कन्धश्च ।

हस्तशाखा कराङ्गुलिः ॥ १०१ ॥

द्वौ अङ्गुल्याम् । हस्तस्य शाखा इव हस्तशाखा । आकुञ्चनादिकर्माणि अङ्गति गच्छति
अङ्गुलिम् । अङ्गुलीवे । अङ्गुली । करस्याङ्गुलिः^{१३} कराङ्गुलिः । एवमङ्गुलम् । अङ्गुली ।

२५

नासा घ्राणम्-

१ अपाङ्गतीत्यपाङ्ग । ‘‘अगि गती’’ । अच् । २ ‘‘अधो भव’’ इत्यारभ्य ‘‘वर्तते’’ इत्यन्त क्षीर
स्वामिभाष्यमत्रोद्धृतम् । तद्भाष्ये ‘‘ओष्ठाधरो तु’’ इत्यमरोक्तमूलपदस्य व्याख्यारूपम् ‘‘ओष्ठाभ्यां
सहितावधरो’’ इति वाक्यमन्धानुसरणेनात्रोद्धृतमप्रस्तुतमिति विवेकः । ३ दन्ताश्छाद्यन्तेऽनेनेति तदाशयः ।
पु सि सञ्ज्ञाया घः । ४ का० उ० सू० २।२। ५ का० उ० सू० १।४। ६ का० उ० सू० २।३। ७ का०
सू० ४।६। ८ का० उ० सू० १।३ । ९ का० उ० सू० ८।६। १० का० उ० सू० ८।२। ‘‘भृगुवा-
हस्पतिदमित्लूपस्यस्तः’’ इति पूष सूत्रम् । ११ अत्र प्रमाणम्—‘‘पाणिः शयः शमो हस्तः’’ इत्यमरमाला ।
‘‘पञ्चशाखः शयः शमः’’ इति अभि० चि० । १२ अस्यते समाहन्यते इत्यर्थः । ‘‘अस समाघाते’’ । अस
धातुश्चुरादिः । यद्वा ‘‘अम गती’’ अमति अम्यते वा असः । ओष्ठादिक सन्प्रत्ययः । १३ अङ्गुलि इत्यत्र
‘‘अङ्गुलिः’’ का० उ० सू० ६।४। इत्यङ्गधातोस्तत्प्रत्ययः । अङ्गुलिशब्दे तु ‘‘अङ्गुलिन्यामुलीयि’’ का०
उ० ३।३०। इत्युलिप्रत्ययः । स्त्रियामी । अङ्गुली इत्यपि ।

द्रौ नासिकायाम् । नासते शब्दायते नास्यतेऽनया वा नासा^१ । नेसा^२ च^३ जिघ्रत्यनेन घ्राणम् । क्लीबे । सिद्धनी । नासिका । घोणा ।

उगे वक्षः

द्रौ भुजमव्ये । अयते गम्यते उर^३ । “अतैरुश्च” अस्मादसुप्रत्ययो भवति अस्य उरादेशो भवति । ऋ गतौ । अस्य धातो प्रयोगः । वक्ति वार्णी वक्षः । “वचेः” सोऽन्तश्च^४ अस्मादसु प्रत्ययो भवति सोऽन्तः । अकार उच्चारणार्थः । “चवर्गस्य किः” । “निमित्तादि” त्यादिन^५ पत्व च ।

कुक्षिः स्याज्जठरोदरम् ।

त्रयो जठरे । कुपति (कुष्णाति) निष्कर्षत्याहार कुक्षिः^६ । पुमि । कुक्षम् । क्लीबे । जमति जठरम् । अथवा जठ सौत्रोऽय धातु । उणादौ निपातोऽस्ति । उनत्ति क्लेदयत्याहारमुदरम् । एते उभयम् । पिचण्डम् । तुन्दम् ।

१०

स्तनः पयोधरकुचौ वक्षोज इति वर्णितः ॥ १०२ ॥

चत्वारः कुक्षौ । स्तन्यते बालैः “स्तनः” । पयो धरतीति पयोधर^७ । कौचते स्त्री मृग-मानेऽत्र, कुच्यते मर्दनेन आकुलीक्रियते वा कुचः । कूचश्च । वक्षमि जातो वक्षोज । उरसिजः । वक्षोरुहः ।

कटिर्नितम्बं श्रोणी च जघनं-

१५

चत्वारः कट्याम् । कटयते वस्त्रैराच्छाद्यते कटि । कटी । कट^८ । कटम् । नितरामतिशयेन तम्बनं काङ्क्षते^९ नितम्बः । आश्रीयते कामिभिः श्रोणः । नदादित्वादीः श्रोणी । उदन्तोऽपि श्रोणिः^{१०} । स्त्रियामी । श्रोणी । इन्ति चित्तमिति जघनम् । “इनेजघश्च” । चकारात् काञ्चीपदम् । कलत्रम् । कडत्रम् । जघनम् । ककुब्जती । आरोहः । कटीरम् । त्रिकस्थानकम् । स्थानपदभावेऽपि त्रिकम् । फलक च ।

जानु जहु च ।

२०

द्रौ जानो । गन्तु जायते जानुः^{११} । “कृवापाजिमिस्वदिसा” यशूदसनिजनिचरिचटिभ्य उण् । जहानि^{१२} जहु । अष्टीवान् । जह्वा^{१३} ।

चलनं चरणं पादं क्रमोऽहिश्च पदं त्रिदुः ॥ १०३ ॥

१ ‘णाम् शब्दे’ । नाम् धातु । अच् घञ् वा । २ नेदमतोऽन्वय समुपलब्धम् । ३ अयते गम्यते क्लेनेति शेष । अथवा उरम् बलार्थः कण्ठ्वादि । उरस्यति बलमाधत्ते उर । क्रिप् ४ का० उ० मू० ४।६७।५ का०उ०मू० ८।६२। ६ का०सू० ३।६।५५। “चवर्गस्य किरसवर्णे” । इति पूर्ण सूत्रम् । ७ का०सू० ३।८।२६। “निमित्ताप्रत्ययविकारागमस्थ स पत्वम्” इति पूर्ण सूत्रम् । ८ “कुष निष्कर्षे” “अशिकुपिभ्या सिक” का०उ०सू० ६।५।७। ९ “स्तन गदी शब्दे” स्तनति कथयति यौवनोदयम् । स्तन्यते वर्णयते कामुकैर्वा स्तन इत्यन्यत्र । १० धरतीति धर । पचायच् । पयसो धरः पयोधर । इति बोध्यम् । टीकोक्तविग्रहे तु कर्मण्यणि पयोधार इति स्यात् । “११ तम्ब गतौ” नितम्बति गच्छतीति, निभृत तम्बते कामुकैः निभृत ताम्यति सुरतसम्मर्दाद्वा नितम्ब इति रामाश्रम । १२ भूयते किङ्किणध्वनिरत्र “श्रु श्रवणे” श्रोणादिको णि । इति हेमचन्द्र । “श्रोणु सङ्घाते” श्रोणति विविधशरीरावयवैः सङ्घातो भवतीति श्रोणि । “सर्वधातुभ्य इन्” इति रामाश्रम । १३ का० उ० मू० २।३७। १४ जायतेऽनेनाकुञ्चनादि जानुरिति हेमचन्द्रः । १५ का०उ०मू० १।१। १६ नात्र कोपान्तरप्रमाणमुपलब्धम् । १७ यद्यपि जानोरघ आगुल्फान्त जह्वा, जह्वाजघनयोः सन्धिर्जानुरिति भेदः । तथापि जह्वासामीप्याद् भेदाविवक्षया जानु-पर्यायो जह्वेत्युक्तम् । तत्र भेदस्तु न विस्मर्तव्यः ।

पद् चरणे । चाल्यते **चलनम्**^१ । चरत्यनेन **चरणम्** । पद्यतेऽनेन **पादः** । षच् । दान्तोऽपि पादः । 'क्रम पादविज्ञेये' । क्राम्यत्यनेनेति **क्रमः** । 'अहि गतौ'^२ । इदनुबन्धत्वात्तागमः अहन्यनेनेत्यहिः । "अंहेरिः" अहर्षातो रिप्रत्ययो भवति । अङ्गिप्रश्च । पद्यते **पदम्** । क्लीबे ।

शिरो मूर्धोत्तमाङ्गं कम्—

- ५ चत्वारो मस्तके । १८ हिंसायाम् । शीर्यते हिंस्यते **शिरः** । "उपिरजिशृभ्यो यण्वत्" एभ्योऽमन् प्रत्ययो भवति स च यण्वत् । तेनागुणः । अनुषङ्गलोपः । 'मूर्छा मोहसमच्छायाया' । मूर्छन्त्य-वाहताः प्राणिनो **मूर्धा** । ४० पादय — "पूषन् अर्यमन्मज्जन्नुज्जन्ध्वन्स्त्रीहन्मातरिश्वन्क्लेदन्स्नेहन्-मूर्धन्यूषन्" एते कन्यन्ता निपात्यन्ते । उत्तम च तद् अङ्गम् **उत्तमाङ्गम्** । कै गौ शब्दे । कायतीति **कम्** । शीर्षम् । मस्तकः । 'कन्याङ्गं च नानार्थे' ।

प्रारभ्यं प्रेरितेरितम् ।

- १० त्रयः प्रेरणे । प्रारभ्यते **प्रारभ्यम्** । "शक्तिरहिपवर्गान्ताच्च" यः प्रत्ययः । ईर गतो कम्पने च । प्रेर्यते **प्रेरितम्** । ईरितम् । "नपु सके भावे कः" ।
साभ्रत सरस्वतीनामानि प्रारभ्यन्ते आचार्यश्रीमदमरकीर्तिना—

वाग्ध्वो वचनं वाणी भारती गीः सरस्वती ॥ १०४ ॥

- १५ मम वाण्याम् । उच्यते **वाक्** । "वचिप्रच्छिश्चद्रश्चुज्वा मिद् दीर्घश्च" एभ्यः शिप् प्रत्ययो भवति दीर्घश्चस्वरभ्येपायः । वक्ति वच्^४ । "सर्वधातुभ्योऽमन्" । उच्यते **वचनम्** । वाण्यने वाणि । स्त्रियामीः । **वाणी** । विभर्ति जगद् धारयति, भरतो ब्रह्मा तस्येव **भारती** । तथा च—
"आत्मनि मोक्षे ज्ञाने वृत्तौ ताते च भरतराजस्य ।
ब्रह्मेति गीः प्रगीता न चापरो विद्यते ब्रह्मा ॥"

- २० गीर्यते उच्चार्यते रान्त **गी** । सरः प्रसरणमस्तस्या **सरस्वतीः** । ब्राह्मी । तथाहि—
"गीर्गोः कामदुघा सम्यक् प्रयुक्ता स्मर्यते बुधैः ।
दुग्धप्रयुक्ता पुनर्गो वं प्रयोक्तुः सर्वे शसन्ति ॥

सिहद्विपघने गर्जः—

सिहो कण्ठीरवे, द्विपे गजे, घने मेघे च **गर्ज**^१ शब्दः कथ्यते । गर्जनं गजः ।

- २५ **हेपाऽश्वे**

अश्वानां शब्दे **हेषा** । हेषणम् । हेषा हेषा च ।

वृंहितं गजे ।

गजशब्दे वृंहितम् । वर्हणम् ।

स्फीकृतं धेनुकलभे—

१ चलत्यनेनेति चलनमिति सुवचः । २ अत्राभिधानचिन्तामणिः प्रमाणम् — 'चरण नमणः पादः पदोऽहिथलन क्रमः' । इति । ३।२८०। ३ का० उ० सू० ४।५९। ४ का० उ० सू० २।५। ५ अत्र प्रमाणान्तराभावात् । वराङ्गं कमनीयाङ्गमिति वा स्यात् । ६ का० सू० ४।२।११। ७ का० उ० सू० २।२३। ८. उच्यते वच् 'इति कर्मणि विग्रहो युक्तः । ९ का० उ० सू० ४।५६। १० "वश शब्दे" चुरादि । ११. सिहगजमेघध्वनौ गर्जशब्दः प्रयुज्यते । एव वक्ष्यमाणतत्तदध्वनौ सर्वत्र योज्यम् ।

धेनुकलमे शिशुवत्से स्फीकृत^१ स्फीशब्द कथ्यते ।

स्तमितं जलदे तथा ॥ १०५ ॥

जलदे मेघे मेघाना शब्दे स्तनित कथ्यते । स्तन्यते स्तनितम् ।

स्यन्दने चीत्कृतं मन्त्रे भटे च हुङ्कृतं तथा ।

स्यन्दने रथशब्दे चीत्कृतं कथ्यते । मन्त्रे भटे च हुशब्दः कथ्यते । हु मन्त्रे, हु परिप्रन्ने ५
हु संव सुट्ट ते भयादो रात्रसोऽयम् । कुत्सने हु निर्लज्जा । अनिच्छायाम हु हु मुञ्च ।

मीत्कृत मणितं कामे—

कामे कन्दर्पभोगान्तावशब्दे मीत्कृत मणितम् । मीत्कृत्यते मीत्कृतम् । मण्यते मणितम् ।

खन्कृतं शृङ्खलायुधे ॥ १०६ ॥

शृङ्खलाऽयुधे खन्कृतम् । गुगमम् ।

१०

मञ्जीरकं तुलाकोटिर्नृपु—

त्रय^१ स्त्रीणा चरणामरणे । मञ्जि मंत्र । मन्त्र्याकर्षति चित्त मञ्जीरम् । अथवा मन्त्रु मन्त्र-
नीरयति मञ्जीरम् । तुलाकृतेर्जङ्घाया कोटिरिव तुलाकोटिः^२ । स्त्रोगति नौतीति नृपुर्म्^३ । शिञ्जिना ।
यादकटकः । हसकम् । पदाद्गदन् । कलापो नानाये ।

तत्र संसृतम् ।

१५

तत्र तस्मिन् मञ्जीरके तच्छब्दे संसृत कथ्यते ।

झाङ्कृतं चाथ मरुति—

मरुति वाया तच्छब्दे झाङ्कृतं कथ्यते ।

क्रेङ्कृतं क्रौञ्चहंसयोः ॥ १०७ ॥

क्रौञ्चश्च हंसश्च क्रौञ्चहंसो तयो क्रौञ्चहंसयोः क्रेकृतशब्दो मतः कथित । तथा^४ चामरमिह — २०

^१ निपादपंमगान्धारषड्जमध्यमधैवता ।

पञ्चमश्चेत्यर्मा सम तन्त्रीकण्ठोत्थिताः स्वराः ॥

तथा च भरतनाटके —

^२ “पङ्ज मयूरा ब्रुवते गावस्त्वृषभभाषिण ।

आजाविक तु गान्धार क्रौञ्चः कणति मध्यमम् ॥

२५

पुष्पसाधारणे काले पिकः कूजनि पञ्चमम् ।

धैवत हेषते बाजी निपाद वृ हते गजः ॥

नासाकण्ठमुरस्तालुजिह्वादन्ताश्च सभृशन् ।

पङ्म्य सजायते यस्मात्तस्मात्पङ्ज इति स्मृत ॥”

१ नवप्रभृता गो धेनु त्रिशब्दो हस्तिशावक कलमस्तथो शब्दः स्फीकृतमुच्यते इति शब्दार्थः । टीकास्वरस्यन्तु गोवत्सशब्द स्फीकृतमित्येव प्रतिभाति । अत्र कोशान्तरप्रमाणाभावात्स्वि-
प्रयोगादर्शनाच्च मूलशब्दार्थाऽनुसरणमेव शरणम् । २ तुला तुलया वा कोट्यर्थः । कुट प्रतापने चुरादि ।
अच इ । यदा तुलाकार कोटिरग्रमस्येति रामाश्रमः । ३ नुवन न्यते वा नृ । ए स्तवने । किं ।
नुवि पुरति नृपुरम् । पुर अग्रगमने । द्गुपवेति क । ४ शब्दभेदप्रसङ्गाद् ग्रन्थान्तरोक्तमन्यशब्दभेद
स्वभेद च ह । ५ अम० को० १।७।१। ६ ‘पङ्ज’ इत्यारभ्य “इति स्मृत” इत्यन्तं ‘तथा च
भरतनाटके’ इत्येव टीकायामुपन्यस्तः पाठः “निपादपंमगान्धार” — इति क्षीरस्वामिभाष्येऽमरेऽविकल
उपलभ्यते ।

प्रतीतं संस्तुतं लब्धं दृष्टं परिचितं स्मृतम् ।

५८ स्मृते । प्रतीयते प्रतीतम् । ष्टु स्तुती । ष्टु । “धात्वादेः षः सः ।” स्तु सम्पूर्वम् । सम्यक्-
प्रकारेण स्तूयते स्म संस्तुतम् । लभ्यते स्म लब्धम् । परिचीयते स्म परिचितम् । स्मर्यते स्म स्मृतम् ।

संस्थितं दशमीस्थं च परासुं च मृतं विदुः ॥ १०८ ॥

५ चत्वारो मृते । सतिष्ठते स्म संस्थितः । सम्पूर्वकस्तिष्ठति । दशमीं तिष्ठतीति दश-
मीस्थ । तथा च—

“प्रथमे जायते चिन्ता द्वितीये द्रष्टुमिच्छति ।

तृतीये दीर्घनिश्वासश्चतुर्थे भजते उवरम् ॥

पञ्चमे दह्यते गात्रं षष्ठे मुक्तं न रोचते ।

१० सप्तमे स्यान्महामूर्च्छा उन्मत्तत्वमथाष्टमे ॥

नवमे प्राणसन्देहो दशमे मुच्यतेऽसुभिः ।

एतेवर्गे समाक्रान्तो जीवस्तस्य न पश्यति ॥”

दशाना पूरणी दशमी तत्र तिष्ठतीति वा दशमीस्थः । परागता असुबोऽस्य परासुः । म्रियते स्म
मृतं विदुः कथयन्ति ।

१५ खेदो द्वेषोऽप्यमर्षश्च रुदकोपक्रोधमन्यवः ।

मम क्रोधे । खिद परिघाते । तुदादौ खिन्दति । द्वैभ्ये रुधादिपाठात् ग्विन्ते (तत ल्तेदन)
खेदः । भावे घञ्प्रत्ययः । द्विप् अतीतौ अदादौ । द्वेषण द्वेषः । मृप तितित्तायाम् । चुरादौ । शक
मृप क्षमायाम् । दिवादौ विभाषित । मृप सहने व्वादेश परस्मैपदी । अमर्षणम् अमर्षः । कुप क्रुध रूप रोपे ।
रोपण रुट् । सम्पदादित्वाद्भवे क्विप् । कोपन कोप । क्रोधन क्रोध । मन ज्ञाने । मन्यते मन्युः ।
२० “३जनिमिदमिभ्यो यु” । एभ्यो युप्रत्ययो भवति । उणादित्वाद्योरनादेशो न भवति ।

हर्षः प्रमोदः प्रमदो मुक्तोपानन्दमुत्सवः ॥ १०९ ॥

मम हर्षे । हर्षण हर्ष । प्रहर्षश्च । प्रमोदन प्रमोद । मदी हर्षे । प्रमदन प्रमदः । “मदेः
प्रसमोर्हर्षे” प्रसमोरुपपदयोर्मदेरल् भवति हर्षार्थः । मोदन मुद् दान्त ज्ञियाम् । तुप तुष्टौ । तोषण
तोष । आनन्दनम् आनन्दः । पु नि । तुनदि सम्पूर्णा । उत्सवनम् उत्सव । प्रीति । उत्कर्ष । उद्धवः ।

२५ कृपाऽनुकम्पानुक्रोशोऽहन्तोक्तिः करुणा दया ।

पठ दयायाम् । कृप कृपायाम् । कृपण कृपा । “पातुवन्धनिदादिभ्योऽङ्” इत्यङ् । “कृपे
सम्प्रसारणम्” इति परसूत्रेणाङ् सम्प्रसारण च । स्वमते कृप कृपायाम् इति ज्ञापकात् सम्प्रसारणम् ।
“स्त्रियामादा ।” अनुकम्पनमनुकम्पा । अनुक्रोशन्त्यनेन अनुक्रोश । पु नि । न हन्तोक्तिः अहन्तोक्तिः ।
करोति विषादं चित्तं क्रिन्ति वा करुणा । उणादौ डुकृन् करणे । क्रियते करुणा । “ऋकृतृवृन्दमिदायं-

१ द्वेषपर्याये खेदपाठाश्रित्तनीय । खेदपर्यायस्तु “शोकं शुक् शोचनं खेदः” इति
अभि० चि० । क्रोधपर्यायस्तु — “कोपक्रोधाऽमर्षरोषप्रतिषा रुट्क्रुधौ स्त्रियौ” इत्यमरः । २ मन्यते त्या-
ज्यत्वेनेति शेषः । ३ का० उ० सू० ४।१। ४ का० सू० ४।५। ४। ५ उद्धवशब्दस्योत्सवार्ये प्रमाणम्—
‘उद्धवो यादवमिदं महे च क्रतुपावके’ । इति मेदि० को० वा० व० ३२ श्लो० । ६ का० सू०
४।५। ८। ७ “कृपेः सम्प्रसारणं च” पा० गण सू० ३।३। १०। ८ कातन्त्रमतमत्र स्वमतम् । पाणिन्यादि-
सूत्र परमतम् । ९ का० उ० सू० २।६०।

जिभ्य उनः" एभ्य उनः प्रत्ययो भवति । दयन दया । दय दानगतिहिंसादानेषु । भिदाद्यङ् ।

शेमुषी धिषणा प्रज्ञा मनीषा धीस्तथाऽशयः ॥ ११० ॥

पङ् बुद्धौ । शे इत्यव्ययम् । मोह । न मुष्णति शमयति इति शेमुषी । धृष्णोत्पन्नया धिषणा । प्रज्ञान प्रज्ञा । मनुते जानात्यनया मनीषा । मनस ईषा मनीषा वा । "हललाङ्गल्यो-
रीषे मनसश्च" इत्यनेन अन्यस्वगदेलोप । अत्र सलोपश्च । चकाराधिकारादौकोपचाराद्वा सलोपः । ५
स्मृ ध्ये चिन्तायाम् । ध्यान धीः । मम्पदादित्वाद्वाक् किप् । 'यायो मम्प्रसारणम्' अनेनैव सम्प्रसारण
दीर्घत्व च । प्र० सि । "रेकमोर्विसर्जनीय" । आशेने तिष्ठति सर्वमन्नाशय । तथा-प्रेक्षा । प्रतिभा ।
बुद्धिः । मति । मेधा । सख्या । सवित्तिः । उल्लङ्घि ।

प्राज्ञमेधाविनो विद्वानभिरूपो विचक्षणः ।

पण्डितः सूरिाचार्यो वाग्मी नैयायिकः स्मृत ॥ १११ ॥

१०

दश सिद्धिपि । प्रजानाति प्रज्ञ । प्रज्ञादित्वाद्वाक् प्राज्ञः । मेधाभ्यस्य मेधावी । माया-
मेधात्मनो विन् वायिकागत्मनै एवने विमपया विमापिता । शेपेभ्यो मनुषिष्यते । मतिमान् । बुद्धिमान् ।
विद ज्ञाने । विद । वेत्ति जानातीति विद्वान् । 'वर्तमानं श० शतृ' । 'अन्वि०' अदादि । 'ध्वेते
३शतुर्वसु' । शतृङ् स्थाने वसु । तदादेशास्तद्वद्भवन्ति इति वचनात् वसो शतृङ्वादेन सार्वाधातु-
न्वात् 'अत्तीण्' प्रथमैकस्वरतामिड्वमौ अनेनैकस्वरत्वात्प्रात इङ् न भवति । विद्वन् सजातम् । १५
'मिः । "सान्तमहतोनोंपधाया" दीर्घ । विट्पोऽपि अभिगत रूप येनाभिरूपः । रूप विद्या ।

"कोकिलाना स्वरो रूप नारीरूप पतिव्रता ।

विद्या रूप कुरूपाणा क्षमा रूप तपस्विनाम् ।"

चक्ष धातुर्विपूर्वः । विविध चष्टे विचक्षणः । नन्दादेयु । यांगन । १६२पृ० एत्वम् ।
विचक्ष्णो विद्वान् इत्यनेन विचक्षण इति निपात । निपातस्य फल ख्यादशो न भवति । पण्डा बुद्धि । २०
पण्डा मजाताऽस्येति पण्डितः । '१० तारकितादिदर्शनात्सजातेऽयं इतच् ।' "इवर्णावर्ण०" आकार-
लोपः । मि । रेक । पङ् प्राणिगर्भविमोचने । सृते बुद्धि सूरिः । "सूस्वदिभ्य क्रि" एभ्य क्रिप्रत्य-
यो भवति । को यण्वदर्थः । २ आचर्यते आचार्य । "चरेराटि चागुरौ" । तथा चोक्तम्— इन्द्र-
नन्दिनीतिशास्त्रे -

"पञ्चाचाररतो नित्य मूलाचारविदग्रणीः ।

२५

चतुर्वर्णस्य सङ्घस्य य स आचार्य इष्यते ॥"

१ शेते इति शेमोह । विच् । तम्मुष्णातीति, मूलविभुजादित्वात्क । गारादिडापु ।
शमे कर्मा एत्वाऽन्यासलोपे उगितश्चेति डीपि शशामेति शेमुषीति क्षी० स्वा० । २ 'धिप शन्दे' ।
देवेष्टीति । क्षी० स्वा० । ३ प्रज्ञायतंऽनयेत्यन्यत्र । ४ का० सू० पूर्वा० २८ म० । ५ न्यायतेऽनया
धीरित्यन्यत्र । ६ 'सम्पदादिभ्य क्रिप्' का० सू० उ० ८०५ म० । का० सू० मा० ६५८ सू० ।
८ का० सू० २।३।६३। ९ का० सू० २।६।१५। अत्र टुर्गट्टिनि । १० 'वर्तमाने शन्तुटानशाव-
प्रथमैकाधिकरणामन्वितयो' । का० सू० ४।४।२। ११ "अन्विकरण कर्तरि" का० सू० ३।२।-
३२। १२ "अदादेलुग्विकरणस्य" का० सू० ३।४।९२। १३ 'शन्तुर्वसु' । का० सू० ४।४।४।
१४ का० सू० ४।६।७६। १५ का० सू० २।२।१८। १६ का० सू० २।६।४८। १७ का० सू० ५०
५०८। १८ का० सू० २।६।४४। १९ का० उ० सू० ३।५३। २० का० सू० ४।२।१४। २१ नीतिसा०
१५ श्लो० ।

प्रशस्ता वागस्यस्य वाग्मी । न्याये विचारे नियुक्तो नैयायिकः । धीर । लब्धवर्ण । विपश्चित् । वृद्ध । आनुरूपः । सन् । मनीषी । ज्ञ । दोषज्ञ । कोषिदः । प्रबुद्ध । सुधीः । कृती । कृष्टि । कवि । व्यक्तः । विशारदः । सख्यावान् । मतिमान् ।

पारिषद्यो बुध सभ्यः सदः संसत्सभोचितः ।

- ५ पट्समापुरूपं । परिषदि सभाया भव पारिषद्य । यण् । बुध अवगमने । बोधतीति बुधः । सभाया साधु सभ्य । कुशलो योग्यो हितश्च सापुरुष्यते । सदसि उचितो योग्य सदुचित । ससदुचितः, सभोचितः । सभासद् । सभास्तारः । सामाजिक ।

परिपत्सभाऽस्थानपती—

- त्रय सभायाम् । परिषदन्त्यस्या परिषद् । सह भान्त्यस्या सभा । आसमन्तात्स्थीयते ८
१० भिन् आस्थानम् ।

(‘अधिपति राजा’)पति —आस्थान सभा इत्यादिपर्यायनामतोऽधिपति पतिरित्यादिपर्याय शब्देषु सत्सु राज्ञो नामानि भवन्ति । परिषदधिपति । परिषत्पति । सभाधिपति । सभापति । आस्थानाधिपति । आस्थानपति ।

राजसूयो नृपक्रतुः ॥ ११२ ॥

- १५ मण्डलेश्वरप्रजाया (प्रयाजे) ङा । पुन् अभिपदे । पु । ‘धात्वा०’ स । राजन्पूर्व राजा सोतव्यो राजा सूयते वा यस्मिन्निति राजसूय । ‘*राजसूयश्च’ । ध्वण्यन्ययान्तो निरात । नृपाणां राजा क्रतु नृपक्रतु । तथा च ‘स्मृतौ—

‘गोसवे मुरभि हन्याद्राजसूये तु भूभुजम् ।
अश्वमेधे हय हन्यात् पौण्डरीके च दन्तिनम् ॥”

- २० विष्टं मल्लिकापीठमासन्दीमामन विन्दु ।

पडासने । नृन् आच्छादने । विपूर्व । विस्तरण विष्टः । ‘स्वर’ वृद्धगमिभ्रहामल् । अल् । नाम्यन्तगुण । ‘वाग्मृणातेः’ । मज्ञाया मय्य पत्वम् । “*तवर्गस्य पटवर्गाट्वर्ग” । मल्लयते धार्यते मल्लिका । पेटतीति पोटन् । ‘पृषोदरादिन्वाहीर्ष’ । आ समन्तात्सीदति तिष्ठत्यस्यामासन्दी । आस्यते

१ अत्र प्रमाणम् अभि० चि० ३।५। ‘विद्वान् सुधी’ कविचिचक्षुणलवधवर्णा जः प्राप्तरूप-
कृतिवृद्धयभिरुपधीग । मेधाविकोविदविशारदसृष्टिदोषज्ञा प्राजरण्डितमनीषिचुप्रबुद्धा ॥ व्यक्तो
विपश्चित्सदृख्यावान् मन् ” इति । २ “अधिपती राजा” इति प्रतीकर्माश्रित्य व्याख्यादर्शनादय मूल-
पञ्चाश इति, न अस्मितव्यम् । पूर्वापरपादयोर्मध्ये तत्समावेशाम्भवात् पडक्षरत्वेन स्वतन्त्रपादत्वा
भावात् अत्र राजवर्णनस्याप्रसङ्गाच्च । एव च सभाप्रसङ्गेन तदधिपते राजव्यपदेशार्थ-टीकाकर्तुवि-
शेषवचनमित्येव युक्तं नाति । ३ का० सू० ३।८।२।४। ४ का० सू० ४।२।४।१ । ५ ‘स्मृतौ’ इत्युक्तम् ।
परमविकल श्लोको यशस्तिलक आ० ७ क० ३० श्लो० ३ उपलभ्यते । ६ का० सू० ४।५।४।१ ।
७ का० सू० ३।८।५।८ शा० सू० २।२।१०२।६ ‘आस उपवेशने’ । अद्वाद्यः” पा० उ० सू०
४।६।८ इति दप्रत्ययो भवति, अमागमष्टिव च । टित्वाण्डाप् । तथा चोक्तम्—“स्याद् वेत्रासनमासन्दी”
इति ३।२।८। अभि० चि० ।

उपविश्यतेऽस्मिन्नासनम् । “कृत्ययुटोऽन्यत्रापि च” युट । चिदुः कथयन्ति ।

विष्टपं भुवनं लोको जगत्—

चत्वारो जगति । “विष्टपन्त्यत्र विष्टपम्” । भूतानि भवन्त्यस्माद्भुवनम् । लोक्यते लोक । गच्छतीत्येवशील जगत् । “युतिगमोर्द्वे च” क्विप् । गमो द्विर्वचनम् । अभ्यासमकारलोप । “कवर्गस्य चवर्गः” गस्य ज । ज गम् जातम् । “पञ्चमो” । दीर्घ । “थममनतनगमा कौ” पञ्चमलोप । ५
आत् अत् । “धातोस्तोऽन्त पानुबन्धे” तोऽन्त । वेलाप । सि । नपु सकम् ।

तस्य पतिर्जिनः ॥ ११३ ॥

तस्य भुवनस्य पतिर्जिनः कथ्यते । अनेकभगवद्भवनव्यसनप्रापणहृत्तुं कर्मांरातीन् जयतीति जिनः । “इण्शजिङ्घिभ्यो नक्” । विष्टपपतिः । लोकपतिः । जगत्पतिः । इत्यादीनि जिनस्य पर्याय-
नामानिज्ञातव्यानि । १०

वर्षायान् वृषभो ज्यायान् पुरुराय प्रजापतिः ।

ऐश्वराकः (कः) काश्यपो ब्रह्मा गौतमो नाभिजोऽग्रजः ॥११४॥

द्वादश वृषभे । अतिशयेन वृद्धो वर्षायान् । “प्रियन्थिगर्भिरोरुबहुलगुरुवृद्धतृप्रदीर्घ-
वृन्दारकाणां प्रत्यस्त्वर्ध्वहिगर्ध्वविजम्भाविचन्द्राः” । वृषण अहिमालदण्डोपेतधर्मेण भातीति “वृषभ ।
“३” ऋषिवृषिभ्या यञ्जत्” । आभ्यामभः प्रत्ययो भवति स च यञ्जत् । अयमेवा मध्ये प्रकृष्टो १५
वृद्धः प्रशस्यो वा ज्यायान् । “वृद्धस्य” च ज्य.” वृद्धशब्दस्य ज्यादेशो भवति । पृ पालनपूरणयो ।
पृणाति पालयतीति पुरु । “इषिपिभिदिगृषिदिपृष्य कुः” ए-यः कुप्रत्ययो भवति । अस्मिन्नहनि
अद्य” । इदमोऽद्रावो अथ परविधि “स्योऽद्या” निपात्यन्त इति वचनात् । (आदां भव आद्य)
प्रजानाम् इन्द्रवरुणोन्द्रचक्रवर्त्यादीनां पतिः स्वामी प्रजापतिः । इषु इच्छायाम् । वाञ्छयते लोकै
ऐश्वराकः” । तथा चापे महापुराणे— २०

“अङ्कनाच्च तदेक्ष्णारससंग्रहणे नृणाम् ।

इक्ष्वाकुरित्यभूद्वो जगतामभिसम्मतः ॥”

काश्य क्षत्रियतेजः पातीति काश्यपः । तथा च महापुराणे—

“काश्यमित्युच्यते तेजः काश्यपस्तस्य पालनान् ।”

वृहतीति ब्रह्मा । २५

१ का० सू० ४।५।९२। २ “ष्टप स्तप प्रतिघाते” अम० को० क्षी० स्वा० भा०य एवोपलभ्यते न
तु पाणिनिघातुपाठे । ३ विशन्त्यत्रेति रामाश्रमः । विशन्त्यस्मिन् जीवाजीवा इति हेमचन्द्र । ४ का० सू०
४।४।४८ । ५ का० सू० ३।३।१३ । ६ का० सू० ४।५।५। ७ का० सू० ४।१।६९। ८ का० सू०
४।१।३०। ९ का० सू० ४।१।३४। “वेल्लोऽपुक्तस्य” इति पूर्णं सञ्जम् । १० का० उ० सू० २।५।१।
११ पा० सू० ६।४।१५७। १२ वृषेण भातीति विग्रहे आनोऽनुपमर्गे क । भा दामो । वर्षति धर्मांमृतमिति
विग्रहे “ऋषिवृषिभ्या यञ्जत्” इत्यभ । “वृषु सेचने” । १३ का० उ० सू० ३।१३ । १४ हे० श० ७।४।५।३
१५ का० उ० सू० १।१०। १६ अत्र आयशब्दो न त्वयशब्दः । तेनादो भव आय इति युक्तं प्रतिभानि ।
१७ का० सू० २।६।३७। १८ इक्ष्णाम् आ (रमावर्कणम्) अङ्कनीति इक्ष्वाकु । तत ऐश्वराकः । तत्र
प्रमाणमाह— “अङ्कनाच्चेति” सङ्गति ।

“आत्मनि मोक्षे ज्ञाने वृत्तां ताते च भरतराजस्य ।

ब्रह्मति गीः प्रगीता न चापरो विद्यते ब्रह्मा ॥”

अतः परो ब्रह्मा नास्ति । गीतमो गीतोऽवतागद् गीतम् । आषे महापुराणे—

“गोः म्वगः स प्रकृष्टात्मा गीतमोऽभिमतः सताम् ।

स तस्मादागतो देवो गीतमश्रुतिमन्वभूत् ॥”

नाभेर्जातो नाभिजः । अग्रे जातोऽग्रजः । अदृष्टत्वात् ।

सन्मतिर्महतिर्वीरो महावीरोऽन्यकाश्यपः ।

नाथान्वयो वर्धमानो यत्तीर्थमिह साम्प्रतम् ॥ ११५ ॥

सती समीचीना मतिर्यस्य स सन्मतिः । महापुराणे—

“तत्सन्देहे गते ताभ्या चरणाभ्या च भक्तिः ।

अस्तावि सन्मतिर्देवो भावीति समुदाहृत ॥”

(मय्यने पूज्यते इति महति) । महती पूजा यस्य स महतिः । विशिष्टां इन्द्रायाम्भाविनीम् ईम् अन्तरङ्गा समवसरणानन्तचतुष्टयलक्षणा लक्ष्मीं रात्यादत्ते इति वीरः । वीर इति नाम कस्माज्ज्ञानम् ? जन्माभिषेके चालवुशरीरदर्शनादाशङ्कितवृत्तेरिन्द्रस्य सामर्थ्यस्वाप्तनाथं पादाङ्गुलं मेरुसचालनादिन्द्रेण

वीरनाम कृतम् । महाभारतौ वीर महावीरः । तथा च बृहत्प्रतिक्रमणभाष्ये—

“कुमारकाले आमलक्रीक्रीडाया क्रीडतः सङ्गमदेवेन विमानस्खलनाद्भगवत्पो (जो)दनार्थं महाफटाटोपोपेतं भयानकं सर्परूपं विकृत्य वृक्षो वेष्टिनः । भगवोन्मत्तान्मत्तकादिपादन्यासं कृत्वा वृक्षादुत्तीर्णः । ततस्तेन महावीर इति नाम कृतम् ॥” अन्य्य काश्य नेत्रं पातीति अन्य्यकाश्यपः । ततः परस्तीर्थकरा नास्ति । नाथोऽन्वयो यस्य स नाथान्वयः । तथा च—

“चत्वारः पुरुवंशजा जिनवृषा धर्मादयस्ते पुनः-

नेपि श्रीमुनिसुव्रतां हरिकुले वीरोऽयं नाथान्वये ॥

जेषाः सप्तदशाधिका जिनवरा इष्ट्वाकुवशोद्भवा

प्राद्यन्माहविनाशनैकनिपुणाः सङ्गस्य सन्तु श्रिये ॥”

अथ समन्ताद् ऋद्धः परमातिशयप्राप्तं मानं केवलज्ञानं यस्यामौ वर्धमानः ।

वष्टिभागुरिरल्लोपमवायोरुपसर्गयोः ।

आप चैव हलन्तानां यथा वाचा निशा दिशा ॥”

इत्यवशब्दस्याकारलोपः । तथा ऋषिश्च प्रत्यक्षवेदी—भगवतो हि गर्भावतारादो पित्रेन्द्रादिविनिर्मिता विशिष्टा पूजा रत्नवृष्टिः स्वयं च ऋद्धिबुद्ध्यादिकं दृष्ट्वा वर्धमान इति नाम कृतम् । इह अस्मिन् पञ्चमकाले यस्य तीर्थं यत्तीर्थम् साम्प्रतम् अधुना वर्तते ।

सर्वज्ञो वीतरागोऽहन् केवली धर्मचक्रभृत् ।

तीर्थङ्करस्तीर्थकरस्तीर्थकृद्विषयवाक्पतिः ॥ ११६ ॥

नव जितेन्द्रे । ज्ञा यवबोधने । ज्ञा । सर्वज्ञः । सर्वं जानाति वेतोति सर्वज्ञः । “आतोऽनुपसर्गात्क” अप्रत्ययः । “क” यणञ्च योक्तवर्जम्” इति यणञ्भावत् आलोपः । विशिष्टा ईं तां प्रति इतः प्रातो रागो यस्य स वीतरागः । अरिहन्नाद्वज्रोहनन (स्या) भावाच्च परिप्राप्तानन्तचतुष्टयस्वरूपं सन् इन्द्रनिर्मिता-

मतिशयवर्तो पूजामर्हतीति अर्हन् । धानिस्त्यजमनन्तजानादिचतुष्टय विभूत्याय यस्येति वाऽर्हन् । त्रिकाल केवलज्ञानमस्त्यस्य केवली । जिनभर्मचक्र सहस्रायुक्त तीर्थकृदग्रे निराधारतया विहायकाले गगने गच्छत् सर्वजीवदयासूचक रत्नमयमायुधविशेष विभर्ति तद्वाऽनुभवतीति धर्मचक्रभृत् । तीर्थ द्वादशाङ्गशास्त्र करोतीति तीर्थङ्करः । तीर्थ करोतीति तीर्थकृत । दिव्यवाचाभ्यतिः दिव्यवाक्पति । तथा चोक्तम् —

“यत्सर्वात्महित न वणसहित न स्पन्दिताष्टद्वय

ना वाञ्छाकलित न दोषमलिन न आसन्नद्वयकमम् ।

शान्तामर्षविष सम पशुगणैः सकर्णैः कर्णभि-

स्तद्ध सर्वविद्. प्रनष्टविपदः पायादपूर्व वच ॥”

चेलं निवसनं वामश्रीरमम्बरमंशुकम् ।

पट्ट वस्त्र । चिह्नयते वस्यतेऽनेन चेलं चैल च । निवसत्यनेन निवसन, विवसन, वसन च । वस्यतेऽनेनाङ्ग वास । सान्तन । चिनोति उपार्जयति सारता चीरम्, चीवर च । अम्बने गच्छति शोभा-
मनेन अम्बरम् । उभयम् । अशङ्ककारयति अशुकम् । क्लीबे । कर्षट्म । आच्छादनम् । वस्त्रम् । मिचयः ।
पट, पटन, पटी । पोत । प्रावर । प्रावार । सव्यान च ।

वस्त्राद्यन्तः दिगाद्यादिसञ्ज्ञितो वृषभेश्वरः ।

वस्त्रादय वस्त्रपर्याया अन्ते दिगादयो दिक्पर्याया आगे यस्य तत्सञ्ज्ञितो वृषभेश्वर । वस्त्रादिक
नाम अन्ते दिगादिक नाम आदौ यथा — दिक्चेल । दिग्वासा । दिग्बसन । दिग्म्बर । दिग्गुकः ।
दिग्बस्त्र । काष्ठाचेल । काष्ठानिवसन । काष्ठावासा । काष्ठाचीर । काष्ठाभर । काष्ठाशुक । काष्ठावस्त्र ।
ककुचेल । ककुचनिवसन । ककुच्वासा । ककुचीर । ककुचम्बर । ककुचगुकः । ककुचबस्त्र । आशाचेल ।
आशानिवसन । आशावासा । आशाचीर । आशम्बर । आशाशुक । आशावस्त्र । दत्तकन्याचेल ।
दत्तकन्यावासा । दत्तकन्याचीर । दत्तकन्याम्बर । दत्तकन्याशुकः । दत्तकन्यावस्त्र । हरिचेल । हरिचि-
वसन । हरिद्रासा । हरिचीर । हरिदम्बर । हरिदशुक । हरिदवस्त्र । इत्यादीनि वृषभेश्वरनामानि
ज्ञातव्यानि ।

कुङ्कुमं रुधिर रक्तम्—

त्रयः कुङ्कुमे । काम्यते जनै कुङ्कुमम् । रुधिर आवरणे । रुग्णदि रुधिरम् । “तिमिरुधि-
मन्दिधिरुचिशुषिष्य किर ” । रज्यतेऽनेन रक्तम् ।

कस्तूरी मृगनाभिजम् ॥ ११७ ॥

द्रौ मृगमदे । के स्तूयते कस्तूरी । मृगनाभेर्जातम् मृगनाभिजम् । मृगनाभिज च ।

कर्पूरं घनमारं च हिमं सेवेत पुण्यवान् ।

कूप सामर्थ्य । कल्पते कर्पूर । “कूपेरप्रत्ययः । “नाम्यन्तगुणः । “कूपे” रेल ” कवच,

१ कुक्यते आदीयते कुङ्कुमम् । कुक् आदाने । “कुदकुकोनुम च” भो० उ० इति उमक
प्रत्ययो नुमागमश्च । इति गमाश्रम । कु कातीति कीरम्बाम् । २ का० उ० १२३३ ३ तथा चोक्तम्-
मेदिन्याम् ता० व० श्लो० ८६ । “रक्तोऽनुरक्ते नील्यादि रञ्जिते लोहिते त्रिषु । क्लीबन्तु कुङ्कुमे ताप्ते
प्राचीनामलकेऽस्तुजि ” । इति । ४ के शिरसि स्तूयन् प्रशस्तधायत्वेन मन्यते इत्यर्थ । विक्रमति मोगन्ध्यम
स्या इति क्षी० स्वा० । “कम गतौ” कसति गच्छति गन्धोऽन्या इति रामाश्रम । “स्वर्जपिङ्गादिभ्य उरो-
लचौ” । पा० उ० ४१०१ इत्यमर । पृषोदरादित्वात्तुट्, गौरादित्वान्डीप् च । ५ “ग्वजिऋषिमपिङ्गा-
दिभ्य उरोलौ” इति का० उ० ३१६० । ६ नाम्यन्तयोर्धातुविकरणयोगुण ” का० सू० ३।५।१ ।
७ का० सू० ३।६।१७ ।

सन्धम् । उणादयो हि बहुलम् तेन—

“कचिप्रवृत्तिः कचिदप्रवृत्तिः कचिद्विभाषा कचिदन्यदेव ।

विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति ॥”

घनस्येव सारोऽस्य घनसारः । हि गता । हिनोतीति हिमम्^२ । “^३इन्धियुधिग्याधूहिभ्यो

५ मक्” । चन्द्रसङ्गः । सिताभ्रः । हिमवालुकः ।

समालम्भोऽङ्गरागश्च प्रसाधनविलेपनम् ॥ ११८ ॥

चत्वारो रागोः । सम्यक् प्रवारेणालयते^४ समालम्भः । अङ्गस्य रागोऽङ्गरागः । प्रकर्षणं सा यते मण्ड्यने प्रसाधनम् । विलेपने विलेपनम् ।

भूषणाभरणं रुच्यम्—

१० त्रय आभरणं । तमि भूष अलङ्कारे । भूषणे मण्ड्यतेऽनेन भूषणम् । आ समन्ताद् भ्रियते शोभा धार्यतेऽनेन आभरणम् । रोचते रुच्यम् । अलङ्कारः । परिष्कारः । मण्डनम् ।

माल्य मालागुणमयजः ।

चत्वार उपमालाधान । मालैव माल्यम् । चातुर्वर्णादिव्याप्यम् । माल्यने धार्यते माला । अथवा मा लान्ति पुष्पाण्यत्र माला । स्त्रियान् । गुण्यतीति गुणः । “नाम्युपध्रीकृगृजा” क ” । सुज्यते १५ स्रक् । ‘ऋत्विग्दवृक्कमिति’ साधु ।

मेखला रमना काञ्ची ।

त्रय काञ्चयाम । मेहनस्य त्व तस्य मा लानीति निरुक्तिः । मिनीति प्रक्षिपति कामिचित्तमिति वा मेखला^१ । रमति शब्द करोतीति रसना^२ । रम कान्तो (शब्दे) सान्नोऽयं वातु । श्रोणी शोभा कचति(काञ्चते)^३ बन्नातीति काञ्चिः । ख्रियामी । काञ्चो । तनकी । कलापः । कटिसूत्रम् । मारमनम् ।

२० शिञ्जिनी^४ च ।

हेमपर्यायसूत्रकम् ॥ ११९ ॥

हेमशब्दात्सूत्रशब्दे प्रवृज्यमाने मेखलापर्यायनामानि भवन्ति । हेमसूत्रम् । अष्टापदसूत्रम् । स्वर्णसूत्रम् । कनकसूत्रम् । अर्जुनसूत्रम् । काञ्चनसूत्रम् । हिरण्यसूत्रम् । जातरूपसूत्रम् । शातकुम्भसूत्रम् । हाटकसूत्रम् । कलधोतसूत्रम् । तपनीयसूत्रम् । कार्तस्वसूत्रम् । इत्यादीनि जातव्यानि ।

२५ श्रोणीविम्बं कटीसूत्रं मानसूत्रमिवाहितम् ।

त्रय पट्टसूत्रे । श्रोण्या कट्या विम्बं प्रच्छादक श्रोणोविम्बम् । कटी सूत्रयति वेष्टयतीति

१ शा०म् १।३।१४९। अत्र कारिकारूपेण पठितः । २ हिनोति गच्छतीत्यर्थः । कपूर्स्याश्लेष-
तनस्वभावात् । हन्ति आट्टयमिति रामाश्रमः । ३ का० उ० १।५५। ४ आलभ्यते विलिख्यते इत्यर्थः ।
५ का०म् ०।२।५१। ६ का०म् ०।३।७३। ७ मन्त्र गतिं लातीति पृषोदरादित्वानमेखलेति रामाश्रमः ।
सुदु स्खलतीति हेमचन्द्रः । भीषते प्रक्षिप्यते इति स्त्री०म्बा० । ‘मित्रं खलच्चैच्च’ २।३।१७। सर० क० ।
८ अश्रुते कटिम् अश्रुनाति कामिचित्तं वेति रामाश्रमहमचन्द्रौ । ‘अरोरश्च’ इति यूगशादेशश्च । ९ “काचि
दीतिबन्धनयोः । “सर्वधातुभ्य इत्” । १० शिञ्जिनी नूपुरम् । मेखलापर्याये तत्पाठोऽयुक्तः । तदुक्तम्—
“नूपुरन्तु तुलाकोटि” पादत कटकाङ्गदे । मञ्जीर हसक शिञ्जिनी,—अभि० चि० ३।३३०।

कटीसूत्रम् । मान प्रमाणीभूत सूत्रयतीति मानसूत्रम् । केचिद् रागसूत्र पठन्ति पट्टसूत्र च ।

मदिगं मद्यमैरेयं शीघ्रं कादम्बरीमिगम् ॥ १२० ॥

प्रमत्ता वारुणी हालां मधुवागं सुरां विदुः ।

एकादश मद्ये । माद्यत्यनया मदिरा । मधिष्ठा च । मद्यतेऽनेन मद्यम् । “यमिकदिगदा त्वनुपसर्गं” । इगया ग्रामसीमायाम् सधु पेरेयम् । शेरतेऽनेन शीघ्रः । “शीघ्रो बुक्” । शीघ्रो (घो) गित्येकं पठितत्वात् शीघ्रप्रकृते क इति व्याख्यत । अथवा पीतेऽत्र जनः शेते शीघ्रः । उभयम् । तालव्यः । कुत्सित नीलमन्त्र यस्य स कदम्बरो बलदेव । तस्येय प्रिया कादम्बरी । कुत्सितमन्त्रे वात्यनया वा कादम्बरी । एति परिश्रान्त्यनया इरा । आत्मा प्रमोदयनया प्रमत्ता । आदन्त । वम्हत्यापत्य वारुणी । जहति लज्जामनया हाला । स्त्रियाम् । मधु वारयतीति मधुवाग । सुवति सूते भव सुरा । तथा द्विसन्धानमाप्ये—“अतिप्रलापभावेन समुद्रमथनान्निष्कासिता सुर सुरा ।” १०

“लक्ष्मीकौस्तुभपारिजातकसुरा धन्वन्तरिश्चन्द्रमा

गाव कामदुघाः सुरेश्वरगजो रम्भादिदेवाङ्गना ॥

अश्वः सप्तमुखः सुधा हरिधनु शङ्खो विष चान्द्रवः

रत्नानीति चतुदश प्रतिदिनं कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥

विदु कथयन्ति । मधु । आसव । परिप्लुता । स्वादुग्मा । गुण्डा । गन्धोत्तमा । माधवक । १५
माधव । कृत्य कन्या । कदय, कन्या । परिश्रुत् । तान्ति त्रियाम् । तालव्यदन्त्य । “हारहृ” । कापि-
शायनम् । गृहीकम् । मास्वीकम् ।

शुण्डामयः—

मद्यविशेषा द्रा । मुन्व(न)न्ति तृप्ति गच्छत्यनया शुण्ड (न) ने पानुमनिगम्यते वा शुण्डा” ।
स्त्रीचो । शुण्ड । आसते जनयति मदम् आसद्य । पुमि । २०

तद्विधायी शौण्डो मद्येन मद्यपः ॥ १२१ ॥

द्रा कृत्यपालके । शुण्डाया मद्ये भव शौण्ड । मद्य पिबति पाययतीति वा मद्यपः ।

सक्तोऽक्षयृतपानेषु विचित्रा शब्दपद्धतिः ।

त्रयो मद्यासक्ते । अक्षेपु घृतपु सक्त अक्षसक्त । घृतसक्त । पानेषु सक्त पानसक्त । विचित्रा नाना प्रकारा शब्दाना पद्धति अक्षिः शब्दपद्धतिर्वर्तते । अक्षशौण्ड । यत्तद्धृत । अक्षकितव । “सप्तम” २५
शौण्डै । व्याल, अधि, पट्ट, पण्डित कुशल, चपल, निपुण, स्वेत्यादि शौण्डादिराकृतिगण ।

मर्पिहैयङ्गवीनाज्यं—

त्रियः सर्पिषि । सप्त घातव सर्पन्त्यनेन सान्त सपः । क्लीबे । “अर्चिशुचिरुचिहृसुपि-
छादिछर्दिन्य इति” । मृलू गता । ह्यो गोदोहस्य विकारो हैयङ्गवीनम् । उद हैयङ्गवीन ह्यस्तनदिन-
गोदोहे मज्जतम् । उक्तं च—

“तत्तु हैयङ्गवीनं यद् ह्योगोदोहोद्व घृतम् ।”

१ का० सू० ४२।१३।२ का० उ० सू० २।३३।३ सीधुरिति दन्त्योऽप्यन्यत्र पाठः ।
४ “शुण्डा हाला हारहूर प्रमत्ता वारुणी सुरा ।” अभि० चि० ३।५६।५ शुण्डाशब्दो मदिरावाचो
पानमदस्थानमपि । तदुक्तम्—“शुण्डा हाला हारहूरम्” अभि० चि० ३।५६।५ “शुण्डा पानमदस्थानम्”
अभि० चि० ३।५७।६ शुण्डाया मदिरापानागारे भव इति रामाश्रम । “शुण्डा मदिरा पुस्त्यस्येति ज्यो
त्स्नादित्वादण्” इति हेमचन्द्र । ७ पा०म० २।१।४।८ का० उ० सू० २।४४ । ८ अम० को० २।१।५२।

तथा चाशाभरमहाभिषके—

“आयु पीयूषकुण्डे. स्मृतिमणिखनिभिः शेमुषीबल्लिकन्दै-
मैधासस्याम्बुबाह्वैर्वरफलतरुभिर्नेत्ररत्नाधिदेवैः ।

निष्ठलैर्घ्राणपेयप्रचुरमधुरिमस्नेहधूमोऽपि येषां

५

कुर्मो ह्ययङ्गवीनैः स्तपनमपनय ध्वान्तभानोर्जिनस्य ॥”

वीयते क्षिप्यते पित्तमनेनाज्यम् । तथा क्षीरस्वामिनि—“आ अञ्जनीयमाज्यम्” ।
“आङ्पूर्वादञ्जे. सञ्जयाम्” क्यप् । घृतम् । आधार. । स्पृह्यम् । याज्यम् । हविः ।

दुग्धं क्षीराऽमृतं पयः ॥१२२॥

चत्वारो दुग्धे । दुह प्रपूरणे । दुह्यते दुग्धम् । घल्लु अदने । सौत्रोऽयम् । घस्यते क्षीरम् ।
१० ‘घसेः’ किञ्च ईरमात्र । ‘गमहनअनेत्युपधालोप । ‘अघोपेध्वशिग प्रथम’ क । “शासिबसि-
घसाना च’ पत्वम् । क्स्पूर्वयोगे द्व. । “व्यञ्जनमस्व” । उणादी क्षिणु क्षणु हिसायाम् । क्षणीतीति
क्षीरम् । “क्षीरोशोगभोगम्भीरा” एते ईरप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । न ध्रियन्तेनेन अमृतम् ।
अत्रगमरकारित्वात् । पीयते वा सरस्त्वात् पयः । अमुन् । ऊधस्त्वम् । स्तन्यम् । पीयूष, पयूष च ।

उदश्चिन्मथितं तक्रं कालशेयं पिबेद् गुरुः ।

१५

चत्वारस्तक्रे । उदक्केन श्वयति वयंते उदश्चिन् । तान्तस्तालव्यमध्य । मध्यते (स्म)
मथितं घोल च । तत्रति द्वय गच्छति तक्रम् । उभयम् । “तक्र विभागभिन्न तु केवल मथित
स्मृतम्” इति धन्वन्तरि । कलश्यां गर्ग्यां भव कालशेय पिबेत् गुरु । तत्कालान् गरिष्ठम् ।
अरिष्ठम् । दण्डाहतम् ।

प्रायो वयो दशानेहा पूर्णं यौवनकं विदुः ॥ १२३ ॥

२०

तारुण्यं यौवनं च

“अष्टौ तारुण्ये । प्रकर्षण परलोकमेल्यनेन प्राय १० पुंसि । सान्तोऽपि प्रायम् । वयते
वयः” । दशति चुम्बति स्त्रीमुख दशा । न ईहते १२ चेष्टत अनेहा । अनेहसोऽस्तरमोऽङ्गिरस १३” एते.सन
प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । ईह चेष्टायाम् । पूरी अत्यायने दिवादी आत्मनेपदी । अदन्ताना प्राक् तृ(ञ्)तीयः
परस्मैपदी । पूर्यते कश्चित्, पूरयति कश्चित् । इन् चुगाद्यपेक्षया वा । “कारितं कारितलोप । उभयथा
२५ पूरि जातम् । पूर्यते स्म पूर्णः । निष्ठाक् । “दान्तग्रान्तपर्यादन्तस्वपटलुन्नज्जाश्चनन्ता” इत्यनेन
पूर्णंति निपातः । यूना भावो यौवनम् । स्वार्थे क । यौवनकम् । “युवादिस्वाङ्गावेण् । वृद्धौ । तरुणस्य

१ पा० म० ३।१।१०९। वार्तिकम् । २ पा० उ० म० ८।३२ । ३ का० म०
३।६।४३ । ४ का० म० ३।८।९। ५ का० म० ३।८।७। ६ का० म० पू० म० २५६।
७ “व्यञ्जनमस्व पर वण नयत्” का० सू० १।१।०१। ८ का० उ० म० ३।६६। ९ अत्र
प्रायादयोऽनेहोऽन्ताश्चत्वारो वयोवाचका । पूर्णपूर्वका एते चत्वारो यौवनकतारुण्ययौवनानीति त्रय ।
एव च सम तारुण्ये इति वक्तुं युक्तम् । १० प्रकर्षेण शरीरस्य क्रमेणावने गच्छति इति हे० च० । ११
शरीरस्य क्रमेण विद्यन्ति वयः, बान्धादीनि दृश्यन्ते दशा इति हेम । १२ नाहन्ति नागच्छति नाहन्यते
नागम्यते वेति रामाश्रम । “नज्याहन एह च” इति साधु । १३ का० उ० सू० ४।१।८। १४ का० म०
३।६।४४। १५ का० म० ४।६।१००। १६ हे० श० ७।१।६७। युवादेरेण इति सूत्रम् ।

भावस्तारुण्यम् । भावार्थे यण् । युनो भावो यौवनम् ।

अन्यो वार्द्धीनः स्थविरो मतः ।

त्रयो वृद्धे । अन्ते भवोऽन्यः । वृद्धे नियुक्तो वार्द्धीनः^१ । तिष्ठतीति स्थविर^२ । गति-
भङ्गात्मतः कथितः । प्रवयाः । यातयाभः । दशमीभ्यः । जरन् । जरठ । जीर्णः । वृद्धः ।

वशोऽन्वयोऽन्ववायः स्यादाम्नायः संततिः कुलम् ॥ १२४ ॥

पङ् वशे । उश्यते काम्यते जनेन वंश^३ । पु सि । अन्वयते सन्ततिरान्वयः^४ । अन्ववैत्य-
पत्यमत्रान्ववाय । आम्नायते आम्नाय^५ । सम् सम्यक् प्रकाशेण तनोति विस्तारयतीति सन्तति^६ ।
सन्तनन वा सन्तति । कु (को) लति सर्व भव्यत्र कुलम् । उभयम् । गोत्रम् । अभिजन ।

ओघो वर्गश्च सन्तानः

त्रय समूहे (वशम्यावान्तरवर्गभेदे) । ओढ्यते ओघः^७ । वृष्यते विजातीयेन पृथक् क्रियते^{१०}
वर्ग । सन्तन्यते सन्तानः । विक्रम् । निकाय । निवहः । विमरः । प्रज । पुञ्ज । समूहः । सन्चयः ।
समुदय । समुदायः । सार्थः । यूथ । निकुरम्ब । कदम्बम् । पृग् । राशि । चय । समवायः । मण्डलम् ।
चक्रवालम् । जालम् । स्तोम । गृह ।

काव्यमेव कविस्थितिः ।

द्वौ काव्ये । कवेभाव काव्यम् । तथा च यशस्तिलके—

“दुर्जनानां विनोदाय बुधानां मतिजन्मने ।

मध्यस्थानां न मौनाय मन्ये काव्यमिदम्भवेत् ॥”

कवीनां स्थितिः कविस्थितिः ।

पद्मिबर्गं प्रारभ्यते श्रीमदमरकीर्तिना—

हमो मरालश्चक्राङ्गः

त्रयो हसे । विम हन्ति खण्डयति, चारुगत्या हन्ति गच्छति वा हसः । हन्ते^९ स । मरं
मलं मलमण्डितनडागमियति गच्छतीति मरालः । चक्रमङ्गति चक्राण्यङ्गानि वा यस्य चक्राङ्ग ।
मानसार्का । श्वेतच्छद ।

हंसवाहः सनातनः ॥ १२४ ॥

हंसशब्दाद् वाहशब्दे प्रयुज्यमाने व्रक्षणे नामानि भवन्ति । हंसवाहः । मरालवाहः । चक्राङ्ग-
वाह । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

मयूरो बर्हिणः केकी शिखी प्रावृषिकस्तथा ॥

नीलकण्ठः कलापी च शिखण्डी—

अष्टौ मयूरे । मया रौति मयूर । मीनाति वाऽहीन् मयूर । उणादौ । मीन् हिंसायाम् । मयते

१ अत्रान्यत्रप्रमाणं नोपलब्धम् । २ यौवनमतिक्रम्य तिष्ठतीति हं० च० । “अजिरशिशिरेत्यादि
पा० उ० १।५३ इति किरप्रत्ययो वृगागमो ह्रस्वश्च । ३ “वश कास्तौ” घञ् । नुम् । वन्यते कन्यतेऽजनेनेति
स्वामी । ४ अन्ववेति अन्वीयते । अन्वय । “इण् गतो” । अच् । इत्यन्यत्र ५ अत्र प्रमाणम्—“आम्नायः
कुल आगमे उपदेशे” इति हैम । ३।५।११ । ६ सन्तन्यते सम्यग्विस्तारयतीति रामाश्रम । ७ आ ऊह्यते ।
ऊह वितके । न्यङ्क्वादिवाद् हस्य घ । ८ आ० १ श्लो० २५।९ का० उ० सू० ८।५। ‘वृष्ट्वादिह-
निमित्तिकस्य शिकपेभ्यः सः” । इति ।

इति मयूर । “मयते रुरो खौ” । बर्हमस्यास्ति बर्ही । “कल” बर्हान्यामिनच्” । केका वाणी अत्यस्य केकी । शिखास्त्यस्य शिखी । प्रावृषि वर्षाकाले प्रयुक्त प्रावृषिकः । नील कण्ठे यस्य स नीलकण्ठ । कलापोऽस्त्यस्य कलापी । शिल्पण्डोऽस्त्यस्य शिल्पण्डो । प्रचलाकी । सर्पाशन । शिखावल । व्याम-कण्ठ । चन्द्रकी । शुक्रापाद् ।

५

तत्पतिगृहः ॥ १२६ ॥

तस्य पतिस्तत्पतिगृह कार्तिकेय । मयूरशब्दात् पतिशब्दे प्रयुज्यमाने कार्तिकेयपर्यायनामानि भवन्ति । मयूरपति । बर्हिणपति । केकिपति । शिल्पिपति । प्रावृषिकपति । नीलकण्ठपति । कलापि-पति । शिल्पण्डपति । इत्यादीनि ज्ञतव्यानि ।

वरटा वारली हंसी-

१० त्रयो वसभार्यायाम् । वर विशिष्टमटति गच्छति वरटा । वरलस्य भार्या वारली । स्वार्थे ऽणि । वरला च । हन्तीति हसी ।

कोक ईहामृगो वृकः ।

अजादिक कोकते आदत्ते कोकः । ईहा मृगेष्वस्य ईहामृगः । ईहा मृगयते वा ईहामृगः । कुक वृक आदाने । वर्कते ऽवृकः । अग्न्यश्वा ।

१५

हरिणो मृगश्च पृषतः-

त्रयो मृगे । गीतेन द्वियते हरिणः । व्यापैर्मुग्यते मृगः । पृषति मिचति मृगेण पृषत । तान्तोऽपि पृषत् । एण । कुङ्ग । कुङ्गम । सारङ्ग । ऋश्य । रिश्य । ऋष्यश्च । रुह । न्यहृ । वात-प्रमी । शम्बर । शबल । कुण्णमार । कलमाराऽपि ।

तदङ्कः शर्वरीकरः ॥ १२७ ॥

२०

हरिणपर्यायदङ्कपर्याये प्रयुज्यमाने चन्द्रस्य नामानि भवन्ति । हारिणाङ्कः । मृगाङ्कः । पृषताङ्कः । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

पन्नगोऽहिर्विषधरो लेलिहानो भुजङ्गमः ॥

नागोऽगौ फणी मर्षः-

नव सर्पे । पन्नगः न गच्छतीति पन्नगः । नभ्राण्णवादिस्त्यस्योपलक्षत्वात् । अहन्त्य (तेऽ) २५ हि । “अहि” कर्म्योर्नलोपः” नलोपः । विष धरति विषधरः । लिलेहेति लेलिहानः । भुजाभ्या गच्छति भुजङ्गमः । न गच्छतीति नागः । उरसा गच्छतीत्युरगः । “उरो विहायतो रुरविहा च” । उरो विहायभोरुपपदयोगमन् सजाया खो भवति तयोश्च उरविहो यथास्तस्य भवतः । फणाऽस्त्यस्य फणो ।

१ का० उ० सू० ६।४० । २ पा० ५।२।१२२ वार्तिकम्—“कलबर्हान्यामिनच्” । ३ ईहया महताऽयासेन मृगयते आन्वेष्टीक्रियते इत्यन्यत्र । ४ वर्कतेऽजादिकमादत्ते, वृणोति वा वृकः । ५ रामाश्र-मस्तु—“पृषता विन्दवो विन्दुसदृशलक्षणस्य पृषतः । अर्श आश्रच् इत्याह । पृषतो विन्दुचित्र इति स्तो० स्वा० । ६ पन्न पतित यथा स्य तथा गच्छतीति रामाश्रमः । सर्वपन्नयोरिति वार्तिकन ड । ७ का० उ० सू० ४।४। किन्त्ययो नलोपश्च । अहि गतो । अहति वेगेन गच्छति । ८ मृश लेदीत्येवशीलो लेलिहानः । लिहेर्यङ्लुगन्तात्—“ताच्छीन्त्यवयोवचनशक्तियु चानश्” पा० सू० ३।२।१२६ इति चानश् । ९ भुजेन कीटिल्येन गच्छति, भुज इव गच्छति इत्यन्यत्र । “धामश्च” का० सू० ४।३।८५ इति । “विहङ्गवुरङ्ग भुजङ्गाश्च” का० सू० ४।३।४८ इति खचि, डे च, भुजङ्गम, भुजङ्ग इति । १० नगे पर्वते भवो नागः । अथवा न गच्छतीत्यग, न अग, नाग इत्यन्यत्र । ११ का० सू० ४।३।४६ ।

सर्पति गच्छति सर्पः । पृदाकु । भुजग । आशीविष । चक्री । व्याल । सरीसृप । कुण्डली । गूढपात् ।
द्विरसन । चक्षुःश्रवा । काकोदर । दर्वीकर । दीर्घपृष्ठ । दन्दशूक । विलेशय । भोगी । जिह्वग ।
पवनाशन । गोकर्णः । कुम्भीनन । कन्चुकी । राजसर्प । भुजङ्गसुक । दृक्श्रुति ।

तद्वैरी विनतात्मजः ॥ १२७ ॥

तस्य पन्नगस्य वैरी शत्रु विनतात्मज गरुड । पन्नगवैरी । अहिरिपुः । विपन्नरागतिः ।
लेलिहानरिपु । भुजङ्गशत्रु । नागद्विष्ट । भुजङ्गसपत्न । कण्डिष्ट । सर्पहृत् । सर्पद्वेषी । इत्यादीनि
गरुडनामानि स्युः ।

सुपर्णो गरुडस्ताक्ष्यो गरुत्मान् शकुनीश्वरः ।

इन्द्रजिन्मन्त्रपूतात्मा वैनतेयो विपाशयः ॥ १२८ ॥

नव गरुडः । शोभन स्वर्णमय पर्णमस्य सुपर्ण । तथा च—“सुपर्णो” हेमपञ्चत्वात् ।^१ डीट् १०
विहायसा गतो । गरुपूर्व । गरुडिन् पक्षैर्द्वयते गरुडः ।

“वर्णागमो गवेन्द्रादो मिहे वर्णविपर्ययः ।

पोडग्रादौ विकारस्तु वर्णनाशः प्रपोदरे ॥”

इत्यनेन श्लोकेन गरुडशब्दस्य तकारस्य लोपः । लत्वे गरुल । गरुडश्च । तृतीयस्यापत्य ताक्ष्यः ।
गरुत पक्षा सन्त्यस्य गरुत्मान् । शकुनीना विहङ्गानामीश्वर स्वामी शकुनीश्वरः । इन्द्र जितवान्
इन्द्रजित् । मन्त्रेण वृत्त पवित्र आत्मा यस्य स मन्त्रपूतात्मा । विनताया अपत्य वैनतेय । विप
क्षयतीति विपक्षय । काश्यपनन्दन । विष्णुरथः । पन्नगाशन । नागान्तकः ।

समिन्द्रियं हृषीकं च श्रो (स्रो) तोऽक्षं करणं विदुः ।

पांडिन्द्रिये । स्वर्गमोक्षो न्वनति विदारयतीति खम्^३ । इन्द्रस्थात्मनो लिङ्गमिन्द्रियम्^४ ।
हृष्यति हृषे प्राप्नोति विषयेषु शब्दस्पर्शरूपरसगन्धेषु हृषीकम् । शृणोत्यनेन सान्तम् श्रोत^५ ।
तालव्यादिः । अक्षणोति विषय व्याप्नोति अक्षम् । क्रियते मनोऽनेन विषयेषु करणम् । शब्द
[विपर्यय] । कम्बलम्^६ ।

पुण्यं भाग्यं च सुकृतं भागधेयं च सत्कृतम् ॥ १२९ ॥

पञ्च पुण्ये । पुण्य शोभे । पुण्यति शोभने पवते वा पुण्यम् । “पञ्चन्यपुण्य” । भगस्यैश्वर्या
दर्शित [कारणम्] भागम् । भागमेव भाग्यम् । “भाग्याच्च” । सुदृष्ट क्रियते सुकृतम् ।

“ ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः ।

वैराग्यम्याथ मोक्षस्य पण्णा भग इति स्मृतिः ॥”

१ क्षी० स्वा० मा० १।१।२९ । २ शा० सू० २।२।१७२ । अत्र कारिकारूपेण पठितः ।
३ खन्वत, तत्तदिन्द्रियाधिष्ठानस्य खानसदृशत्वदर्शनात्, खम् । ‘खनु अवधारणे’ । इत्यन्यत्र ।
४ इन्द्रियमिन्द्रलिङ्गमित्यादिना घच् । धर्म्येय । ५ तालव्यश्रोतशब्द कर्णेन्द्रियवाचकः । दन्त्यस्मोतशब्द
इन्द्रियवाची, सोऽत्र पठितव्यः । तदुक्तम्—“हृषीकमन्त्र करणं स्रोतः स्य विषयोन्द्रियम्” अ० चि०
‘स्रोत इन्द्रिये निम्नगारये,’ इत्यमरः ३।३।२३३ । ६ नात्रान्यत्प्रमाणमुपलब्धम् । क्लिष्टसमाधान-
प्रकारान्तु—कमिति सुखार्थकमव्ययम्, तस्य बलं साधनमिन्द्रियमिति । ७ पुण्यतीति पुण्य । “पुण्यं शुभे
कर्मणि । इगुपधेति कः । पुण्यमर्हति पुण्यम् । “तदर्हति” । पा० सू० ५।१।६३ । इति यत् । पुनाति
पवते वेत्यन्यत्र । ८ का० उ० सू० ३।४ । ९, श्लोकोऽयं विष्णुपुराणस्थत्वेनोल्लिखितः अम० को०
क्षी० स्वा० भाष्ये १।१।१३ ।

भगस्येद भाग भागमेव भागधेयम् । 'नामरूपभागेभ्यो धेयः' १५ । सत्समीचीन क्रियते (स्म)
सक्तम् ।

अधमंहश्च दुरितं पाप्मा पापं च किन्विषम् ।

वृजिनं कलिलं ह्येनो दुष्कृतम्

- ५ दश पापे । न जहाति प्राणिनम् अधम् ३ । अहति गच्छति नरकादिकमनेन अ ह् । सान्तम् ।
दुरितम् ३ । दृस् सौत्रोऽय धातु । पाति सुगतेर्वारयति पाप्मा । पु सि । "सर्वधातुभ्यो मन् ।" पाति सुगते-
र्वारयति पापम् । "पातेः पः" । निन्द्यत्वेन कल्पते मुहुर्महः, किरति सङ्घति वा किल्बिषम् । "किल्बिषा"
व्यथिषौ" एतौ टिप्प्रत्ययान्तौ निपात्येते । वृज्यतेऽपनीयतेऽनेन वृजिनम् ४ । कलयति कलिलम् ५ ।
"कलेरिलः" । एति गच्छति [सुखम्] अनेन एने । सान्तम् । दुष्क्रियते स्म दुष्कृतम् । तम । कल्पम् ।
१० कल्मषम् । अशुभम् । प्रतिकिष्टम् । पङ्कम् । किण्वम् । मल । अनेकार्थे ।

तज्जयी जिनः ॥ १३० ॥

तस्य पापस्य जयी तज्जयी । अघजयी । दुरितजयी । पापत्रयी । इत्यादीनि जिनस्य नामानि भवन्ति ।

सदनं सद्य भवनं धिष्यं वेदमाथ मन्दिरम् ।

गेहं निकेतनागारं निशान्तं निवृतं गृहम् ॥ १३२ ॥

१५ वमत्यावसथावासं स्थानं धामास्पदं पदम् ।

निकायं निलयं पस्त्यं शरणं विदुगलयम् ॥ १३३ ॥

- चतुर्विंशतिर्ह । जना मीदन्त्यत्र सदनम् । क्लीबे । मीदन्ति सुख गच्छन्त्यत्र सद्य । 'सर्व-
धातुभ्यो मन्' प्रायेण । भवति भूतान्यत्र भवनम् । धिष शब्दे । देधेष्टि शब्द करोत्वत्र धिष्यम् ।
"धिषेर्न्यक्" प्रत्ययो भवति । विशन्त्यत्र वेदम् । नान्तम् । मायन्ति जना अत्र मन्दिरम् १ । स्त्री-
२० क्लीबे । मन्दिरा । गेह सौत्रा निवारणग्रहयोः । गेहति शीतवातातपादिक निवारयतीति गेहम् । गृह्णाति
वा गेहम् । 'गेह' 'त्वक्' । सुख निकितन्ति जानन्त्यत्र निकेतनम् । अद्गन्ति गच्छन्त्यत्र आगारम् २ ।
अगार च । निशाम्यन्त्यत्र निशान्तम् ३ । निव्रियते आच्छाद्यते निवृतम् । गृह्णाति नरेणोपाजित धन
गृहम् । वसन वसति । आवसन्त्यत्र जना आवसथम् । आ समन्तादुपयतेऽत्रावासः । स्थीयते जनेनात्र
स्थानम् । दधाति धनादि धाम । नान्तम् । अदन्त च धामम् । क्लीबे । आस्प(प)यतेऽत्रास्पदम् ४ । पद्यते
२५ गम्यते पदम् । निवीयतेऽसौ निकायः । "शरीरनिवामयो कश्चिद" घञ् । निलीयते आश्लिष्यते (अत्र)
निलयम् । पसि सौत्रो निवासे । जना पमन्ति वसन्त्यत्र पस्त्यम् ६ । वस्ता वासे माधु वस्त्यम् । वस्ती

१ पा० सू० ५।४।३५ ।वार्तिकम् । २ अङ्घ्रते गच्छति दानादिनाऽधम् । "अघि गतो" ।
पचाद्यच् । आगमशास्त्रस्यानित्यत्वाच्च नुम् । ३ दृष्टमिति गमनमनेनेति रामाश्रम । ४ का० उ० सू०
२।५५। ५ "किल्बिषाव्यथिषौ" का० उ० सू० १।२२। ६ 'वृज्जो वर्जने' । वृजे किञ्चेतीनच् । वृज्यते
वृजिनमित्यपि । ७ कलयति जनपति दुःखमिति शेष । ८ का० उ० सू० ४।२८ । ९ का० उ० सू०
३।६० । १० "तिमिरधिमदिमदिचन्द्रिधिरुचिशुषिभ्यः किरः" का० उ० सू० १।२३ । ११ का० सू०
४।२।६० । इति निर्देशाद् गेह इति निपातः । १२ आ अङ्घ्रति अङ्घ्रयते वाज्र बाहुलक आरप्रत्यय । 'अघि
गतौ' आङ्पूर्व । नलोपश्च । १३ निशाया अन्तोऽत्रेत्यन्यत्र । निशायाय अम्यते गम्यते स्मेति रामा-
श्रम । "अम गतौ" । कः । १४ "आस्पद प्रतिष्ठायायाम्" पा० सू० ६।१।१८६ । इति मुट् । १५ का० सू०
४।५।३५ । १६ अपस्त्यायन्ति सङ्घीभवन्त्यत्र पस्त्यम् । "स्त्यै शब्दमङ्घयोः" ।

वासे साधु 'वस्त्यमिति श्रीभोज. । शीर्यते हिंस्यते शीताद्यत्र शरणम् । आलीयते जनेनाप्राप्तयः । पुति ।
चिवुः कथयन्ति । पुरम् । कुलम् । सत्स्यायः ।

खेयं खातं च परिखा

अथ परिखायाम् । खनु अवदारणे । खन् । खन्यते खेयम् । 'आखनोरिच्च' २१ यप्रत्ययो
नकारस्येकार । '१३ अवर्णइवर्णे ए' अवर्णे वर्णयोरेकार. । खन्यते [स्म] खातम् । परिखायते परिखा । ५

वप्रं स्याद् धूलिकुट्टिमम् ।

द्वौ प्राकारे । शुल्कादिक वपन्यत्र वप्रम् । धूल्या कुट्टिम धूलिकुट्टिमम् । बद्धभूमिकम् ।
धूलिकुट्टिमम् ।

प्राकारः परिधिः सालः

अथो द्वौ । प्रकुर्वन्ति तमिति प्राकार ४ । 'अकर्तरि च' कारके सञ्ज्ञायाम्' वप् । परि १०
समन्ताद् धीयते परिधिः २ । इयति तनूकराति स्वनगरपर्यंत साल सालं ० च ।

प्रतोली गोपुराकृतिः ॥ १३४ ॥

द्वौ विशिखायाम् । प्रविशन् जन प्रतोत्यते परिमीयतेऽत्र प्रतोली । गोप्यते गच्यते गोपुर
तस्याकृति गोपुराकृति ८ ।

प्रासादसौधहर्म्याणि

अथ साधे । प्रासादश्च सौध च हर्म्यं च प्रासादसौधहर्म्याणि । प्रसीदन्त्यस्मिन्नयनमनासीति १५
प्रासाद । 'अकर्तरि च कारके सञ्ज्ञायाम्' । सुवाया लिप्ताया भव 'सौधम् । चन्द्रकरान् हरति
हर्म्यम्' १ ।

निर्व्यूहो मत्तवारणः ।

द्वौ अशश्रये । निर्व्यूह्यते निर्व्यूह । मत्ता प्रमादिन पतन्तो वार्यन्तेऽनेन मत्तवारण । २०

वातायनं मतालम्बम्

द्वौ गवाक्षे । वातस्यायन मागो वातायनम् । उभयम् । मतमभीष्टम् आलम्बम् मतालम्बम् ।
जालम् । जालम् ।

आलम्ब्यसुखमासनम् ॥ १३५ ॥

राजामवष्टम्भे द्वौ । आलम्ब्यस्य अवलम्बनस्य सुखम् आलम्ब्यसुखम् । सुखेनास्यते आसनम् । २५

समः सवर्णः सजातिः सदक्षः सदशः सदक् ।

तुल्यः सधर्मरूपश्च तुला कक्षोपमा विधा ॥ १३६ ॥

१ यद्यपि मूले वस्त्यशब्दो नास्ति, तथापि पाठभेदात् "निशान्तवस्त्यमदनम्" २।२।५।
इत्यमरे वस्त्यशब्दपाठात् टीकाकृता तदपि विगृहीतम् । २ का० सू० ४।२।१२। ३ का० सू० १।२।२।
४ प्रक्रियते इति कर्मणि घन् । इति रामाश्रम । ५ का० सू० ४।५।४। ६ परितो धीयते वेष्ट्यते
नगरमनेनेति रामाश्रम । ७ दन्त्यपाठे तु मल्यते सालः । "सल गतौ" । घन् । ८ पुग्वास्तु गोपुर
भट्टरक्षितम् । तस्याकृतिरिवाकृतिर्यस्यास्तस्यदशीत्यर्थ । ९ का० सू० ४।३।४। १० सुधया लिप्त सौधः ।
शेषे ण् । ११ हरति मनासि हर्म्यमित्यन्यत्र । प्रासादसौधहर्म्याणामत्राविशेषेणोपादानम् । पर तद्विशेषो
न विस्मर्त्तव्य । तदुक्तम्—“हर्म्यादि धनिना वास प्रासादो देवभूभुजा । सौधोऽस्त्री राजमदनम्”
२।२।१०। इत्यमरः ।

५ 'एकादश समाने । समान मातीति' समः । समान सदृशो वर्णोऽत्य सवर्णः । समाना जातिः अस्य सहाति । समान इव दृश्यते सदृक्षः । "समानान्ययोश्च" सकृत्प्रत्यय । शस्य च पत्वम् । "षट् ४ कस्ते" षस्य कत्वम् । "कपयोगे" क्त्वा । समान इव दृश्यते सदृशः । "समानान्ययोश्च" टकृत्प्रत्यय । अमात्र । कानुबन्धत्वादगुणनिषेधः । टानुबन्धत्वाद्वादी पठ्यत । "दृक् ५ दृश" इति समानस्य सभावः । समान इव दृश्यते सदृक् । "समानान्ययोश्च" क्तिप् । तुलया सम्मितस्तुल्यः । समनो धर्मो यस्य समधर्मः । समान रूप यस्य स सरूपः । "रूपनामगोत्रस्थानवर्णवधोवयस्सु" इति समानस्य सादेशः । तोलन तुला । "तोलेष्व" अङ्प्रत्ययः । आकाररयाकारश्च । कपति कक्षा । उपमा । विधा । प्रख्य । प्रकाश । प्रतिम । मन्त्रिमः । प्रकारः ।

विन्मान्यो विद्यमानश्च गुरुस्थानाम्बुजाननाः ।

१०

सिंहादीनि च पर्यायमुपमानेषु योजयेत् ॥ १३७ ॥

योजयेत् जोडयेत् । पर्यायं विशेषणम् उपमानेषु । विस्म । विस्मवर्णः । विस्म-जातिः । विस्मदृक्षः । विस्मदृशः । विस्मदृक् । वितुल्यः । विस्मधर्मः । विस्मरूपः । वितुल्यः । विस्मधर्मः । अनेन प्रकारेण मान्यविद्यमानगुरुस्थानाम्बुजाननासिंहादिशब्दा उपमानेषु प्रयोजनीयाः ।

व्यपदेशो निभं व्याजः पदं व्यतिकरश्छलम् ।

१५

छन्न

सम कैतवे । व्यपदेशेन व्यपदेशः । पुमि । निर् अतिशयेन भाति निभम् । व्यज्यते व्याजः । पुमि । पद्यते गम्यते कैतवेन पदम् । व्यतिकरण व्यतिकरः । छलति 'छलम् । क्लोवि छादयति छन्नम् । नान्तम् । क्लीबम् । कैतवम् । कपटम् । कूटम् । उपाधिः । मिषम् । लज्जयम् ।

वृत्तान्तमुत्प्रेक्षा शब्दमन्यं च निर्णयेत् ॥ १३८ ॥

२०

वा १ वार्तायाम् । वृत्तस्य चरितस्थान्तो वृत्तान्तः । उत्प्रेक्षणम् उत्प्रेक्षा । वार्ता । प्रवृत्तिः । उदन्तः ।

१ अत्र समाख्य सरूपान्ता नव समाने । तुलाकक्षोपमा विधा इति चत्वारस्तुलायामिति पार्यव्ययेन वक्तव्येऽपि सदृशाऽभिप्रायेण तदाह । कचिदभिधेति पाठः । परन्तु तुलार्थकविधाशब्दोऽत्र युक्तः । एव च त्रयोदश इति वक्तव्यम् । अभिधापाठे तु "उपमाभिधा" इत्यनयोस्त्वमावाचकत्वे मति "एकादश" इति सङ्गच्छते । २ मकारे परे समानस्य सादेशविधायकवचनाभावात्समान मातीति विग्रहश्चिन्त्यः । 'सम वैकल्ये' समति वैकल्य करोतीति सम । समः समस्य वैकल्य करोत्येव । पचाद्यच् । ३ "कर्मणु पमाने त्यदादो दृशदृक् नको च" का० सू० ४।३।७५। अत्र वृत्तिः । ४ का० सू० ३।८।४। ५ का० सू० १०।२५६ । ६ "समानान्ययोश्चेति वक्तव्यम्" इति वार्तिकरूपणोपलभ्यते । १।२६०। काशिकायाम् । कातन्त्रसूत्रन्तु नैनादृशमुपलब्धम् । वृत्तिरपीदृशी काऽपि नास्ति । काशिकाया टीकावचनसाम्येऽपि प्रत्ययस्वरूपसाम्य नास्ति । ७ "दृगदृशदृक्षेण समानस्य स" का० सू० ४।६।६५। ८ का० सू० ४।२।७५। वृत्तिः । ९ "व्योतिर्जनपदरात्रिनामिनामगोत्ररूपस्थानवर्णवधोवचनवस्तु" इति पा० सू० ६।३।८५। १० वाचनिक नैतत् । अनुलोपमाभ्यामिति ज्ञापितमिति प्रतिभाति । ११ व्यपदिश्यते व्यपदेशोऽतद्रूपस्य ताद्रूप्यम् । १२ नि नितरा तदिव भाति निभम् इत्यन्यत्र । १३ व्यजन्ति विज्ञापन्ति अनेन व्याजः । "अत्र गतिद्वेषणयो" । घञ् । १४ छ्यति छिनत्ति वस्तुतन्वमनेनेति वा । छो छोदने । क्ल प्रत्ययः । १५ छाद्यते रूपमनेन छद्म । मनिन् । ह्रस्वः । "छद् अपवारणे" । चुगादिः । १६ लज्ज शब्दोऽप्ययम् । १७ वृत्तोऽनुस-धानीयो गवेषणीयोऽन्तः समातिर्यस्येति रामाश्रमः ।

व्रातः^१ पूगः समाजश्च समूहः सन्ततिव्रजः ।

व्यूहो निकायो निकुरो निकुरम्भं कदम्बकम् ॥ १३६ ॥

ओघः समुदयः सङ्घः मङ्घातः समितिस्तति ।

निचयः प्रकरः पङ्क्तिः

विशतिस्समूहः । वृणोति ह्यादयति व्रातः^२ । पूज्यते पूयते वा पूगः^३ । सवीयते समाजः^४ । घञ् । समूह्यते सम्यग् दौक्यते समूहः । सतन्यते सन्ततिः^५ । वज्रन्त्यत्र व्रजः । उभयम् । विशेषेण उह्यते व्यूहः ।^५ निचीयते ण्मा निकायः । कायश्च । निकीर्यते निकरः । समन्तान्निकुरन्ति^६ वदन्ति (छिन्दन्ति) निकुरम्भः । कुत्सितम् अम्बते कदम्बम् । स्वार्थे के कदम्बकम् । ङो नलीवे । उह्यते ओघः^७ । “न्यङ्क्वादीनां” हश्च घ ।^८ समुदीयते ण्म समुदयः^९ । समुदायश्च । सहन्यन्ते ऽस्मिन्नवयवा सङ्घः । सहन्यते सघातः । हन्नेर्घ । इण् गतोः समपूर्वः । समयन समितिः । स्त्रिया कि । तनन तति । निचीयते ण्मा निचयः ।^{१०} उच्चय । प्रचय । सञ्चय । प्रक्षिपते प्रकरः । पचि विस्तारवचन । पञ्च । उटनुग्रधाना धानुना नलीपो नास्तीति । पञ्चन पङ्क्तिः । स्त्रिया कि ।

पशूनां समजो व्रजः ॥ १४० ॥

पशूनां व्रजः समूहः समजः कथ्यते । अज क्षेपणे । अज समपूर्वः । समजन समजः । ‘एमुदोरज पशुपु’^{११} अल्ल ।

१५

समीपाभ्याममासन्नमभ्यर्णं सन्निधिं विदुः ।

अविदुं च निकटमवलग्नमनन्तरम् ॥ १४१ ॥

नव समीपं । समानोति समीपम्^१ । अभ्युपेत्य चाभ्यर्णं अभ्यासः । घञ् । आसद्यते स्म आसन्नम् । अर्धं गतो याचने च । अर्धं अभिवृधः अभ्यर्तविभम् अभ्यर्णः । निष्ठात् । “सामीप्ये ण्मे”^२ नेट् । ढाह^३ “स्य च” टकारतकारयोरन्तवम् । “प्र०ः”^४ —धातोर्नकारस्य णत्वम् । “तवर्गस्य”^५ निष्ठा-^{२०} नस्य णत्वम् । सन्निधीयते सन्निधिः । अ(व)विदुर्नोतीति अविदुर्म । “दुनोते दीर्घश्च”^६ दुनोतेर्ग प्रथमो भवति दीर्घश्च । टु उपताप । निकटत निकटम् । (नि)नान्ति कटोऽप्येति व निकट । कटे वर्पाऽवरणयोः । अवलगति (स्म) अवलग्नः । न अन्तरम् अनन्तरम् । सनीडम् । समर्थादम् । आगन् । सदेशम् । उपक-

^१ चेतनाचेतनसर्वसमूहे व्रातादयो विशतिशब्दा प्रयुज्यन्ते । ओघो वर्गश्च सन्तान इति वशस्यावान्तरवर्गभेद इति द्रष्टव्यः । परन्तु व्यवहारे प्रयोगमाङ्ग्यमपि दृश्यते । २ “वृज् वर्गो” । व्रातक् प्रत्ययः । अन्यत्र तु व्रत्यते एकस्मिन् राशौ नियम्यते इति मुण्डमिश्र इति ण्यन्ताद्व्रतेर्घञ् । व्रातच्छनोर्गिति निर्देशाद् दीर्घः । ३ पूज्यते राशित्वेन मन्यते, पूयते जनसमुदायान् राशिभेदेन निर्वाच्यते वा पूगः । “छापूर्लडिभ्य क्ति” । उ०सू० १२८१ इति ष्ट पूजो वा किद् ग प्रत्ययः । पूगयते पूगसातुत्वे घञि कृतेऽपि स्थानिवत्त्वेन ण्यन्तात्कुत्व ट्स्वाभ्यम् । ४ “अज गतित्तेपण्यो” । घञ् । ५ “कुर् छेदने । षाह-लकादम्बच् । अस्यांत्वे निकुरम्भ इत्यपि । ६ आहपूर्वाद्गृह्यतेर्घञ् । “ऊह वितर्के । ७ का० सू० ४१६१७ । ८ सम-उद्पूर्वक “इण् गतोः” इण्धातुः । अलि समुदयः । ९ “समुदो-र्गणप्रशसया” का०सू० ४१५१६४ इति हन्तेर्ङप्रत्ययो धादेशश्च । १० का०सू० ४१५१५१ । ११ सङ्गता आनोऽस्मिन्निति विग्रहे समास । अचूस्समासान्तः । “द्वयन्तरूपसर्गेभ्योऽप ईत्” इतीकार । उपनारादभ्यर्णमपि समीपम् । १२ का० सू० ४१६१७ । १३ का० सू० ४३११०२ । १४ का० सू० २१४४४ । १५ “तवर्गस्य षट्बर्गाद्वर्ग” का० सू० ३१८१५ । १६ का० उ० सू० ६१५ ।

७८। अन्वयम् । सन्निकटम् । आसन्नम् ।

जित्या हलिर्हलं सीरं लाङ्गलम्

पञ्च हले । जि जये । जि । जीयते जित्या । “जयतेर्हली क्यवेव” क्यप् । “घातोऽन्तोऽन्त-
पानुबन्धे ।” “ऽस्त्रियामादा” । हलति हलि । महद्बल हलिरुच्यते । भूमि हलति विलिलति हलम् ।
५ सीयते बध्यते वरत्रया सीरम् । लङ्गति भूमि गच्छति लाङ्गलम् ।

तत्करो बलः ।

हलपर्यायतः करपर्यायेषु बलभद्रनामानि भवन्ति । जित्याकर । हलिकरः । हलकरः । सीरकर ।
लाङ्गलकरः । हलपाणिः । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

रेवतीदयितो नीलवसनः केशवाग्रजः ॥ १४२ ॥

१० प्रयो बलभद्रे । रेवत्या दयितो भर्ता रेवतीदयितः । नील कृष्ण वर्ण वसन यस्य स
नीलवसन । केशवस्याग्रजः केशवाग्रजः । कालिन्दीकर्षण । बल । प्रलम्बघ्न ।

अर्जुनः फाल्गुनो जिष्णुः श्वेतवार्जा कपिध्वजः ।

गाण्डीवी कामुकी मध्यमाची मध्यमपाण्डवः ॥ १४३ ॥

वृषसेनः मुनिर्मोको दैत्यारिः शक्रनन्दनः ।

१५ कर्णशूली किरीटी च शब्दभेदी धनञ्जयः ॥ १४४ ॥

ममदशार्जुने । अर्जुनं सज्जं अर्जने । अर्जति (कीर्तिम्) अर्जुनः । “ऋकृतृवृजृयमिदार्जिर्जिन्ध उन् ।
फल निपन्नौ । फलतीति फाल्गुनः । “पिण्डफाल्गुनो” एतो उन्प्रत्ययान्ता निपात्येते । जयतीत्येव
शीलो जिष्णुः । “जिषुवो ऋक्” । श्वेता वार्जिनो यस्य स श्वेतवार्जा । कपिर्वानरो त्वजे यस्य स
कपिध्वजः । गा जीवनीत्येवशालो गाण्डीवी । कामर्क वतुरस्तीत्ययं कामुकी । मध्ये माचयतीति
२० मध्यमाची । मध्यमश्चासौ पाण्डवः मध्यमपाण्डवः । युधिष्ठिरमीमयो सहदेवनकुलयोर्मन्त्रार्जुनः,
तेन मध्यमपाण्डवः कथ्यते । वृष सिनोति व नातीति वृषसेनः । मुनिमुच्यते शत्रुभिः मुनिर्मोकः । दुःसा-
ध्यत्वात् । दैत्यस्यारिः शत्रुदैत्यारिः । शक्रभ्येन्द्रस्य नन्दनः शक्रनन्दनः अर्जुनः कथ्यते । यमस्य पुत्रो
युधिष्ठिरः । वायोर्भीमः । इन्द्रस्यार्जुनः । अश्विनीकुमार्यार्जुनकुलमहदेवो पुत्रो । असत्यमेव तत् । कर्णे शूल
विद्यते यस्यासौ कर्णशूली । किरीट शेल्वर विद्यते यस्यासौ किरीटी । शब्दभेदोऽस्यस्य शब्दभेदी ।

१. का० सू० ४।२।२६ । अत्र टुर्गुटिति । २. का० सू० ४।२।३० । ३. का० सू० २।४।४६ ।
४. का० उ० सू० २।६० । ५. का० उ० सू० २।६१ । ‘फल निपन्नौ’ उन्प्रत्ययो गौःन्तश्च ।
फलति कर्मसिद्धिमयते इत्यर्थः । ६. का० सू० ४।४।१८ । ७. गा जीवयतीति बोध्यम् । विराट्नुगरे
पाण्डवानुसन्धानाय भीष्मकर्तृकगवाक्षमसेऽर्जुनद्वाराशस्त्रस्य महाभारतोक्तत्वात् । वस्तुतस्तु गाञ्जीव
गाण्डीवमिति अर्जुनधनुषो नाम, तदस्यास्तीति गाञ्जीवी इति मत्वर्थीय इन् । तदुक्तं कल्पद्रुकोपे —
‘गाण्डीवो गाण्डिवोऽस्त्रियाम् । गाञ्जीवो गाञ्जीवोऽप्यस्त्री’ इति १।५।४४। मूले गाण्डीवीशब्दस्तु गाण्डी
ग्रन्थिरस्यास्तीति गाण्डीवम् । ‘गाण्ड्वजगात्सज्ञायाम्’ पा० सू० ५।२।२१० । इति मत्वर्थीयो वः ।
तदस्यास्तीति मत्वर्थीय इन् । ८. मध्येन वामपाणिनाऽपि सचते बाणान् वर्षतीति मध्यमाची ।

कैचित् शब्दवेदीति पठन्ति इत्यपि स्यात् । जि जये । धनपूर्व । धन जितवान् धनञ्जयः । “नाम्नि” ख । “रनाम्यन्तः” गुणः । “ए^३अय्” । “ह्रस्वा^३रूपोर्मा^३न्तः” । धनञ्जयेति कवेर्नामाभिधानमपि शातव्यम् । स कथम्भूत ? शब्दभेदी । अतः परं कौटिपि नास्ति । पाण्डवनाम मिषेण स्वनाम कथितमस्ति ।

कुरुकीचकयोर्वैरी वायुपुत्रो वृकोदरः ।

कुरुवैरी । कीचकवैरी । कुरुशत्रु । कीचकशत्रु । कुरुगुणः । कीचकरिपु । अनिलसुत । ५
पवनात्मज । इ यादीनि भीमस्य पर्यायनामानि ज्ञातव्यानि । वृकोदरस्यैवातद्वत् उदर यस्य स वृकोदरः ।

समवर्ती यमः कालः कृतान्तो मृत्युरन्तकः ॥ १४५ ॥

पट् यमे । सर्वेषु सम वृत्त्य वर्तते समवर्ती । नान्त । रिपौ मित्रे च सम वर्तते इति वा । यम-
यति नियुहति प्रजा यमः । यमलजातत्वाद्वा । कलयति जन्तून् विनाशहेतुत्वेन कालः । कृतान्तो
विनाशो येन स कृतान्तः । म्रियतेऽनेनेति मृत्युः । “मुचि^३डो युक्^३युक्तो” । अन्तं करोतीति अन्तकः । १०
शमन । प्रेतपति । पितृपति । कीनाशः । वंशस्वतः । कालिन्दीसादयः । धर्मराजः । दण्डधरः । हरिः ।
दक्षिणापति । आदित्यदेव ।

तदात्मजो जातरिपुः कौन्तेयो भरतान्वयः ।

कौगव्यो राजयक्ष्माऽसौ गोमवंशो युधिष्ठिरः ॥ १४६ ॥

सम युधिष्ठिरे । तस्य धर्मस्यात्मजस्तदात्मजः । समवर्तिपुत्रः । यमोद्ग्रहः । कृतान्तपोतः । १५
मृत्युनन्दन । अन्तकदारकः । इत्यादीनि युधिष्ठिरपर्यायनामानि ज्ञातव्यानि । नातस्य स्वभोगस्य रिपुः
‘जातरिपुः । कुन्त्या अपत्यं पुमान् कौन्तेयः । भरतोऽन्वयोऽन्व भरतान्वयः । कुरोरपत्यं
पुमान् कौरव्यः । राजभिर्नरेन्द्रैर्यज्यते पूज्यते राजयक्ष्मा । ‘सर्वधातुः यो मनः’ । राजलक्ष्मा चेति
त्रैचित्पठन्ति । सोमो वंशोऽस्य गोमवंशः । युधि सश्रमे तिष्ठतीति युधिष्ठिरः ।

श्वेतार्जुनो शुचिः श्वेतो बलक्षः सितपाण्डुरम् ।

शुक्लावदात धवल पाण्डुः शुभ्रं शशिप्रभम् ॥ १४७ ॥

त्रयोदश श्वेत । श्वेतते श्वेतः । अश्वतेऽर्जुनः । जांचतीति शुचिः । शुचः शोके ।
श्यायते श्येतः । अवलक्षयति अवलक्षः । बलक्षः । सिनोति बध्नाति(मनः)सितः । पाण्डने याति
मनोऽत्र पाण्डुरः । अथवा ‘नगराश्रुपाण्डुरयोः’ पाण्डुत्वमस्यान्तीति पाण्डुरः । पाण्डुः । पाण्डरः । शोचति
मनोऽस्मिन् शुक्लः । शुक्लः गर्तः । अवदायते शोच्यते अवदातः । धवति धवलः । पाण्डने याति २५

१ “नाम्नि तृभृज्विधारितपिष्टमिसहा मजायाम वा० स० ४३।४४ । २ का० स०
३।५।१ । ३ का० स० ४।२।१२ । ४ का० स० ४।१ २२ । ५ धनञ्जयाय कश्चिच्छुद्रभेदवेत्ता
नास्तीत्यर्थः । ६ वृको भीमजठराग्निः स उदरे यस्यैत्वपि । ७ कलयनीयस्य स्थाने कालयतीति
वक्तव्यम् । ८ का० उ० सू० २।३४ । ९ अन्तङ्गरेत्यन्तयति, अन्तयत्यन्तक इति यावत् ।
१० कौशान्तरप्रमाणान्महाभारतादिकथाम्बादात् महाकविव्यवहाराच्च “अजातरिपुः” इतिच्छेदोऽत्र युक्तः ।
न जाता रिपवो यस्येति युधिष्ठिरस्य “अजातशत्रुः” इति मन्ता । तदुक्तम्—“अजातशत्रुः शल्यारिर्धर्मपुत्रो
युधिष्ठिरः” । अमि० चि० ३।३०८ । ११ का० उ० सू० ४।२८ । १२ “श्विता वर्णे” । स्वादि० आत्म० ।
पञ्चाशच् । १३ अश्वते सङ्ग्रह्यते जनैः । १४ शुच्युज्ज्वलवस्तूनां सर्वसङ्ग्रहणीयत्वं लोकानुभवसिद्धम् ।
शोचति निर्मलीभवति शुचिः । शुचः दीप्तेः । दक् । १५ श्वैड् गर्तः । श्यायते गच्छति
नीलादिवर्णविशुद्धत्वम् । “हस्याभ्यामितन्” । पा० उ० सू० ३।९३ । इत्यन् । १६ अवलक्षयति अव-
लक्ष्यते वा अन्यवर्णपेक्षया उत्कृष्टत्वेनेति । वष्टि भागुरिरल्लोप इत्यल्लोपपक्षे । १७ अवदायते स्म ।
दैप् शोधने । कर्मणि क्तः । १८ धुनीत्यशोभाम् इति ह्रस्वचन्द्रः । धावति मनोजः । धातु गतिशुद्धयोः ।
कलच्, ह्रस्वश्चेतीति रामाश्रमः ।

मनोऽस्मिन् पारङ्मु १ । शोभते शुभ्रः । शशिन इव प्रभा यस्य शशिश्रभम् । गौरः । हरिण ।

कृष्णं नीलासितं कालम्

चत्वार कृष्णे । वर्णान् कर्षति कृष्णः । नीलति नीलम् ३ । उभयम् । न सितम् अस्मितम् ।
क सुखमालाति कालः । कालयति वा मन 'काल । मेचकम् । श्यामलम् । श्याम च । पालाशम्' ।
५ हरित् । शिखिकण्ठाभ इति दुर्गः ।

धूमं धूममलिप्रभः ।

विशिष्टकृष्णे त्रय । धूनाति धूमः । धूनोत्थमिभवति राग धूमः । धूमलश्च । अलि-
वत्प्रभा यस्य मोल्लिप्रभ ।

तमोऽन्धकारं तिमिरं ध्वान्तं संतममं तमम् ॥ १४८ ॥

१० ताम्यति मन्दीभवति चक्षुरत्र तम । मान्तम् । क्लृप्ते । अन्य दृष्ट्युपात्त करोतीति अन्ध-
कारम् । तिम्यते आच्छाद्यतेऽनेन तिमिरम् । कान्तारे ध्वन्यते ध्वान्तम् १ । तम मय्यक् प्रकारेण तमः
सन्तममम् । ताम्यतीति तममित्यदन्तम् । क्लृप्ते । अवनमसम् । अन्धतममम् । तमिसम् । भृङ्गाया ।
भृङ्गायम् । दिग्भ्रमम् ।

लोहितं रक्तमाताम्र पाटल विशदारुणम् ।

१५ पङ्क्ते ८ । रंहाति जायते शाभाऽत्र लोहितः । रज्यते रक्तम् १ । आताम्यते कटुद्वयेन
रङ्गेषु आताम्र । पाटयतीति पाटलः । पाटलग् । विशीयते विशदः । अचक्षति रज्यते-
(ति वाऽ) रुणः ।

पीतं गौरं हरिद्राभम्

हरिद्रारक्तवर्णे त्रय । पीयते मनोऽनेन पीतम् १ । गान्ते गच्छति वर्णविशेषं गौरः २ ।
२० तथा च नाममात्रायाम् — 'गौर' उवेतेऽरुणे पीते विशुद्ध चन्द्रमयपि । विशदे' । हरिद्रावत् आभा
लुविर्यस्य हरिद्राभम् ।

पालाशं हरितं हरित् ॥ १४९ ॥

हरित्वर्णे त्रयः । पलाशस्य वर्णस्याय पालाशः । पलाश इत्याह ८ — 'राक्षसे । किशुके
वर्णे पलाशाग्न्या । हरित्यपि' । हरति चित्त हरितम् । हरित् ।

१ पन्यते स्तूयते पाण्डुः । 'पनेदीर्घा' इति डु । इति ह्रस्वचन्द्र । २ कर्षति मन इति
रामाश्रम । उपेक्षति इति नरु । ३. 'शील वर्ण' । नाम्युपधेति का० सू० कः । ४ कालयति मन
इत्यन्यत्र । ५ अय पाठोऽत्र न युक्त । 'पालाश हरित हरित' इति पद्यस्य टीकायामग्रे द्रष्टव्यः । ६ कृष्ण-
मिश्रितलोहिते धूमधूमलशब्दाविति वैशिष्ट्यार्थ । तदुक्तम् — 'धूमधूमला कृष्णलोहिते' इत्यमरः । १।५।१६ ।
७. कान्तारप्रदेशादिषु तमोऽविच्छिन्ननिवेशात्तदाह — 'कान्तारे ध्वन्यते' इति । सर्वरोगहरतया ध्वन्यते
ध्वान्तमिति हेमचन्द्र । ८ अत्र द्वा रक्ते, त्रयो विशदारुणे इति वक्तव्यम् । विशद च तद्रूपम्, श्वेत-
विशिष्टरक्तमित्यर्थ । तदेव पाटलम् । तदुक्तम् — 'श्वेतगतस्तु पाटल' इत्यमरः । ९ "इह बीजवन्मनि
प्रादुर्भावे' । 'इह रश्च लो वा' । पा० उ० सू० ३।४ । इतीतन्, लत्व च वा । १० रज्जति स्म रज्यते स्म
वा रक्तमित्यन्यत्र । ११ पीयते वर्णान् पीतः । 'पीट् पीते' । टि० । इत्यपि । १२ गूरते उद्युङ्क्ते मनोऽस्मिन्
गौर । 'गूरी उद्यमने' । अज्रेन्द्र इत्युणादिसंज्ञेण व्युत्पादित । 'गूरते गौरः' इति हेमचन्द्र । 'गृह
मश्लेषणे' । १३ अने० म० २।४२५ । १४ शा० को० ५२९ ।

हरिणी लोहिनी शोणी गौरी श्येनी पिशङ्गयपि ।

षट् रक्तवर्णैः^१ । “श्येतैतहरितलोहितेभ्यस्तो न.”^२ अनेन ईप्रत्यये तकारस्य नकारश्च । हरिणी । तथा च हलायुधे^३—“शुकाभा हरिणी स्मृता ।” हरितः च । रोहित जायते शोभाञ्च लोहित । रलयोरप्येवम् । “श्येतैतहरितलोहितेभ्यस्तो न.” अनेन ईस्तकारस्य च नकारः । लोहिनी जाता । हलायुधे^४—

“जपाकुसुमसकाशा लोहिनी परिकीर्तिता”

शोणते शोणी । गते गौरः । नदादित्वादीः । गौरी । श्यायते गच्छति श्रिय श्येनी ।^५ हलायुधे^६—“श्येनी कुमुदपत्राभा ।” श्येना च । पेशति पिशङ्ग । ईप्रत्यये पिशङ्गी ।

मारङ्गी शवरी काली कल्माषी नीलपिञ्जरी ॥१५०॥

षट् पञ्च वर्णैः । सागयति गमयति [बहुवर्णान्] सारङ्गः । ईप्रत्यये सारङ्गी । शवति याति वर्णान् शवरी शवलश्च । ईप्रत्यये शवरी । कालयति कालः । ईप्रत्यये काली । कलयति वर्णान् कल्माषः । ईः कल्माषी । नील गन्धे । नीलति नालम् । ईप्रत्यये नीली । पिञ्जति पिञ्जरी ।^{१०} ईप्रत्यये पिञ्जरी ।

परागं मधु किञ्जल्क मकरन्दं च कौसुमम् ।

पञ्च^१ कुसुमरेणो । परं प्रकर्षमय्यते सम्भाव्यते पुष्पेषु परागः^२ । उभयम् । मन्वते सम्भाव्यते पुष्पेषु मधु । उभयम् । किं जल्पति किञ्जल्कम्^३ । मङ्गयते मण्डयते पुष्पमनेन मकरन्दम्^४ । कुसुम-^५येदं कौसुमम् ।

उपचाराद्रजः पांशुरेणुधूलीश्च योजयेत् ॥१५१॥

चत्वारो धूल्याम् । रज रागे । रजत्यनेन रजः । “उपरिजिह्वयो यण्वत्”^१ । नाक धाक् पशि नाशने । पशयते पांशुः । “^२बहिरहितलिपशिभ्य उण्” । रीड गतो । रीयते रेणुः । “दाभागीहृभ्यो नुः” । धूयते धुनोति दृष्टि वा धूलि । उपचारात् पुष्परजः । सुमनःपाशुः । पुष्परेणुः । लतान्तधूलि ।^{२०} प्रमवर्जः । प्रमनरेणुः । इत्यादीनि पुष्परजो नामानि ज्ञातव्यानि ।

कलङ्कावधमलिनं किञ्जल्कं लक्ष्म लाञ्छनम्

निबोधमध्रमं पङ्कं मलीममपि त्यजेत् ॥१५२॥

१ अत्र षट्छीलिङ्गवाचकं तत्तद्वर्णविशिष्टे इति वक्तव्यम्, न तु रक्तवर्णैः । तत्तद्वर्ण-
भेदा यथा—हरिणी शुकाभा, लोहिनी जपाकुसुमङ्काशा, शोणी कोकनदच्छवि, गौरी हरिद्राभा, श्येनी
कुमुदपत्राभा, पिशङ्गी पीतरक्ता । २ “श्येतैतहरितभगितरोहिताद् वर्णान्तो न” हे० श० २।४।३६ । ३ “श्येनी
कुमुदपत्राभा शुकाभा हरिणी स्मृता । जपाकुसुमसङ्काशा लोहिनी परिकीर्तिता ।” इति पूर्ण श्लोकः ।
४ हलायु० ४।५३ । ४ हला० ४।५३ । ५ हला० ४।५३ । ६ अत्र षट् छीलिङ्गवाचके तत्तद्व-
वर्णविशिष्टे इति वक्तव्यम् । तदभेदो यथा—सारङ्गीशम्बरीरुत्याण्यधिवर्णा । काली नील्यावसिते ।
पिञ्जरी पीतरक्ता । ७ अत्र परागकिञ्जल्कशब्दौ पुष्परजोवाचकौ, मधुमकरन्दशब्दौ पुष्परसवाचकौ, कौसुम-
शब्दस्तदुभयवाचकः, इति विवेकः । ८ परागच्छति परमुत्कर्षमगति वेति विग्रहः सरल ।
९ किञ्चिज्जलति, “जल अपवारणे” । बाहुलकात् । किञ्चिज्जलति जडीभवति इति स्त्री० स्वा० ।
१० मकरमपि यति कामजनकत्वान्मकरन्द । “दो अवलण्डने” । कः । मकरमपि अन्दति बध्नातीति वा ।
“अदि बन्धने” । कर्मण्यण् । शकन्वादिः । इति रामाश्रम । ११ का० उ० सू० ४।५९ । १२ का० उ०
सू० १।३। १३ का० उ० सू० २।७ ।

दश कलङ्के । कल्पते लक्षणेन कलङ्कः^१ । न वर्यं समीचीनम् अवधाम्^२ । मल्पते धार्यतेऽप्यशो-
 ऽनेन मलिनम् । किं कुत्सित, जल्पति किञ्जल्कम् । लक्षयति परं नान्तम् लक्षम् । लाञ्छयतेऽनेन
 लाञ्छनम् । निबुध्यते निबोधम्^३ । नञ्पूर्वो धाञ् । न दधातीत्यधमः । “धर्मसीमाग्रीष्माधमाः” ।
 “पञ्च्यते पङ्कम् । मलिना कदर्येण मस्यते^४ परिमाणीक्रियते मलीमसः । तं त्यजेत् सत्पुरुष ।

५

जनोदाहरणं कीर्तिं साधुवादं यशो विदुः ।

वर्णं गुणावलिं ख्यातिं

सप्त यशसि । जनानां लोकानामुदाहरणं, जनेन लोकनोदाह्रियते वा जनोदाहरणम् । कृत
 सशब्दे । कृत्-“चुरादिश्च”^१ । इत् । कृत ‘कारिते इत्’ । कीर्तिं जात । नामिनोर्वा^२ । कीर्तिं जातम् ।
 कीर्तनं कीर्तिः । “कीर्तीषोः क्तिश्च”^३ क्तिप्रत्यय । कारितलोप । त्रिषु व्यञ्जनेषु सञ्जातेषु स्वजातीयानां मध्ये
 १० एकव्यञ्जनलोपः । एकस्तकारो लुप्यते । सिः । रेफ । साधूनां सत्पुरुषाणां वादः साधुवादः ।
 कुशलौ योग्यौ हितश्च साधुरुच्यते । यज देवपूजादिषु । इज्यते यशः । “यज शिञ्च” अस्मादसन्
 प्रत्ययो भवति स च यण्वत् । जस्य शिः । इकार उच्चारणार्थः । वर्णं साधुजनेन वर्णं । गुणानामवलि
 श्रेणिः गुणावलिः । ख्यायते ख्यातिः । ङ्लोक । अभिख्या । समाख्या ।

अवधानं तु साहसम् ॥१५३॥

१५

साहसे द्वौ । अवधीयतेऽवधानम् । अवदानं च । साह्यते^१ साहसम् ।

प्रेष्यादेशनिदेशाज्ञानियोगाः शासनं तथा ।

षडादेशे । प्रेष्यते इति प्रेष्य । आ समन्ताद् दिशतीत्यादेशः^१ । निदिश्यते निदिशतीति वा
 निदेशः । आजानातीत्याज्ञा^२ । नियुज्यन्ते नियोगाः । शास्यते प्रतिपाद्यते शासनम् । शासु
 अनुशिष्टौ ।

२०

सन्देशः प्रिययोः

स्त्रीपुरुषयोः मुखवार्तायां सन्देशः । सन्दिशति^१ सन्देशः । अमरलिङ्गनाममालायाम्^२ -
 “सन्देशवाग्वाचिकं स्यात् ।”

वार्ता प्रवृत्तिः किंवदन्त्यपि ॥१५४॥

त्रयो नवीनवार्तायाम् । वृत्तिलोकवृत्तं विद्यतेऽस्या वार्ता । “प्रज्ञाश्रद्धाऽर्चवृत्तिभ्यो ण”

१ क ब्रह्माणमपि लङ्कयति हीनता गमयतीत्यन्यत्र । २ न वदितुं योग्यमित्यवयव गह्वरम् ।
 “अवधपण्यवयवगह्वरपणितव्यानिरोधेषु” इति यत् । ३ नात्र प्रमाणांतरमुपलब्धम् । निबुध्यते
 निश्चयेन ज्ञायते कलङ्कजनोऽनेनेति करणे घञ् । कलङ्किना राजशासनचिह्नितत्वदर्शनात् । ४. का०
 उ० सू० १।५३ । ५ पच्यते टु खमनेन । पचि व्यक्तीकरणे विस्तारे वा । कर्मणि घञ् ।
 ६ “मसी समी परिमाणे” । पुंसि सज्ञाया घ । यद्वा मलोऽस्यास्तीति “ज्योस्नातमिस्ते”
 त्यादिना मत्वर्थीय ईयस् प्रत्ययः । टीकोक्तविग्रहश्चिन्त्य । तत्र मलिमस इत्यापत्तेः । ७. का० सू०
 ३।२।११ । ८ कीर्तीषोः क्तिश्चेति निर्देशात् कृत कारिते इत् । ९ “नामिनोर्वोऽकुक्षुरोर्व्यञ्जने”
 का० सू० ३।८।१४ । १० का० सू० ४।५।८६ । ११ का० उ० सू० ४।६० । १२ सहसि बले भव साहसम् ।
 १३ आदेशनम् आदिश्यते वेति विग्रहः । १४ अत्रापि आशयते आशानं वेति विग्रहः । १५ सन्दिश्यते
 इति कर्मणि घञ् न्यायः । १६ अम० की० १।६।१७ । १७. पा० सू० ५।२।१०१ ।

स्त्रीस्त्रीवे वार्त्तं च । प्रवर्तते जनोऽनया प्रवृत्तिः । स्त्रियाम् । किं कुलितं वदत्यत्र किंवदन्ती^१ ।
वृत्तान्तः । उदन्तः ।

कठोरं कठिनं स्तब्धं कर्कशं परुषं दृढम् ।

षड् दृढे । कठति कृच्छ्रेण जीवति कठोर^२ । कठति कठिनः । स्तम्भोति स्म स्तब्धः । कर्कः
सोत्रोऽयं धातुः । कर्कति करोति निर्दयत्वं कर्कशः । परुष्यति कुप्यतीति परुषः^३ । कुप कुप रुष रोषे । ५
दृढ दृढि दृढौ । दृढति स्म दृढः । “परिवृद्धदौ प्रभुवलवतोः ।” कूरः । ककखट । खरः । चण्डः ।
निधुरः । जरठः । मूर्तिमत् । मूर्तम् । प्रवृद्धम् । प्रौढम् । एषितम् । सर्वे त्रिषु ।

अश्लीलं काहल फल्गु

निस्सारे वचसि त्रय । न श्लीयते न श्लिष्यते सता चित्तम् अश्लीलम् । वचनम् । क
शिर आ समन्तात् हलति अशोभमान करोतीति काहलम् । लोहलज्ज । लुह सौत्रः । फल निष्पत्तौ । १०
फलति फल्गुः^१ । “रज्जुतर्कुवल्गुफल्गुशिशुरिपुप्युलषवः ।

कोमलं मृदु पेशलम् ॥ १५५ ॥

त्रयः कोमले । कौ पृथिव्या मलते कोमलम्^२ । मृद द्रोदे । मृदनातीति मृदु^३ । पिशति
पेशलम्^४ । सुकुमारः । मृदुलम् ।

प्रत्यग्रं साम्प्रतं नव्यं नवं नूतनमग्रिमम् ।

१५

षड् नवीने । प्रत्यग्रगति प्रत्यग्रम्^१ । सम्प्रति भव साम्प्रतम् । नूयते नव्यम्^२ । नौति
नवम्^३ । नूयते नूतनम्^४ । अग्रे भवम् अग्रिमम्^५ । “पृथ्वादिभ्य इमन्वा” । अभिनवम् ।

१ कोऽपि वाद । किम्पूर्वाद् वदेरीणादिको भूच् प्रत्ययः । भन्त्यान्त । गौरादित्वाब्दीप् ।
इति रामाश्रमः । २ ‘कठिचकिभ्यामोरः’ का० उ० सू० ४।३७ । ‘कठ कृच्छ्रजीवने’ । ३ वष्टि-
भागुरिरल्लोपमित्यपेरल्लोपो नत्वपत्येति टीकोक्तविग्रहश्चिन्त्य । रामाश्रमस्तु—“पिपत्तिं पूरयति अल
बुद्धिं करोति । “पृ पालनपूरणयो” । “पूनहि” इत्यादिना उ० सू० ४।७५ । उषच् । इत्याह ।”
पृणाति पूरयति पर कोपेनेति हेमचन्द्रः । ४. का० सू० ४।६।९५ । ५ न श्रिय लातीति
अश्लोमम् । कप्रत्ययः । कपिलकादित्वाल्त्वम् । इति रामाश्रमः । न श्रीरस्यास्तीति सिध्मादित्वाभ्-
त्वर्थीयो ल । ६ काहलोऽस्फुटवागिति हेमचन्द्रः । ७ फलति विशीयते इत्यन्यत्र । ८ का० उ० सू०
१।९। इत्युप्रत्यय गश्च । ९ कौ पृथिव्या मलते धारयति श्रियम् इत्यर्थः । ‘मल मल्ल धारणे’
पचाद्यच् । परमेव कुमल इत्येव सिध्यति । वस्तुतस्तु ‘कोमल’ शब्दस्य सिद्धिः प्रकारान्तरेणैव साधनीया ।
कौतीति कोमल इति विग्रहोऽभिधानचिन्तामणौ । कायने जनैः इत्यन्यत्र । १० मृद्यते इति कर्मणि कु-
प्रत्ययो न्याय्यः । ११ पिशत्येकदेशेन सर्वं करोतीति । औणादिकोऽलच् । रामाश्रमस्तु—‘पिश समाधौ’
पेशन पेश समाहितचित्तता, सोऽस्यास्तीति सिध्मादित्वादलच् इत्याह । पेशलशब्दस्य दत्ताथो मुख्यः
कोमलाथो गौणः । तदुक्तम्—“दत्ते चतुरपेशलपटवः सूत्थान उष्णश्च” इत्यमरः । २।१०।१९ ।
“दत्तस्तु पेशलः ।” इति अभि० चि० ३।४८ । १२ ‘अग्र गतो’ । ड । प्रतिनवमग्रमत्येति क्षीरस्वामि-
रामाश्रमौ । प्रतिगतमग्रमनेनेति हेमचन्द्रः । १३ ‘णु स्तवने’ । अचो यत् । १४ नूयते नवम् ।
ऋदोदप् । एव कर्मणि विग्रहो युक्तः । १५ नवमेव नूतनम् । “नवस्य नूरादेशस्त्वनप्लाश्च प्रत्ययाः
बा० ५।४।३० । इति तनप् प्रत्ययो नूरादेशश्च । इत्यत्र । १६ ‘अग्रादिपश्चाडिडमच्’ बा० इति डिमच् ।
नात्र पृथ्वादिभ्यः, इमन्, तस्य भावकर्मणोर्विधानात् पृथ्वादौ पाठाभावाच्च । सत्यपि । अग्रिमन् इत्य-
निष्टरूपापत्तेः ।

नूनश्च । सर्वे त्रिषु ।

पुराणं जठरं जीर्णं प्राक्तनं सुचिरन्तनम् ॥ १५६ ॥

पञ्च पुरातने । पुरा भवम् पुराणम् । जठ इति सौत्रोऽयं धातुः । जठतीति जठरम्^१ । जीर्यते जीर्णम् । प्राक् पूर्वं भवम् प्राक्तनम् । मुष्टु चिर भव सुचिरन्तनम् । प्रतनम् । प्रतनम् ।

५

भो रे हं हो हयामन्त्रे

एते शब्दा आमन्त्रणार्थे वर्तन्ते । भू सत्तायाम् । भोः^२ । रेपृ लवगता । रे । हनु हिसागत्योः । ह । हु दाने । हो । हि गतौ । हे ।

कश्चित् किञ्चन संशये ।

सन्देशार्थे^३ द्वौ शब्दौ वर्तन्ते । अविशेषाभिधाने चिञ्चनशब्दौ अवगन्तव्यौ । तथा चोक्तम्—
१० “किम् सर्वविभक्त्यन्ताच्चिञ्चनौ ।” कश्चित् । कश्चन । कौचित् । कौचन । केचित् । केचन इत्यादि ।
स्त्रिया काचित् काचन इत्यादि । क्लबे किञ्चित् । किञ्चन । इत्यादि ।

‘द्राक्क्षणेऽह्राय’ मपदि^४

शीघ्राथे त्रयः शब्दा वर्तन्ते ।

निपेधे मा न खल्वलम् ॥ १५७ ॥

५१

निपेधे चत्वारः शब्दा वर्तन्ते ।

उच्चैरुच्चावचं तुङ्गमुच्चमुन्नतमुच्छ्रितम् ।

पङ् दीर्घे । उच्चैरुच्चावचम् । अःययः । उच्च च अवच च उच्चावचम् । तुजति दैर्घ्यमाऽस्ते तुङ्गम्^१ । उच्चैरुच्चावचम् । उन्नमत्युन्नतम्^२ । उच्छ्रियते उच्छ्रितम्^३ । प्राणु^४ । तालव्यः । उदग्रमदीर्घम् । आयत च ।

२०

नीचं न्यगातनं कुब्जं नीचैर्ह्रस्व नयेत्परम् ॥ १५८ ॥

पङ् ह्रस्वे । निचोयते नीचम्^१ । न्यजतीति न्यक् । आतन्यते आतनम्^२ । कौति व्याधि कुब्ज ।

१ यद्यपि जठरशब्दो जीर्णं प्रसिद्धो जठरशब्दमृदरे, तथापि कश्चिजठरशब्दोऽपि जीर्णं पठितस्तदाशयेनाह—जठतीति जठरमिति । यदुक्तम्—‘जठरः कुक्षिवृद्धयो’ अने० स० ३।५५१ ।
२ गतीति भोम् । डोस्प्रत्ययः । यथा—भो भार्गव । रिणातीति रे । विच् । यथा रे चेदाः । ह, हो, इति पृथक्प्रबोधनद्वयमुक्तम् । परन्तु नाटकादौ ‘ह हो’ इत्यखण्ड एव सम्बोधने प्रयुज्यते । ह जुहोतीति हहो । यथा हहो तिष्ठ सखे । हिनोति हे । “हि गतो वृद्धो” । विच् । यथा हे हेरम्ब ।
३ अविशेषार्थे इत्याशयः । ४ द्राति द्राक् । “द्रा कुत्साया गतौ” । बाहुलकात्कः । अकार इत् । स चासौ क्षणो द्राक्क्षणः । ५ आह्वयनम् आह्राय “हनुद् अपनयने” । घञ् । पृषो-दरादित्वाद् वस्य यः । ६ सम्पद्यते सपदि । “पद गतौ” । इन् । पृषोदरादित्वात्समोऽन्त्यलोपः । ७ तुजति दैर्घ्यं पालयतीति । घञ् । कुत्सम् । ८ उन्नमति स्म उन्नतम् । ९ उद्ध्वं श्रयते उच्छ्रितम् । १० प्राशनुते दैर्घ्यं प्राणु । “अशङ् व्यसो” । ११ निकृष्टामो लक्ष्मो चिनोतीति । डः । इति रामाश्रम । निम्नमञ्जति, नीचैरस्त्यस्य वा । अर्श आदित्वाद् । अव्ययानां भमात्रे विलोपः । १२ नात्र प्रमाण-मुपलब्धम् । १३ कौति व्याधिविशेषं ब्रूते सूचयति । कौ पृथिव्याम् उज्जति ऋजुभवति । “उज्ज आजेवे ।” अच् । शकन्धादि । कु ईषद् उज्जमार्जवमस्य चेति रामाश्रमः ।

न्युञ्जश्च । निचीयते नीचैस् । हसति हस्व ।

अमा सह समं साकं माद्रं सत्रा सजूः ममाः ।

अष्टौ सार्धे । अमति अमा । सह हन्ति गच्छति सह । सह मिनोति समम् । सह अकृति गच्छति साकम् । सह ऋद्धम् साद्धम् । सह त्रायते सत्रा । जुषी प्रीतितेवनयो । जुप् सहपूर्व । सह जुषते सजूः । किञ्च वेलोपः । सि । व्यञ्ज० । सिलोप । समन्ति ममा । सह मान्ति वर्तन्ते ऋतवो यामा वा । स्त्रीबहुत्वे । ५

सर्वदा सततं नित्यं शश्वदात्यन्तिकं सदा ॥१५६॥

पट् नित्ये । सर्वस्मिन् काले सर्वदा । 'काले कि' सर्वयदेकान्येभ्य एष दा' । सतन्यतेऽस्म सतत' सन्ततम् च । नियच्छति नित्यम् । शमतीति शश्वत्' । अत्यन्ते भवमात्यन्तिकम् । सदा इति निपात । सर्वशब्दात्परो दाप्रत्ययो भवति सर्वस्य समावश्च । सर्वस्मिन् काले सदा । मना- १०
तन, सदातनम् । श्रुवम् । शाश्वतम् । शाश्वतिकम् । अनस्वरम् । अविनस्वरम् । सर्वे त्रिषु ।

वियोगं मदनावस्थां विरहं पल्लवं विदुः ।

चत्वारो विरहे । वियोजन वियोग । मदनस्य वन्दर्पस्यावस्था मदनावस्था । विरहस्य विरह' । मल मल्ल धाम्गो । मल्लस्थाने तेचित्पल्ल इति पठन्ति । पल्लने पल्ल । म्बार्थं क पल्लनक । १५

प्रेमाभिलाषमालभ्य रागं स्नेहमतः परम् ॥१६०॥

पञ्च स्नेहे । प्रियस्य भव कर्म वा प्रेमा । प्रिय' स्थिरेति प्रादेशः । अनिलप्यते ऽभिलाषः । लप श्लेषक्रीडनयो । आलभ्यते आलभ्यम् । 'सकिसहिपवर्गान्ताच्च' । रञ्ज रागे । रञ्ज् । रञ्जन रागः । भावे धृज् । रञ्जेर्भावकरणयो' पञ्चमलोप । अत्यो दीर्घ । 'चजो' 'कगो बुद् धातु-
वन्धयोः ।' जकारगकार । प्र० सि । रेफ' । अथवारज्यतेऽनेन राग । 'व्यञ्जनाच्च' । करणे घट् । प्र० २०
'रञ्जेर्भावकरणयो' पञ्चमलोप । अत्यो दीर्घ । चजो. कगाविति जकारगकार । स्निह्यते स्नेहः ।

संहितं सहितं युक्तं मण्डकं संभृतं युतम् ।

मंस्कृतं समवेत च ग्राह्यन्वीतमन्वितम् ॥१६१॥

१ न माति सह मापिनामनेकत्वान्मैयता न गच्छति । उप्रत्यय । कप्रत्ययो वा । २ 'व्यञ्जनाच्च' का० सू० २।१।४६ । ३ 'ममी समी परिमाणे' । सम धातु' । पचाद्यच् । सममिति मान्तम-
ध्ययम् । महार्थकमत्रोक्तम् । तन्मिन्नः समा शब्दो वर्षव चको न तु महार्थवाचक । तदुक्तम्— 'हयनोऽस्त्री
शरत्समा' । इत्यमरः । अतोऽस्मिन्नर्थे एतस्य ग्रामाण्य चित्त्यम् । सह मान्ति ऋतवो यामामिति विग्रहोऽपि
वर्षवाचकसमाशब्द एव सङ्गच्छते । तत्रैव ऋतूना सहमानात् । ४ का० सू० २।६।३४ । ५ 'तनु
विस्तारे' । कः । 'समी वा हितततयो' इति नलोप । ६ तयन्नेर्भवे नियमिति वा० निशब्दात्प ।
नियच्छति नियत भवतीत्यर्थ । ७ अत्र शशतीति वक्तु युक्तम् । शश लुप्तगतौ । बाहुलकादवत् ।
८ सनातनादिशब्दाना विशेष्यनिष्पन्ना यथोक्तशश्वदादिशब्दसमानार्थतया टीककृतोक्तिर्न सङ्गच्छते ।
९ मल्लकपल्लकशब्दयोर्विग्रहार्थत्वे प्रमाणान्तर नोपलब्धम् । १० पा० सू० ६।४।१५७ । इति
प्रादेशः । इमनिच्प्रत्यय । पृथ्वादिभ्य इमनिच्वा इति । ११ आलभ्यशब्दस्य रागाधे कोपान्तर-
सवादो नोपलब्ध । १२ का० सू० ४।२।११ । १३ का० सू० ४।१।६६ । १४ का० सू० ४।६।५६ ।
१५ का० सू० ४।५।९९ ।

दश सहिते । सहीयते संहितम्^१ । संहितम् ।

“लुम्पेदवश्यमः कृत्ये तुम्काममनसोरपि ।

समो वा हितततयोर्मासस्य पचि युद्धव्योः॥”

योजनं युक्तम्^३ । पृची सम्पक्के । पृच् । सम्पृणक्ति स्म सम्पृक्तम् । “शत्यर्थार्कर्मकं^४” इति
५ कर्तरि क्तप्रत्ययः । “चजोः कगो^५”—चत्य क. । सम्भ्रियते स्म सम्भृतम् । यौतिस्म युतम् । सस्क्रियते
स्म सस्कृतम् । समवेयते स्म समवेतम् । अन्वीयते स्म अन्वीतम् । अन्धितम् ।

वर्त्माऽध्वा सरणिः पन्थाः मार्गः प्रचरसञ्चरौ ।

सप्त मार्गे । वर्तन्ते प्रतिपद्यन्ते जना येन तत् घर्तम् । नान्तम् । “सर्वधातुभ्यो मन्” । गच्छति
अतति चलति अनेन नान्तोऽध्वा^६ । सरत्यनया सरणि । दन्ततालव्यः । सृतिश्चास्त्रियाम् । द्वौ ।
१० पतन्ति गच्छन्ति अनेन पन्था^७ । नान्त । इदन्तोऽपि । पथिः । पथ । पथान् । पन्थ इत्यपि । एते पुंसि ।
मार्जनं मार्गयन्त्यनेन वा मार्गः^८ । पुंसि । प्रकषेण चरत्यनेनेति प्रचरः । सञ्चरत्यनेनेति सञ्चरः ।
पदतिः । एकपदी । वर्तनी । अयनम् । पदवी । पद्या । निगम ।

त्रिमार्गनामगा गङ्गा

मार्गपूर्वं त्रिशब्दे प्रयुज्यमाने गङ्गानामानि भवन्ति । त्रिवर्मा । त्र्यध्वा । त्रिसरणि । त्रिपथा ।
१५ त्रिपचरा । त्रिसञ्चरा ।

घोषो गोमण्डलं व्रजः ॥१६२॥

त्रयो गवा स्थाने । घोषन्ते^{१०} गावोऽत्र घोष । गवा मण्डलम् गोमण्डलम् । गावो ।
व्रजन्यत्र व्रजः । गोकुलम् । गोष्ठम् ।

शृङ्गो दृतिहरिर्नाथहरिस्तिर्यक्च शृङ्गिगणः ।

२० पञ्च महिषादिके । पर शृणाति हिनस्तीति शृङ्गः^{११} (मृ) । त्रिपु । हृज् । हरणे । हृ दृति-
पूर्वं । इति चर्मप्रसेवक जलभाण्ड हरति वहति दृतिहरि । “हरतेट्”तिनाथयोः^{१२} पशौ इत्ययम् ।
नाथन्तगुणः । नाथ स्वामिन हरतीति^{१३} नाथहरि । “हरतेट्”तिनाथयोः पशौ । तिरोऽञ्चयतीति

१ सहीयतं इति विग्रहो न युक्तः । सम्पूर्वस्य हाकल्यागार्थकत्वात्प्रस्तुतार्थाप्रतीते ।
अतः सन्धीयते स्म संहितम् । सम्पूर्वाद्धात्रः क्तप्रत्यये धात्रो हिरिति ह्यादेशः । २ ६।१।१४४
का० सू० । ३ युज्यते स्म युक्तम् । ४ का० सू० ४।६।४९ । ५ का० सू० ४।६।५६ । ६ का० उ०
सू० ४।२८ । ७ अतति सन्तन गच्छति जनोऽत्र अध्वा । “अत सातत्यगमने” । “वनिस्तस्य
घः” का० उ० सू० ६।५९ । इति वनिप्रत्ययः तकारस्य धकारश्च । “अति बल पथिकानाम् । अनेर्थ
श्रेति कनिष् धश्चान्तादेशः ।” इति रामाश्रमः । ८ “पल्लु पतने” । पतेत्यश्वेतीति थोऽन्तादेशश्चेति
ग्रन्थाशयः । पथन्तेऽनेन । “पथे गतौ” । पथन्तेऽनेन । “पथे गतौ” । पथिमथिभ्यामिनि । इति
रामाश्रमः । ९ मृज्यते विनृणीक्रियते पादैः । मृज् शुद्धौ । षज् । वृद्धि । कुलं च । मार्ग्यते
इति वा । “मार्ग अन्वेषणे” । १० वासन्ते शब्दायन्ते इत्यर्थः । “वाल् शब्दे” । ११ “शृङ्गशृङ्गाऽङ्गानि”
का० उ० सू० १।४।४८ । “शृ हिसायाम्” । शृङ्गप्रत्यये निपातः । शृङ्ग गवादीना विषाणमिति तत्रैव
दुर्गः । ततः शृङ्गमस्यास्तीति अर्श आदिभ्योऽञ् । एव सति महिषादिशशा सगच्छते । अजभावे विषाण-
मेवार्थः स्यात् । १२ का० सू० ४।३।२६ । १३ नाथ नासारब्जं हरतीत्यन्यत्र ।

तयञ्च^१ । शृणातीति शृङ्गम् । “शृङ्गशृङ्गाङ्गानि” एतेऽङ्गप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । शृङ्गानि विद्यन्ते येषां ते शृङ्गिण ।

गौश्चतुष्पात्पशुः

त्रयो^२ गवि । पूजा गच्छतीति गौः । चत्वार पादा यस्यासौ चतुष्पात् । स्पश इति सौत्रो धातु । स्पशते [बाधते] इति पशु । ^३अपङ्गदयः—“अपङ्गदुपङ्गदुसुपङ्गदुहरिद्रुमितदुशतदुशकुधनुम-
युपशुदेवयुजरायुकुमारयुमुगयवः” एते शब्दा कुप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते ।

तत्र महिषी नाम देहिका ॥१६३॥

द्वौ महिष्याम् । तत्र तस्मिन् मह्यते^४ महिष । नदादित्वादी । महिषो । दिह्यते उपचीयते दुग्धेन देहिका^५ ।

कृती नदीष्णो निष्णातः कुशली निपुणः पटुः ।

१०

लुण्णः प्रवीणः प्रगल्भः कोविदश्च विशारदः ॥१६४॥

एकादश कुशले । प्रशस्त कृत कर्मास्य कृती । नया स्नातीति नदीष्ण । “निनदीभ्यो^६ स्नाते कौशले” इति पत्वम् । नितरा स्नाति स्म शुचित्वमाप्नोति स्म निष्णात । कुत्सित श्यति कुशल । अथवा कुशान् लाति कुशलः । निपुणतीति निपुणः । शोभनकर्मत्वात् । पटति जानातीति पटुः । क्षुण्ति स्म क्षुरण । क्षुदिरु सम्पदये । प्रकृष्टा वीणास्य प्रवीणः इति मुख्यार्थे परित्यज्य १५ निपुणे रूढा । तदाहुः—

“निरूढा लक्षणा कैश्चित्सामर्थ्यादभिधानवत् ।

क्रियतेऽद्यतनै कैश्चित्कैश्चिन्नैव त्वशक्तितः ॥”

प्रगल्भते प्रगल्भ । गल्भ धाट्यर्थे । को वेत्ति तदभिप्रायमिति निरुक्त्या कवते कोविदः^७ । विशेषेण पाप शृणोति विशारदः^८ । क्षेत्रज्ञः । कृतहस्तः । कृतमुखः । कृतकर्मा । दक्षः । शिक्षितः । २०

विदग्धश्चतुरः

द्वौ चतुरे । विदह्यते^९ विदग्धः । पुरुषार्थान् चतते याचते चतुर ।

धूर्तश्चादुकृन् कितवः शठः ।

१ “तिर्यञ्च” इत्यकारान्तपाठश्चिन्त्य । वप्रत्ययान्तेऽन्ततावेव “तिरस्तित्यलोपे” इति तिर्यादेश इति चकारान्तस्यैव युक्तत्वम् । चकारान्तत्वे चाष्टाक्षरपादे एकाक्षरोनत्वेन मूले छन्दोमङ्गलश्च । न चाकारान्तस्तित्यञ्चशब्द केनाऽप्यन्यकोषकारेण पश्येऽभिमत । तदुक्तम्—“पशुस्तित्यञ्चरि.” अ० चि० ४।२८१ । २ सामान्यविशेषार्थत्वादिषा पर्यायत्वाभावात्त्रयो गवीति पाठश्चिन्त्य । गोशब्द पशुविशेषे बलीवर्दादौ । चतुष्पात्पशुशब्दयोः सर्वपशुवाचकत्वात्पयायत्वमिति विवेकः । ३. का० उ० सू० १।१५ । ४ “महिङ् वृद्धौ” । महते वर्धते वा विशालकायत्वान् । औष्णादिकष्टिपच् । आगमशास्त्रस्थानित्यवाञ्छ नुम् । इत्यन्यत्र । ५ नात्र कोषान्तरसवाद । ६ पा० सू० ८।३।८९ । ७ अस्य पूर्वार्ध ध्वन्यालोकलोचने १६ कारिकाटीकायामेवमुपलभ्यते “निरूढालक्षणाः काश्चित्सामर्थ्यादभिधानवत्” इति । उत्तरार्धस्तु न समुपगत । ८ कौति प्रतिपादयति धर्मादि कौविदः । कुधातोर्विच् । वेत्तीति विदः । इगुपधेति कः । कोविदः । अथवा कवि वेदे विदा यस्येत रामाश्रमः । ९ विशेषेण शारदोऽवृष्टः प्रत्यग्रो वा विशारदः । इति हेमचन्द्रः । विशिष्टो विपरीतो वा शारदः इति रामा० । १० विशेषेण मैर्लचित्त दहति स्म विदग्धः ।

चत्वारो धूर्ते । धूर्तति स्म हिनस्ति स्म सदाचार धूर्त । चाटु करोतीति चाटुकृत् । कितवोऽस्त्यस्येति कितव । शठयतीति शठः । दण्डाजिनक । कुहक । कार्पटिक । जालिक । कौस्तुतिकः । व्यञ्जकः । मायावी । मायी ।

कापि नागरिको ज्ञेयः

५ कापि कुत्रापि ज्ञेय जातव्य । नगरे भवो नागरिकः ।

गोत्रसंज्ञाङ्गनाम तत् ॥१६५॥

चत्वारो नाम्नि । गवा वाण्या स्वाचारेण त्रायते रक्षति पालयति गोत्रम् । मज्जनं सञ्ज्ञा । अङ्गं च नाम च समाहारत्वादेकवचनम् । अङ्गयने लक्ष्यते अङ्गम् । नमनम् नाम ।

मुग्धो मूढो जडो नेडो मूको मूर्खश्च कद्वदः ।

१० सम मूर्खे । वर्मकार्येषु मुह्यति स शय प्राप्नोतीति मुग्ध । मुह वैचित्ये । मुह्यति स्म मूढ । गत्यर्थत्वादिना क्तः । हो ट । 'तवर्गो' । 'हो लोपो' । लिः । रेफ । जडति न पुण्य गच्छति । जडः । जालम्भश्च । न ईड्यते न स्तूयते केनापि । नेड । मूट् बन्धने । मृष्टे मूकः । 'मूकादयः' । 'मूक्युक्त-यर्नकपृथुकवृत्कमूकाः' । एते कप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । मुह वैचित्ये । मुह्यति कार्येषु मूर्खः । 'मुह- ' । 'मूर्च' । कुत्सितं वर्तते कद्वदः । विवेकः । बालिशः । बाडिशः । बालः । 'बद्धर । मलि' ।

१५ 'नालीक । पशुः ।

स देवानां प्रियोऽप्राज्ञो मन्दः

त्रयो मन्दे । देवानां प्रियः । ग्रथि (न्य)ल इत्यर्थः । न प्राज्ञः अप्राज्ञः । कार्येषु मन्दते स्वर्पित्वेति मन्दः ।

१ कुस्त्या चरतीति कौस्तुतिक । तेन चरतीति ठक् । २ धूर्तसामान्यार्थ इत्यर्थः । ३ वचसा आचारेण च स्वस्य रूपं रक्ष्यते । नामार्ण्ये स्वानुरूपाचारवचोभ्यामात्मानं प्रतिष्ठा-ययति । रामाश्रमस्तुदशूयते शब्दयते उच्चार्यते इति व्युत्पत्तिमाह । 'गुट् शब्दे' । ४ तदुक्तम्— 'मजा स्याच्चेतना नाम हस्ताद्यैश्वर्यमूचना' इति । अम० को ३।३।३३ । ५ अङ्गयतेऽनेनेति शेषः । नाम्ना जनोऽङ्गितो भवति । ६ नमनं नामेत्यसङ्गतम् । भावे घञि प्रणामाथकं दन्त्यनामशब्दसाधु-वापत्तेः । अतः 'ना अभ्यासे' भ्यासे उच्यते उच्यतेऽभिधीयतेऽप्याऽनेनेति विग्रहो न्याय्यः । नामन् सीमन् इति निपा-तितः । ७ अत्र 'मुहादीना वा' का० सू० २।३।४६ । इति तकारस्य धकारः । ८. 'तवर्गस्य षट्त्वर्ग-द्ववर्ग' का० सू० ३।८।५ । इति षस्य दः । ९ 'डे टलोपोदीर्घश्चोपधाया' । का० सू० ३।८।६ । इति टलोपो दीर्घश्च । १० जलति तीव्रो न भवति । डलयोरैक्ये जड इति हेमचन्द्रः । ११ नेडशब्दः कोषा-न्तरे नोपलभ्यते । एडमूकशब्दोऽवडमूकशब्दो वा वाक्कुलुतिवर्जितार्थे लभ्यते । तदुक्तम्—'एडमूकस्तु वस्तु श्रोतुमशक्नोति' इति । अम० को० ३।१।३८ । 'एडमूकौ त्वावाक्श्रुतौ' अभि० चि० ३।१२ । अतोऽत्रापि अनेडमूक इति पाठः सम्भाव्यते । जडविशेषवाचकत्वेऽपि तस्य सामान्याभिप्रायेण जडे प्रयोगः अनेडशब्दो वा वधिरार्थः सामान्याभिप्रायेण प्रयोगः । १२. का० उ० सू० २।५८ । १३ का० उ० सू० ४।१७ । १४ नात्र प्रमाणांतरमुपलब्धम् । १५ अत्रापि नान्यत्प्रमाणम् । १६ अत्राऽने-कार्यसङ्ग्रहः ३।५४ । प्रमाणम् । तदुक्तम्—नालीकोऽज्ञे शरे सन्धे नालीकं पन्नन्दने' इति । १७ 'देवानां प्रिय इति च मूर्खे' वा० ३।३।२१ । 'षष्ठ्या अलुक्' इति पा० सूत्रे ।

धीनामवर्जितः ॥ १६६ ॥

धीवर्जित । बुद्धिवर्जित । प्रतिभावर्जित । प्रज्ञावर्जित । मनीषावर्जित । धिषण्यावर्जित ।
मतिवर्जितः । सख्यावर्जित । इत्यादीनि मूर्खनामानि भवन्ति ।

षाष्टिकः कलमः शालिर्ग्रीहिः स्तम्बकरिस्तथा ।

चत्वारः शालिमेदे । षष्टिरात्रेण पच्यन्ते षाष्टिका ^१ । षष्टिदिवसैरुत्पन्ना इत्यर्थः । ^५
कलयति पुष्टिमेनेन कलमः । शालते धान्येषु शालि । अथवा सहालिना अमरेण युतः शालि । वर्हति
वर्धते ग्रीहिः । ^२ स्तम्बकरिः ।

वत्सः शकृत्करिर्जातः षोडन् षड्दशनः स्मृतः ॥ १६७ ॥

चत्वारो वत्से । मातरमभीक्ष्णं वदति वत्सः । शकृत् करोतीति शकृत्करिः । (इ) । “स्तम्ब-
शकृतोरिति” ग्रीहिवत्सयोरुपसख्यानादिन् । षड् दन्ता यस्य स षोडन् । “समासे दन्तदशषासु ^{१०}
षष उत्वं दधोर्ददौ” षड् दशनाः यस्य स षड्दशनः ।

शौण्डीरो गर्वितः स्तब्धो मानी चाहंयुरुद्धतः ।

उद्ग्रीव उद्धरो दृप्तः

नव गर्विते । शौण्डीतीति शौण्डीर । “कृशशौण्डभ्य ईरः” । गर्वोऽहंकार संजातोऽस्य
गर्वित । तारकित्वादिदर्शनात्संजातेऽर्थे इतच् । स्तम्भ्यते स्म स्तब्धः । मान पूजादिलक्षणे गर्वो विद्यते ^{१५}
अस्य मानी । अहम् अहंकारोऽस्त्यस्य अहयु । “उर्णाऽहशुभस्यो युः” ^{१५} । उद्धन्यते रूपेण उद्धत ^६ । उद्
ऊर्ध्वा ग्रीवा यस्य स उद्ग्रीवः । उद्धरति गर्वेणान्यम् उद्धर । हृष्यते दृप्तः ।

नीचश्च पिशुनोऽधमः ॥ १६८ ॥

त्रयो दुर्जने । नितरा पापं चिनोति नीचः ^१ । मैत्री पिशति मैत्रीं पेशयति वा पिशुनः ^२ । तालम्ब्य ।
पिनष्टि वा पिशुनः । “पिशुनफाल्गुनौ” नञ्पूर्वो घाञ् । न दधातीत्यधमः । “धर्मसीमाग्रीष्मा- ^{२०}
धमा” । दुर्जन । क्षुद्रः । कर्णत्रप । दोषग्राही । द्विजिह्वः ।

चौरैकागारिकस्तेनास्तस्करः प्रतिरोधकः ।

निशाचरो गूढनरो हेरिकः प्रणिधिश्च सः ॥ १६९ ॥

^१ नव चौरैः । चोरयतीति चोरः । स्वार्थे ऽणि चौरश्च । एकागारं प्रयोजनमस्येत्यैकागारिकः ।

१ “षष्टिकाः षष्टिरात्रेण पच्यन्ते” पा० ५।१।९० । इति कन् प्रत्ययो रात्रशब्दलोपश्च ।
२ स्तम्ब करोतीति, स्तम्बकरि । “इः स्तम्बशकृतोः” । का० सू० ४।३।२५ । इति कृञ् इप्रत्यय । ३
का० सू० ४।३।२५ । ४ का० उ० सू० ३।४।८ । ५ “उर्णाऽहशुभस्यो युः” इति हे० श० ७।२।१७ । ६
उत्कण्ठ इति गच्छति हिनस्ति वा० उद्धत इति हेमचन्द्रः । ७ ह्रस्वार्थेऽयं शब्दो गतः । तत्र न्यञ्जतीति
विग्रह उक्तः । अत्र पिशुनार्थानुरोधेन विग्रहभेदः । निपूर्वकाचिनोतेर्बाहुलकाड्डः । उपसर्गदीर्घश्च ।
अन्यत्र तु निकृष्टमञ्जतीति विग्रहः । ८ पिशत्येकदेशेन सूचयति “क्षुषिपिशिमिधिम्यः कित्” उ० सू०
३।५।५ इत्युनन् । पिशुनयति अपिशुनति वा । “अपिशयति खण्डयतीति भोजः” इति हेमचन्द्रः ।
९ का० उ० सू० २।६।१ । १० का० उ० सू० १।५।६ । ११ चौरादयो निशाचरान्ताः षट् चौरैः । गूढन-
रादयः प्रणिष्यन्तास्त्रयो गुप्तचरे । इति पाठ उचितः । तदुक्तम्—“हेरिको गूढपुरुषः । प्रणिधिः”—
अभि० चि० ३।३।६७ ।

स्तेनयति स्त्यायति वा स्तेनः^१ । उभयम् । तस्यति परद्रव्यं द्रव्यं नयति तस्करः । “तसेः^२ करः” । अथवा कृञ् तत्पूर्व । तत्करोतीति तस्करः^३ । तदाद्यङ् । नाम्यन्तगुणः । रुढित्वात्तस्य सकारः । प्रतिगुणदि मार्गे प्रतिरोधकः । निशा चरतीति निशाचरः । गूढश्चाद्यो नरः गूढनरः । हिनोति परराष्ट्रं गच्छति हेरिकः । प्रकर्षेण नितरां गुप्तो धीयते ध्रियते वा प्रणिधिः । दस्युः^४ । परास्कन्दी । मल्लिस्तुचः ।
५ मोषक । प्रतिमोषकः ।

प्रस्तरोपलपाषाणदृषद्वातुः शिला धनः ।

प्रस्तृणायाञ्छादयति “प्रस्तरः । काठिन्यमुपलति^५ उपलम् । उभयम् । पिनष्टि सर्वे^६ पाषाणः । पासानश्च । दृणाति चूर्णयति द्रियते आद्रियते वा कार्यार्थं दृषत् । क्षियाम् । दधाति “धातु । शिनोति तनूकरोति^७ शिला । शिनी च^८ । क्षियाम् । हन्यते^९ घन । अश्मन् । प्रावन् । पुलकश्च^{१०} ।

१०

तत्र जातमयो लोहम्

द्वौ लोहे । तत्र तस्मिन् पाषाणे जातम् उद्भवम् तत्रजातम् । प्रस्तरोद्भव । उपलोद्भवः । धातुद्भवः । दृषदुद्भवः । शिलोद्भवः । घनोद्भवः । इत्यादि लोहनामानि भवन्ति । अयते सर्वविकार सान्तम् अयः । लुनाति सर्वे लोहम् ।

शातकुम्भं नयेत्परम् ॥ १७० ॥

१५

तत्र पाषाणे उद्भवानि सुवर्णनामानि भवन्ति ।

क्षामं शान्तं कृशं क्षीणं हीनं जीर्णं च वैरिणाम् ।

शीर्णविसानं दूनं च

नव कृशे । क्षायति स्म क्षामम् । शाम्यति स्मशान्तम् । कृशम् । क्षीणम् । हीनम् ।

१ “स्तेन चौये” । चुरादिः । पचाद्यच् । २ का० उ० सू० ६।३ । ३ “तदाद्याद्यन्तान्त-
कारबहुधाहर्द्वाविभानिशाप्रभाभाश्चित्रकृत् नान्दीकिलिपिलिविलिभक्तिचेत्रजङ्घाधन्वरुःसङ्ख्यासु च”
का० सू० ४।३।२३ । इति कृजष्टप्रत्ययः । ४ दस्युप्रभृतयः प्रतिमोषकान्ताश्चौरपर्याया न तु
गुप्तचरपर्याया । गुप्तचरपर्यायास्तु-यथाहवर्णः । अशर्पः । मन्त्रविद् । चरः । वार्तायनः । स्वशः ।
चारः । ५ “स्तृञ् आञ्छादने” । पचाद्यच् । ६ अथवा पलतीति पलः । ओः शम्भो पलो वोपल ।
७ “पिण्लु सञ्चूर्णने” । बाहुलकादानच् । पुरोदरादित्वादिकारस्याकारः । “पष बाधे ग्रन्थे च” ।
हलश्चेति घञ् । पषत्यनेनेति । अण्यतीत्यणः । “अण्य शब्दे” । अच् । पाषश्चासावणश्चेति विग्रहोऽप्य
न्यत्र द्रष्टव्यः । ८. “दृणाते पुगृ ह्रस्वश्चे” ति साधुः । ९. “धातुस्तु गैरिकम्” अभि० वि० । “धातुर्मन-
शिलाद्यद्रेगैरिकन्तु विशेषतः” अम० को० । इत्यादिकोपप्रमाणतः सामान्यप्रस्तरपर्यायेऽस्य पाठोऽयुक्तः ।
१०. शिनोतीति तालव्यशिधातुर्न कचिदुपलभ्यते । “शो तनूकरणे” । तस्य श्यतीति रूपम् । तनूकरो-
तीत्यर्थः । ततः शिलेति निपातो बाहुलकादौषादिकार्येण समायाति । रामाश्रमादिव्युत्पत्तिकारैस्तु “शिल
उञ्छे” शिलतीति शिला । इगुपधेति क इत्युक्तम् । तत्रान्तरतम्यं सुधीभिर्विचारणीयम् । १. उदुम्बरश्चाथ
शिली शिला चापि शिलि स्मृत” इति कल्पद्रुकोपवाक्यमत्रोपोद्बलकम् । १२ “मूर्तौ घनिश्च” का० सू०
४।५।५० । हन्तेरत्र घनादेशश्च । १३. तदुक्तम्-“पुलकं कृमिभेदे स्यान्मणिदोषे शिलान्तरे । गजान्नपिण्डे
रोमाञ्चे गल्बर्कहरितालयौ ।” वि० को० का० व० ११६ ।

जीर्यते स्म जीर्यम् । शीर्यते स्म शीर्यम् । अवस्यते अवसानम्^१ । दूयते स्म दूनं च । हे राजेन्द्र, तव वैरिणां शत्रूणां भवतु इति प्रयोजनीयम् ।

धैर्यं शौर्यं च पौरुषे ॥१७१॥

त्रयः^२ पौरुषे । धीरस्य भावो धैर्यम् । शूरस्य भावः शौर्यम् । पुरुषस्य भावः पौरुषम् । युष्माकं भवतु इत्यध्याहार्यम् ।

५

क्षिप्राशुमङ्क्ष्वरं शीघ्रं सहसा झटिति द्रुतम् ।

तूर्णं जवः स्यदो रंहो रयो वेगस्तरो लघुः ॥१७२॥

षोडश^३ वेगे । क्षिपति^४ निरस्यति क्षिप्रम् । रक्षत्येव उणादौ शतव्य । अश्नुते आशु । कृपायाजीति उण् । मञ्जति महति वा मङ्क्षुः^५ । इयति मान्तमव्ययम् अरम् । अदन्त च अरम् । शेते कार्ये शीघ्रं (शिङ्घ) ति व्याप्नोति वा शीघ्रम् । सहते सहसा^६ । अव्ययम् । झटति सघातीभवति इदन्तमव्ययम् । झटिति^७ । द्रवति स्म द्रुतम् । त्वरते स्म तूर्णम् । जवन जवः । जु गतो । स्यन्दते स्यदः । “स्यदो जवः” इति साधुः । रहयत्यनेन रहः । रयते रीणाति वाऽनेन रयः । वीय (विज्य) ते वेगः । तरत्यनेन तरः । “सर्वधातुभ्योऽसुन्” । लङ्घते भूमि लघुः । सवेगः । गतिवचनो जवो धर्मवचना आशुशीघ्रादय इत्यर्थभेदः ।

१०

सदागतिप्रस्तावादाह—

१५

साधीयोऽत्यर्थमत्यन्तं नितान्तं सुष्टु वै भृशम् ।

सत भृशे । साधुभ्यो हित साधोयः^१ । ईयसु । अतिक्रान्तोऽर्थं वेला मात्राम् अन्तं च अत्यर्थम् । अत्यन्तम् । अतिवेलम् । अतिमात्रं च । निताम्यति स्म नितान्तम् । सुष्टौति सुष्टु ।

१. अनावसानभिन्ना अष्टावपि शब्दा विशेष्यनिष्ठास्तेन कुटुम्बमिति विशेषमध्याहार्यं हे राजेन्द्र तव वैरिणां कुटुम्बं क्षाम भवतु । एव शान्तं कुशमित्याद्यपि योज्यम् । अवसानशब्दस्य भावत्यु-
बन्तत्वात् तव वैरिणामवसानं नाशो भवत्विति विवेकः । अवस्यतेऽवसानमिति टीकोक्तविग्रहस्तत्त्वसङ्गतः ।
अवपूर्वस्य “षोऽन्तं कर्मणि” इत्यस्य भावलोपि अवसीयते इति रूपम्, नत्ववस्यते इति । कर्त्तृणि लटि दिवादी अवस्यतीति परस्मैपदमेव । नापि कर्त्तृकान्तोऽवसानशब्दः । क्तप्रत्यये “अवसित” इति रूपस्यैव सर्वसम्मत-
त्वात् । तस्मादवसायतेऽवसायो वा अवसानमिति विग्रहो युक्तः । २. कोषान्तरप्रमाणतो व्यवहाराच्च
धैर्यादिशब्दानां परस्परकर्मभेदात्पर्यायानर्हत्वेऽपि बलसामान्यविवक्षया त्रयः पौरुषे इत्युक्तम् । ३. गतिव-
चनो जवो धर्मवचना आशुशीघ्रादय इत्यर्थभेदस्य वक्ष्यमाणात्वात् क्षिप्रादयस्तूर्णान्ता नव शीघ्रायै,
जवादयो लघ्वन्तास्सप्त वेगायै इति सुवचम् । “द्राक् क्षणेऽह्वाय झटिति” एतत्सहैवास्य शीघ्रार्थतया पाठे
कर्त्तव्येऽपि पृथगस्य पाठो झटितिशब्दपुनरुक्तिश्च दोषः । ४. क्षिपति विलम्बमिति शेषः । ५. “दु मस्जो
शुद्धौ” । बाहुलकात्सु । मस्जिनशोरिति नुम् । स्कोरिति सलोपः । मञ्जति कालाल्पत्वे मङ्क्षुः । ६. “षह
मर्षणे । असा प्रत्ययः यद्वा सहस्यति । “षोऽन्तकर्मणि” । आप्रत्ययो ङित् । विभक्त्यन्तप्रतिरूपकमाका-
रान्तमव्ययम् ? उदाहरणम्—“सहसा विदधीत न क्रियामित्यादि” । ७. “झट सङ्घाते” । औणादिक
इतिः । ८. का० सू० ४।१।३५। स्यन्देर्धञि नलोपो दीर्घाभावश्च । स्यन्दनं स्यद इति भावविग्रहो
न्यायः । ९. “ओ विजी भयचलनयोः” । १०. का० उ० सू० ४।५६ । ११. अतिशयेन साधु बाटं वा
साधीय इति । साधुभ्यो हित इति टीकोक्तविग्रहस्तु न सङ्गच्छते । अतिशयार्थे ईयसो विधानात् । साधीय
इति मूलोक्तपदस्य क्लीबत्वेन हित इति पुविग्रहोऽपि तथैव ।

^१अपष्टादयः—अपष्टु दुष्टु सुष्टु हरिद्रु मितद्रु शतद्रु शङ्कु धनु इत्यादयः । वै अन्वयम् । विभर्ति भृशम्^२ ।

स्फुटं साधु खलु स्पष्टं विशदं पुष्कलामलौ ॥१७३॥

सप्त निर्मले । स्फुरत्यभिप्रायोऽस्मात् ^३स्फुटम् । साध्यतीति साधु । खलतीति खलु^४ । स्पष्टयते स्म स्पष्टम् । विशति चित्ते विशदम् । पुष्पातीति पुष्कलम् । न मलमस्मिन् अमलम् ।

५ प्रकाशम् । प्रकटम् ।

चित्राश्चर्याद्भुतं चोद्यं विस्मयः कौतुकोऽप्यहो ।

षट् कौतुके । चित्रं चयने । चिनोतीति चित्रम्^५ । आचरतीत्याश्चर्यम्^६ । पारस्करादि-
त्वास्तुट् । भू सत्तायाम् । अद् पूर्वः । अद् विस्मितो भवत्यत्र अद्भुतः । “अदि भुवो डुत ०” । चोद्यते इति
चोद्यम्^७ । विस्मीयते इति विस्मयः । कुतुकस्य भावः कौतुकम् । अहो लोका आश्चर्यम् इति
१० प्रयोजनीयम् ।

अभियोगोद्यमोद्योगा उत्साहो विक्रमो मतः ॥१७४॥

पञ्चोद्यमे । अभियोजनम् अभियोग । यमु उपरमे । यम् उद्पूर्वः । “चुरादेशच्^१”—इत् ।
“अस्योप० १ ०”—दीर्घः । उद्यामि इति जातम् । “मानुबन्धाना^२” ह्रस्वः । उद्यमि जातम् । उद्यमनमुद्यमः ।
भावे घञ् । “कारितस्य० १ ०” । उद्योजनम् उद्योगः । उत्सहनमुत्साहः । विक्रमश्च विक्रमः ।

५१

रहोऽनुरहसोपांशु रहस्यं च भिनत्ति कः ।

चत्वार एकान्ते । रहति त्यजति जनः सङ्ग यत्र सान्त रह । क्लीबे । अव्यय च । अनुगत
रह अनुरहस्यम् । “^३अन्ववतप्तेभ्यो रहस्” । उपाश्रुते अव्ययमुदन्तम् उपांशुः । रहति भव रहस्यम् ।
कः पुमान् भिनत्ति विदारयति । प्रच्छन्नम् । एकान्तम् । नि शलाकम् । उपह्वरम् । विजनम् ।
विभक्तिम् । जनान्तिकम् ।

२०

कीनाशः कृपणो लुब्धो गृध्नुर्दीनोऽभिलाषुकः ॥ १७५ ॥

षट् कृपणे । लोभेन क्लिश्यति बाध्यते ^१कीनाशः । कीं वाणीं याचकानां नाशयति विनाशय-
तीति कीनाशः । कल्पते रक्षितु न तु दातु कृपणः । लुब्धति स्म लुब्धः । गृध्नाति गृध्नः । गृध्नु-
रित्यपि
स्यात् । लोभेन द्योतते शोभते (द्योते क्षयति) दीनः । दीङ् क्षये । क्वचित् हानः इति पठन्ति । लष
कान्तो । अभिपूर्वः । अभिलषतात्येवंशालः अभिलाषुकः । “शुकमगमहनवृषभूत्यालसपतपदमुकट्^२” ।

१. का० उ० सू० १।१५ । इति कुप्रत्ययः । २. भृशतोः शप्रत्ययः किदित्यर्थः । भृश्यतीति
भृश वा । “भृशु भ्रशु भ्रपतने” । दिवादि । इगुपधेति कः । भृशिरत्रान्तर्भावितण्यर्थः । ३. स्फुटतीति
कट्विग्रहो न्याय्यः, नत्वपादानकः तत्र घञि स्फोट इत्यापत्तेः । अत्रेगुपधेति कः । ४. “खल सङ्घर्षे” ।
बाहुलकादुः । खलुशब्दो नानार्थः । तदुक्तम्—“निषेधवाक्याऽलङ्कारे जिज्ञासाऽनुनये खलु” । अम० को०
३।३।२२५ । ५. “चित्र चित्रकीरणे” । चित्रयतीति चित्रम् । पचाद्यच् । इत्यन्यत्र । ६. आ इति
चर्यतेऽभिनीयते इति विग्रहोऽन्यत्र । “आश्चर्यमनित्ये” इति सुट् । ७. का० उ० सू० ४।२५ । ८. चोद्यशब्द
आश्चर्यार्थः । तदुक्तम्—“चोद्यन्तु प्रेये प्रश्नेऽद्भुतेपि च” अने० स० २।३६२ । ९. का० सू० ३।२।११ ।
१०. का० सू० ३।६।५ । ११. का० सू० ३।४।६५ । १२. का० सू० ३।६।४४ । इतीनो लोपः । १३. का० सू०
३।४।४१ । अत्र राजादिवृत्तिः २९ । १४. “क्लिशू विवाघने” । “क्लिशेरीचोपधाया कन् लोपश्च लो नाम्
च” पा० उ० सू० ५।६६ । १५. का० सू० ४।४।३४ ।

कदर्यः । किम्पचान । मितम्पच । क्षुल्ल । क्षुल्लक । क्लीबः । क्षुद्र । वराकश्च ।

पाशनीतः सितो बद्धः सन्धानीतो नियन्त्रितः ।

नियामितः शृङ्खलितः पिनद्धः पाशितो रिपुः ॥ १७६ ॥

नव बद्धे । पाशं नीतः पाशनीतः । सीयते स्म सित । बध्यते स्म बद्धः । सन्धा प्रतिशा नीतः प्रापितः सन्धानीतः । नियन्त्रं सजातमस्य नियन्त्रित । नियामी जातोऽस्य नियामितः । शृङ्खला सजाताऽस्येति शृङ्खलितः । तारकितादिदर्शनादितच् । पिनह्यते स्म पिनद्धः । पाशः सजातोऽस्य पाशितः । क रिपुः शत्रुः ।

कान्तं च कमनं कप्रं कमनीयं मनोहरम् ।

अभिरामं र(रा)मणीयं रम्यं सौम्यं च सुन्दरम् ॥ १७७ ॥

दश वरिष्ठे (अतिमुन्दरे) । काम्यते कान्तम् । काम्यते कमनम् । कामयते इत्येवशीलं कप्रम् । काम्यते वाञ्छयते कमनीयम् । “तव्यानीयौ” । मनोहरति मनोहरम् । मनोहारी । मनोरमम् । अभिरमणम् अभिरामम् । रमणस्य (णाय) हित रमणीयम्^२ । रम्यते रम्यम् । सोमस्य भावः सौम्यम्^३ । सुन्द सौत्रोऽय सुन्दति सुष्ठु नन्दयति इति निरुक्त्या सुन्दरम्^४ ।

चारु श्लक्ष्णं च रुचिरं प्रशस्तं हृद्यबन्धुरम् ।

दर्शनीयं मनोज्ञं च

अष्टौ मनोज्ञे । चरन्ति नेत्राण्यत्र चारु । शिष्यते युज्यतेऽनेन श्लक्ष्णम् । रोचते सर्वेभ्यो रुचिरम् । प्रशस्यते स्म प्रशस्तम् । हृदयस्य प्रियम् हृद्यम् । चित्तं बध्नाति बन्धुरम् । दृश्यते दर्शनीयम् । मनो जानातीति मनोज्ञम् ।

चित्तपर्यायहारि च ॥ १७८ ॥

चित्तहारि । मनोहारि । इत्यादीनि मनोहरनामानि ज्ञातव्यानि ।

अवश्यायं तुषारं च प्रालेयं तुहिनं हिमम् ।

नीहारम्

षड् हिमे । अवश्यायते अवश्यायः । “दिहिलिहिलिषिष्वस्त्रिभ्यतीण्श्याऽऽता च^१ णप्रत्यय । तुष्यन्त्यनेन तुषारः । प्रलयादागत प्रालेयम्^२ । तोहयत्यर्दयति तुहिनम् । तुहिर् अर्दने । हिनोति वर्धते जलमनेन हिमम् । निहियते नीहारः । मिहिका । धूमिका । देश्याम् ।

१ का० सू० ३।७।९ । २ रमणाय हितमिति विग्रहो युक्तः । तस्मै हितमिति चतुर्थ्यन्ताच्छ्र ।

मूले छन्दोभङ्गदोषवारणाय रमणीयमेव रामणीयम् इति स्वार्थिकोऽपि कार्यः । ३ सोमस्य भाव इति विग्रहोऽयुक्तः । “प्रकृतिजन्यबोधे प्रकारिभूतो भावः” इति सिद्धान्तात् सौम्य इत्यस्य सोमत्वमित्यर्थोपपत्तेः । अतः सोमो देवताऽस्येति व्युत्पत्तिः, “सोमाट्ठ्यण्” । इति ट्यण् । अथवा सोम इव सोमः । ततश्चतुर्वर्णादित्वात्प्यण् इति रामाश्रमः । ४ सुष्ठु द्वियते आद्रियते । द्रुधातोर्प् । पृषोदरादित्वान्नुम् । सुष्ठु उनत्ति आर्दीकरोति चित्तं वा । सुपूर्वात् “उन्दी क्लेदने” उन्मदधातोर्बाहुलकादरः । शकन्धादित्वात्पररूपम् । इति रामाश्रमः । ५ नेत्र मनो वेति शेषः । “श्लिष आलिङ्गने” । “श्लिषे रचोपधायाः” उ० सू० ३।१९ । इति क्लः । उपधाया अकारश्च । ६ का० सू० ४।२ । ५८ । ७ प्रलीयन्ते पदार्था अत्रेति प्रलयो हिमाचलः । तस्मादागत प्रालेयम् । अण् । केकयमित्रयुप्रलयानां यादेरियः पा० सू० ७।३।२ । इति यादेरियादेशः ।

तत्करं विद्धि मृगाङ्कं रोहिणीपतिम् ॥ १७६ ॥

तस्य करस्तत्करस्तम् । हिमशब्दात्करशब्दे प्रयुज्यमाने चन्द्रनामानि भवन्ति । अवश्यायकर ।
तुषारकरः । प्रालेयकरः । तुहिनकरः । हिमकरः । नीहारकरः । मृगाङ्कः । रोहिणीपति । अष्टौ नामानि
विद्धि जानीहि ।

५

पुष्पागं सन्नरं प्राहुः

द्वौ प्रधानपुरुषे । पुमाँश्चासौ नागः श्रेष्ठः पुष्पागः । संश्चासौ नर सन्नरः । प्राहुः ब्रूवन्ति ।

तिलकं च विशेषकम् ।

ललाटिका ललामापि पूर्णवाहं तथा द्रुमम् ॥१८०॥

१० षट् तिलके । तिलकाकृतिः तिलकः । तिलतीति तिलकम् । विशिनष्टीति विशेष । स्वार्थे कः ।
विशेषकः । लल्यते ललाटम् । के प्रत्यये ललाटिका । लल्यते ललामा । पूर्णं वाहयतीति पूर्णवाहः ।
द्रवति वृद्धि गच्छति द्रुमः । तमालपत्रम् । चित्रकम् ।

अञ्जनं कज्जलं नागं गजपाटलमारुणम् ।

१५ षट् कज्जले । अन्यतेऽनेनेत्यञ्जनम् । कषति नेत्रवैरूप्य कज्जलम् । न शोभाम
अगति गच्छति नागम् । गजति शोभया माद्यति गजम् । पाटलाया इदम् पाटलम् । अञ्जति गच्छति
शोभाम आरुणम्^३ ।

सालं परिधि वृक्षं च

त्रय प्राकारे । सरति गच्छति कालान्तर सालः । परिधीयते वेष्टयते अनेन परिधि
वृणोति नगरमाच्छादयति वृक्षम्^४ ।

कुल्यां स्त्रीं सारणीं विदुः ॥१८१॥

२० त्रयः^५ पानीयनिर्गमनमार्गे । कुले गृहे साधुः कुल्या । स्त्रुणाति वैरूप्यमाच्छिनति स्त्री ।
सरत्यनया सारणी । तां विदुः कथयन्ति घनञ्जयकवयो भाष्यकर्तारोऽमरकीर्त्याचार्याश्च ।

चारोऽवसर्पः प्रणिधिर्निगूढपुरुषश्चरः ।

पञ्च^६ चारे । चरति शत्रुमण्डले चारः^७ । अवसर्पति अवसर्प । अपसर्पश्च । प्रकर्षेण

१ अत्र तिलकविशेषके टीकोक्ततमालपत्रचित्रके च ललाटकृततिलकाऽलङ्करणे । तदु-
क्तम् —“तिलके तमालपत्रचित्रपुण्ड्रविशेषका ” । अभि० चि० ३।३।७ । ललाटिका पत्रसमूहकृत-
ललाटभूषणम् । तदुक्तम् —“पत्रपाश्या ललाटिका” अभि० चि० ३।३।९ । ललामा तु सीमन्ताग्रे मरु-
मणीभिरिव धार्यमाणं रत्नादिकृतभूषणम् । तदुक्तम् —“पुरोन्यस्त ललामकम्” अभि० चि० ३।३।६ ।
पूर्णवाहद्रुमयोस्तु कोषान्तरे पाठो नोपलब्धः । २ षट् कज्जले । इत्यविचारसहम् । अञ्जनकज्जलौ
समानार्थौ । नागगजपाटलाख्या ओष्ठकपोलादिरञ्जकलोहितरङ्गविशेषवाचकाः । तदुक्तम्—अनेकार्थ-
सङ्ग्रहे—“नागो मतङ्गजे सर्पे पुन्नागे नागकेसरे” २।३।४ । “पाटलन्तु कुसुमश्चेतरकयोः” ३।७०।१ ।
“अरुणोऽनूरुसूर्ययो । सन्ध्या रागे बुधे कुण्डे निःशब्दाऽव्यक्तरागयो” ३।१।९८ । ३ अरुणमेव आरुणम् ।
४ वृक्षशब्दस्य सालार्थे कोषान्तरसंवादो नोपलब्धः । ५ अत्र द्वाविति वक्तव्यम् । स्त्रीशब्दोऽत्र कुल्या-
सारण्यो स्त्रीलिङ्गबोधकः ; तत्पर्यायः । ६ पूर्वमुक्तेऽपि सिंहावलोकनन्यायेन चारोऽयं न्यानपि शब्दान्
समुच्चिनोति । ७ चरति शत्रुमण्डले चरः , चरेरच् । तत् स्वार्थिकोऽण् । चर एव चारः ।

नितरां गुह्यो धीयते प्रणिधिः । निगूढश्चासौ पुरुषः निगूढपुरुषः । चरतीति चरः । स्पशः । १ यथार्थ-
वर्णः । मन्त्रशशच ।

तद्वानुक्तः सहस्राक्षः

तस्मात् पूर्वोक्तशब्दात् परं धान् इति प्रयुज्यमाने सहस्राक्षनामानि भवन्ति । निगूढ-
पुरुषवान् । चरवान् इत्यादीनि शातव्यानि ।

५

सत्यार्थं सूनृतं ऋतम् ॥१८२॥

सत्यार्थं द्वौ । सु सुष्टु ऋत सत्यं सूनृतम् । पृषोदरादित्वाद्भाडागमः । ऋच्छति गच्छति जनः
प्रत्ययमत्र ऋतम् । तथा चामरकोषे—“सत्यं तथ्यमृतं सम्यक् ।”

निस्तलं वतुलं वृत्तम्

त्रयो वतुले । निर्गतं तलं प्रतिष्ठाऽस्य निस्तलम् । अथवा निर्गतं तलादधोभागान्निस्तलम् । १०
भूमौ न तिष्ठति वा । वर्तते भ्रमति वतुलम् । वृत्त्यते स्म वृत्तम् । सर्वे त्रिषु ।

स्थपुटं विषमोन्नतम् ।

विषमोन्नते स्थपुटम् । स्थापयत्यात्मनो विषमोन्नतत्वे स्थपुटम् । प्रायः क्लीबे ।

दीर्घं प्रांशु

द्वौ दीर्घे । दृणाति दीर्घम् । प्राश्रुते व्याप्नोतीति प्रांशुः ।

१५

विशालं च बहुलं पृथुलं पृथु ॥१८३॥

चत्वारो विस्तीर्णैः । विस्तार विशालं विशालम् । बहून् लातीति बहुलम् । प्रपते वर्षते
पृथुलम् । गुणमात्रवृत्तेर्ल । पर्थते पृथुः । बृहत् । उरुः । गुरु । विस्तीर्णः ।

उल्बणं दारुणं तिग्मं घोरं तीव्रोऽग्रमुत्कटम् ।

सप्त घोरे । उल्बणमुल्बणम् । पृषोदरादित्वात्पक्षे लः । दारयति दारुणम् । तितित्तीति
तिग्मम् । घुरति घोरम् । तीवति तीव्रम् । तीव्रस्यौल्ये रक् । उच्यति उग्रम् । उत्कटयते
उत्कटम् । प्रतिभयम् । भीमम् । भयानकम् । आभीलम् । भीषणम् । भीष्मम् । भैरवम् ।

२०

शीतलं तिमिरं याथं मन्दं विद्धि विलम्बितम् ॥ १८४ ॥

१ यथार्थं यथा अर्थं प्रयाजनं वर्णो जातिः प्रसिद्धिर्वा यस्येति तदर्थः । २ अमं को०
१।७।२२। ३ वस्तुतस्तु प्राशुदीर्घयोरर्थभेदः । दीर्घविस्तृतायतशब्दा पर्याया । प्राशुस्तुलत । तदुक्तम्—
‘दीर्घमायतम्’ अमं को० ३।१।७० । ४ ‘दृ विदारणे’ । बाहुलकादृषक । दृणाति ह्रस्वत्वमिति दीर्घः ।
५ प्रकृष्टा अश्वोऽस्येत्यपि । ६ ‘विश प्रवेशने’ । बाहुलकादाल । रामाश्रमस्तु—‘वे शालच्छुद्धौ’
इति० पा० सूत्रेण विशब्दाच्छालप्रत्ययमाह । ७ उद्बणतीति उल्बणम् । पृषोदरादित्वादुदील इति
पाठोऽत्र युक्तः । ‘वण शब्दे’ । अच् । उल्बणशब्दो वस्तुतः स्पष्टार्थकः, न तु दारुणार्थकः । स्पष्टो
ह्युद्बेजको भवति खलानाम् । अत उद्बेजकत्वसामान्यात्तयाह । ८ तितित्तीति क्षमार्थकत्वादत्र न
युक्तम् । ‘तिज निशाने’ । निशानं तिङ्गणीकरणम् । तेजयतीति तिग्मम् । धमकप्रत्ययः । ९ ‘घुर भीमा
र्थशब्दयोः’ । घोरयतीति घोरम् । प्यन्तादच् । १० उच्यति क्रुधा सम्बध्यते उग्रम् । ‘उच समवाये’ ।
दिवादिः । ‘ऋज्रेन्द्र’ इत्यादिना रक् गश्चान्तादेशः ।

पञ्च कार्यविलम्बे (म्बिते) । शीतं लाति मन्दो भवति कार्ये शीतलम् । ताभ्यति स्वकार्य-
मिच्छति तिमिरम्^१ । स्तिमित स्थितिं वा पाठः । यया भव याथम् । मन्थते मन्थम् । विलम्ब्यते
स्म विलम्बितम् । विद्धि जानीहि ।

स्वभावः प्रकृतिः शीलं निसर्गो विश्वसो निजः ।

५ पञ्च स्वभावे निजे । स्वः स्वकीयो भावः स्वभावः । प्रकरणं प्रकृतिः । शील्यते शीलयति
वा शीलम् । निसृज्यते निसर्गः । विश्वसितीति विश्वस^२ । विश्वासश्च । विश्रम्भ ।

योग्या गुणनिकाऽभ्यासः

त्रयोऽभ्यासे । युज्यते योग्या^३ । गुण्यते ऽहर्निशं गुणनिका^४ । अभ्यसनमभ्यासः ।

स्यादभीक्षणं मुहुर्महुः ॥ १८५ ॥

१० मुहुर्महूर्त्वारं वारं स्यात् भवेत् । अभीक्षणम् । अभीक्षणम् अभीक्षणम् । अभिमुखमीक्षते
वा अभीक्षणम्^५ । नितराम् ।

मृषालीकं मुधा मोघम्

चत्वारोऽलीके । मृष्यते सहते नारकं दुःखमनेन मृषा । आदन्तमव्ययम् । अलति स्वस्वाङ्गा-
(स्वर्गा)न्निवारयति अलीकम् । मुञ्चति त्यजति निमित्तं मुधा । आदन्तमव्ययम् । मुह्यतेऽत्र चित्तं मोघम् ।

विफलं वितथं वृथा ।

१५ निष्फलवचने त्रयः । विगतं फलं विफलम् । विगतं तथा सत्यं यस्मात् वितथम् । वृथो-
त्याच्छादयति गुणान् वृथा । अव्ययम् ।

विधुरं व्यसनं कष्टं कृच्छ्रं गहनमुद्धरेत् ॥ १८६ ॥

२० पञ्च कष्टे । कष्टेन विधुनोति शरीरं विधुरम् । व्यस्यते अनेन व्यसनम् । कष्यते
(कषति) कष्टम् । कृणोति छिनत्ति दुःखेन कृच्छ्रम्^६ । गह्यते गहनम् । उद्धरेत् निस्तरेत् ।

समस्तं सकलं सर्वं कृत्स्नं विश्वं तथाऽखिलम् ।

षट् समस्ते । समस्यते एकीकरोति समस्तम्^७ । समं ग्रसते समग्रम्^८ । समानं कलयतीति
सकलम् । सरति सर्वम् । कृन्तति वेष्टयति व्याप्नोति कृत्स्नम् । विशति तिष्ठति सर्वत्र विश्वम् ।
नास्ति खिलं शून्यमस्याखिलम् । निखिलं च ।

१ “तिम आर्द्रोभावे” । तिम्यति आर्द्रोभवति तिमिरः । विलम्बशीलो जन सर्वदाऽर्द्र इव
शीतः स्फूर्तिरहितश्च भवति । २ विश्वसशब्दस्य प्रकृत्यर्थे प्रमाणान्तरं नास्ति । एव विश्वासो विश्रम्भोऽपि ।
विश्वसशब्दाऽन्वाख्यानमपि व्याकरणादस्पष्टम् । अतोऽत्र त्रिवृषि मूलटीके एव प्रमाणम् । ३ योगे
चित्तैकाग्र्ये साध्वीति योग्या “तत्र साधु”रिति यदन्यत्र । ४ गुण्यते गुणना । चुरादिणिजन्ताद् भावे
“ण्यासश्च्येति युच् । ततः स्वार्थे क । गुण्येव गुणनिका । ५ अभिच्छाति अभिच्छाम् । “क्षु तेजने” ।
बाहुलकाद्भुम् । अन्येषामपीति दीर्घः । इति रामाश्रम । ६ अत्र मुधाऽलीकशब्दौ वक्ष्यमाणौ वितथ-
शब्दश्चासत्यवाचकः । मुधामोघशब्दौ विफलवृथाशब्दौ च वक्ष्यमाणौ व्यर्थवाचका इति विवेकोऽ-
न्यत्र । तदुक्तममरे—“मृषा मिथ्या च वितथे” ३।१।१५ । “अलीकं त्वप्रियेऽनृते” ३।३।१२ । “मोघं
निरर्थकम्” ३।१।८१ । व्यर्थके तु वृथा मुधा” ३।४।४ । “वितथं त्वनृतं वचः” १।८।२१ । इति ।
७. कर्षति कृन्तति वेति क्षी० स्वा० । ८ समस्यते स्म समस्तम् । “अमुं क्षेपणे” । कर्मणि कः ।
९ सङ्गतमग्रमस्य समग्रम् । १० सह कलाभिर्भवते सकलम् ।

शकलं विकलं खण्डं शल्कं लेशं लवं विदुः ॥ १८७ ॥

षट् खण्डे । शक्नोति काये शकलम् । शल्क च । विगता कला यस्मात् तद् विकलम् ।
खण्ड्यते खण्डः । लिशयते लेशः^१ । लिश विच्छ गतौ । “अकर्तरि च कारके संजायाम्”^२ । रौति शब्द
करोति^३ लवः । विदु कथयन्ति । अर्थम् । नेम । सामि । असम्पूर्णम् । दलं च ।

मर्म कोपं च

५

द्वौ मर्मणि । म्रियतेऽनेन मर्म । नान्तम् । कुप्यते कोपम्^४ ।

कलहं परिवादं छलं नयेत् ।

करेण हन्त्यत्र कलहः । परिवदन परिवादः । छलयती (त्यत्रे)ति छलम् ।

शोणितं लोहितं रक्तं रुधिरं क्षतजासृजम् ॥ १८८ ॥

षट् रुधिरे । शोण्यते वर्ण्यते देहोऽनेन शोणितम् । तालव्यः । रोहति देहे जायते लोहितम् । १०
रजति रम रक्तम् । रुणद्धि रुधिरम् । क्षताद् घृणाजायते क्षतजम् । अस्यते क्षिप्यते असृक् ।

सन्ततानारताजस्रान्वहं कन्यापतिर्वरः ।

त्रयः (चत्वारः) सन्तते । सन्तन्यते रम सन्ततम् । न आरतम् अनारतम् । न जम्बतीत्येवशील
मजस्रम् । अन्वहम् । कन्यापतिर्वरः नन्दतु इति प्रयोजनीयम् ।

उद्वाहः परिणयनं विवाहश्च निवेशनम् ॥ १८९ ॥

१५

चत्वारो विवाहः । उद्वाहन उद्वाहः । परिणीयते परिणयनम् । विवाह्यते विवाहः ।
निवेश्यते निवेशनम् ।

शुषिरं विवरं रन्ध्रं छिद्रम्

चत्वारश्छिद्रे । शुष्यति जलमत्र “शुषिरम् । उपशुषीति रः । विविच्यते भूमन्मनेन विवरम् ।
गच्छति बानेन रथ्यति हिनस्ति प्राणिन वा रन्ध्रम् । छिद्यते तत् छिद्रम् । कुहरम् । विलम् । निर्व्य- २०
थनम् । रोकम् । श्वभ्रम् । वपा । शुषि ।

गर्ता च गह्वरम् ।

गर्ताया द्वौ । पतित प्राणिन गिरति गर्ता । गर्तः । गृहतीति गह्वरम् ।

श्वभ्रं रस्यं च पातालं नरकं यान्त्यमेधसः ॥ १९० ॥

चत्वारो नरके । श्वयते वर्धतेऽत्रोपरि चरतो शङ्का, श्वभिर्भ्रान्त वा श्वभ्रम् । रसाया भव २५
रस्यम् । पतन्त्यस्मिन् पातालम् । नरा कायन्त्यत्र नरकः । नारकः । पुति । अमेधस बुद्धिरहिता

१ “लिश अल्पीभावे” । दिवादि । ततो घञ्विधानमर्थानुरूपम् । २ का० सू०
४।५।४ । ३ लूयते छिद्यते लव । ऋदोरप् । टीकोक्तविग्रहस्तु न लवनायाऽभिधायी । ४ कोप-
शब्दः पेशीवाचकां मेदिन्या लभ्यते । पेशीना मर्मस्थानत्वमायुर्वेदे सम्मतम् । अत उपचारात् कोपोऽपि
मर्मैत्यभ्युन्नेयम् । तदुक्तम्—“कोषो ऽस्त्री कुड्मले पात्रे दिव्ये खड्गविधानके । जातिकोपेऽर्थसङ्घाते पेक्ष्या
शब्दादिसङ्ग्रहे” । पा०वर्ग० ६ । ५ “तिमिरुधिमदिमन्दिचन्दिवधिरुचिशुषिभ्य किरः” का०उ० १।२३ ।
शुषिरस्यास्तीति विग्रहे तु “उपशुषिमुष्कमधो र” पा०सू० ५।२।१०७ । इति र । रप्रत्ययपक्षे दन्त्यादिरयम् ।
उपशुषीति पा० सत्रे दन्त्य एव पाठः । क्षीरस्वाम्यपि दन्त्यमेव पपाठ ।

सम्यक्चारित्रहिता यान्ति गच्छन्ति नरकम् । निरय । दुर्गति ।

अदभ्रं भूरि भूयिष्ठं बंहिष्ठं बहुलं बहु ।

प्रचुरं नैकमानन्त्यं प्राज्यं प्राभूतपुष्कलम् ॥ १६१ ॥

- ५ द्वादश प्रभूते । न दभ्रमदभ्रम् । भवति प्राचुर्यमत्र भूरि, भूरिष्ठं च । अतिशयेन बहु भूयिष्ठम् । “बहो लोपो भू च बहो” “इष्टस्य^२ यिदचेति” भूरादेशो यिडागमश्च । अतिशयेन बहुलो बंहिष्ठः । वहति प्राचुर्यं बहुलम् । प्रचुरति^३ प्रचुरम् । न एक नैकम् । अनन्तस्य भाव आनन्त्यम् । प्राच्यते प्रकर्षेण वीर्यतेऽनेन वा प्राज्यम्^४ । प्राभवति स्म प्राभूतम् । प्रभूत च । पुगति पुष्कलम् । पुष्कं च । पुरुजम् । पुष्टम् ।

भवो भावश्च संसारः संसरणं च संसृतिः ।

तत्त्वज्ञश्चतुरो धीरस्त्यजेज्जन्माजवं जवम् ॥ १६२ ॥

- १० अष्टौ सवारे । भवतीति भवः । भवतीति भावः । “वा ज्वलादिदुनीभुवो णः” । ससरति अस्मिन् संसारः । संस्रियते अस्मिन् संसरणम् । ससरणं संसृतिः । जनयतीति जन्म । आजवतीति आजवम् । जवति चतुर्गत्या भ्रमति (अत्र) जव ।

ऊर्जस्फूर्जस्वी तरस्वी तेजस्वी च मनस्व्यपि ।

- १५ चत्वार (पञ्च) स्तेजोगुक्तपुरुषे । ऊर्क् ऊर्जा वाऽस्त्यस्येति ऊर्जस्वी । स्फूर्जोऽस्यास्तीति स्फूर्जस्वी । तरोऽस्यास्तीति तरस्वी । तेजोऽस्यास्तीति तेजस्वी । मनोऽस्यास्तीति मनस्वी ।

भास्वरो भासुरः शूरः प्रवीरः सुभटो मतः ॥ १६३ ॥

पञ्च सुभटे । भासते इत्येवशीलो भास्वरः^५ । भासुरः । “भिदि” भासिभञा घुर । शूरयति शूरः । शूर वीर विक्रान्तौ । प्रवीरयते प्रवीर । सुष्टु भटः सुभट । विक्रान्त ।

तनुत्रं वर्म कवचमावृतिर्वाणवारणम् ।

- २० पञ्च कवचे । तनु शरीर त्रायते रक्षति तनुत्रम् । वृणोत्यङ्गं वर्म । कव्यते वध्यते शरीरम् अनेन कवचम् । आवरणमावृति । वाणानां वारण निषेधन वाणवारणम् ।

कूर्पासं कञ्चुकम् ।

द्वौ कञ्चुके । करोति शोभा कूर्पासम् । कर्पास च । कञ्च्यते बध्यते कञ्चुकः ।

छत्रमातपत्रोष्णवारणम् ॥ १६४ ॥

- २५ त्रयश्छत्रे । वर्षातपां छादयतीति छत्रम् । त्रिषु । छत्र, छत्री । आतपात् त्रायते आतपत्रम् । उष्णस्य वारणम् उष्णवारणम् । नृपलक्षम् ।

केशं शिरोरुहं वालं कचं चिकुरमीहयेत् ।

पञ्च केशे । के मस्तके शेते केश । शिरसि रोहति शिरोरुहः । वल्यते सन्नियते वालः । मस्तके चीयते कचति वा कचः । चीयते यत्नेन चिङ्गुरः । चिकुरश्च । मूर्धजः । शिरसिजः ।

१ पा० सू० ६।४।१५८ । २ पा० सू० ६।४।१५९ । ३ प्रचुरति प्रचुरम् । घुर स्तेये । घुरादीनां णिज्जैकल्पिकः । इगुपधेति क । प्रगत घुरायां प्रचुरमिति वा रामाश्रमः । ४ प्राज्यते काम्यते “अञ्जू व्यस्त्यादौ” अञ्जेः सञ्ज्ञायामिति क्यप् । यद्वा प्रवीर्यते “अज गतिक्षेपणयोः” क्यप् । बोभावां नेति टीकाशय । ५ का० सू० ४।२।५५ । इति ख । ६ “कपिपिसिभासीशस्याप्रमदा च” का० सू० ४।४।४७ । इति वरः । ७. का० सू० ४।४।४१ ।

वृजिन^१ । कुन्तलः ।

चूडापाशं च धम्मिल्लं कबरी केशबन्धनम् ॥ १६५ ॥

चत्वार केशबन्धने । जुद संचोदने । “चुरादेशच^२” इन् । नामिनो^३ गुण । चोदन चूडा । “ऊन^४चूदपीडमृगयतिभ्य इनन्तेभ्यः सशायाम्” अङ् प्रत्ययः । कारितलोप । निपातनात् उपधाया ह्रस्वत्वम् । दस्य डत्वम् । चूडायाः शिखायाः पाशः बन्धन चूडापाशः । धम्मिः सौत्रः । धम्यन्ते केशा ५ वभ्यन्ते धम्मिल्लः । क मस्तक वृणोति कबरो नदादित्वादी । कबरी । इदन्तोऽपि कबरिः । आबन्तो वा कबरा । केशस्य बन्धन केशबन्धनम् । वंशी । प्रवेणी । वीणा च

उररीकृतमप्युरीकृतमङ्गीकृतं तथा ।

त्रयोऽङ्गीकारे । ऊरीप्रभृतीना कृता सह समासो वा भवति । तथाहि—ऊरी उररी अङ्गीकरणे विस्तारे च । आश्रुतम् । प्रतिज्ञातम् । उपगतम् । १०

अस्तुङ्कारोऽभ्युपगमे

अभ्युपगमे अङ्गीकारे अस्तुङ्कार कथ्यते । अस्त करोतीति (करणम्) अस्तुङ्कार । “कर्मण्यण्” अण् प्रत्यय । अस्त्योप० वृद्धि । व्यजनम० । “सत्यागदास्तूना कारे” । मकारागम ।

सत्यङ्कारः पणार्पणे ॥ १६६ ॥

सत्यापणे सत्य करोतीति सत्यङ्कारः ।

१५

सौहार्दं सौहृदं हार्दं सौहृद्यं सख्यसौरभम् ।

मैत्री मैत्रेयिकाज्यं सहाय्यं संगतं मतम् ॥ १६७ ॥

दश (एकादश) सख्ये । सुहृदा भावः सौहार्दम् । सौहृदम् । हार्दम् । सौहृद्यमेकमेव वाक्यम् । सख्युभावं सख्यम् । सुरस्येद (भेरिद) सौरभम् । मित्रस्य भावो मैत्री । मैत्र्या नियुनो मैत्रेयिक । न जीर्यते अज्यम् । सहाजी (श्य) ते सहाय्यम् । सगमनम् सङ्गतम् । २०

क्षेमं कल्याणमुभयं श्रेयो भद्रं च मङ्गलम् ।

भावुकं भविकं भव्यं श्वोवसीयं शिवं तथा ॥ १६८ ॥

दश (एकादश) कल्याणे । क्षिणोति क्लेशान् क्षेमम् । कल्यते जायते कल्याणम् । कल्य नीरुत्रत्वमनिति वा कल्याणम् । प्रकृष्ट प्रशस्य श्रेयस् । सान्तम् । भदते ह्लादते सुखीभवत्यनेन भद्रम् । म पाप गालयतीति मङ्गलम् । भवनशील भावुकम् । “शुकमगमहनवृषभूस्र्थालपपतपदामुकञ्” । प्रशस्तो भवोऽस्थास्तीति भविकम् । पुण्यकृतो भवितव्य भवति भव्यम् । श्व शोभनञ्च वसीयः श्वोवसीयः । श्वोवसीयस च । “श्वसो ‘वसीयस्’” । शीयते तनूक्रियते दुःखमनेन शिवम् । भाष्यविधातृणां श्रीमदमर-कोटीनां शिव भवतु । २५

१ वृजिनशब्दो भट्टगुरवाची । तदुक्तम्—“वृजिन भट्टगुर भुजमराल जिह्ममूर्तिमत्” अभि० चि० ३।९३ । लक्षणया भट्टगुरकेशोऽपि वृजिनशब्दप्रयोगः । २ का० सू० ३।२।११ । ३ का० सू० ३।५।२ । ४ का० सू० ४।५।८२ । अत्र दुर्गवृत्ति “ऊनचूदपीडमृगयतिभ्य इनन्तेभ्यो या प्राप्ते वचनम्” इत्येवरूपा । ५ अस्तुङ्करणमस्तुङ्कार । ६ का० सू० ४।३।१ । ७ “व्यञ्जनमस्वर परवर्णं नयेत्” का० सू० १।१।२१ । ८ का० सू० ४।१।२३ । ९ सत्यस्य करण सत्यङ्कारः । भावे घञ् । कर्तृ-विग्रहणीकोत्स्वयुक्त । १० का० सू० ४।४।३४ । ११ का० सू० २।६।४१ । वृत्ति २७ ।

वक्ता वाचस्पतिर्यत्र श्रोता शक्रस्तथापि तौ ।
शब्दपारायणस्यान्तं न गतौ तत्र के वयम् ॥ १६६ ॥

अस्य श्लोकस्य सुगमव्याख्या ।

तथापि किञ्चित् कस्मैचित् प्रतिबोधाय सूचितम् ।
५ बोधयेत्कियदुक्तिज्ञो मार्गज्ञः सह याति किम् ॥ २०० ॥

तथापि मया धनञ्जयकविना सूचितं कथितम् कस्मैचित् प्रतिबोधाय ज्ञानाय । उक्तिज्ञो बोधयेत् ज्ञापयेत् । मार्गज्ञः किं सह याति गच्छति, अपि तु न गच्छति ।

प्रमाणमकलङ्कस्य पूज्यपादस्य लक्षणम् ।
द्विःसन्धानकवेः काव्यं रत्नत्रयमपश्चिमम् ॥ २०१ ॥

१० एतद्रत्नत्रयमपश्चिमं नवीनमपूर्वं वर्तते ।

कवेर्धनञ्जयस्यैवं सत्कवीनां शिरोमणेः ।
प्रमाणं नाममालेति श्लोकानां हि शतद्वयम् ॥ २०२ ॥

धनञ्जयस्य कवेः, सत्कवीनां शिरोमणे इति अनुना प्रकारेण इयं नाममाला श्लोकानां शतद्वयं २०० प्रमाणमस्ति ।

१५ ब्रह्माणं समुपेत्य वेदनिनदव्याजात् तुषाराचल-
स्थानस्थावरमीश्वरं सुरनदीव्याजात् तथा केशवम् ।
अप्यम्भोनिधिशायिनं जलनिधिध्वानोपदेशादहो
फूत्कुर्वन्ति धनञ्जयस्य च भिया शब्दाः समुत्पीडिताः ॥ २०३ ॥

अहो लोका धनञ्जयस्य च भिया कृत्वा शब्दाः समुत्पीडिता सम्यक् प्रकारेण पीडिता
२० फूत्कुर्वन्ति । किं कृत्वा पूर्वं वेदनिनदव्याजात् मिषात् ब्रह्माणं समुपेत्य प्राप्य, ईश्वरं तुषाराचलस्थान-
स्थावरं सुरनदीव्याजात् प्राप्य, केशवं श्रीविष्णुं किं विशिष्टं अप्यम्भोनिधिशायिनं जलनिधिध्वानोप-
देशात् समुपेत्य सुगमोऽयं श्लोकः ।

इति महापण्डितश्रीमदमरकीर्तिना त्रैविद्येन
श्रीसेन्द्रवंशोत्पन्नेन शब्दवेधसा कृताया
धनञ्जयनाममालाया प्रथमं काण्डं
व्याख्यातम्

श्रीमद्भनञ्जयकविविरचिता

अनेकार्थ नाममाला

—०—

जिनेन्द्रं पूज्यपादं च चैलाचार्यं शिवायनम् ।

अर्हन्तं शिरसा नत्वाऽनेकार्थं विवृणोम्यहम् ॥ १ ॥

गम्भीरं रुचिरं चित्रं विस्तीर्णार्थप्रसाधकम् ॥

शब्दं मनाक् प्रवक्ष्यामि कवीनां हितकाम्यया ॥ २ ॥

गम्भीरं रुचिरं मनोज्ञं चित्रं विस्तीर्णार्थप्रसाधकम् । सुगमव्याख्याऽस्ति ।

अर्हत्पिनाकिनौ शम्भू

शम्भू इति द्विवचनान्त पदम् ।

जिंनावर्हत्तथागतौ ।

जिनां कथ्येते ।

वेदसूर्यो विवस्वन्तौ

वेदश्च सूर्यश्च वेदसूर्यौ विवस्वन्तौ सूर्यौ कथ्येते ।

विष्णुरुद्रौ वृषार्कपौ ॥ ३ ॥

विकुण्ठाविन्द्रगोविन्दौ अनन्तौ शेषशार्ङ्गिणौ ॥

शेषश्च धरणेन्द्र, शार्ङ्गि च विष्णुः शेषशार्ङ्गिणौ ।

जीमूतौ तु करिक्रीडौ पर्जन्यौ शक्रवारिदौ ॥ ४ ॥

वनमम्भसि कान्तारे

अम्भसि कान्तारे वनम् ।

भुवनं विष्टपेऽर्णसि ।

सुगमव्याख्या ।

१. श कल्याणं भवतीति शम्भुः । दुप्रत्ययः । केशवब्रह्मवाची च । तदुक्तम् — ‘शम्भुः स्याद् ब्रह्मशिवधोरर्हत्यपि च केशवे, । इति वि० लो० भा० व० ९ । हेमे च — ‘शम्भुर्ब्रह्मार्हतोः शिवे’ । २१६ । इति च । २ विष्णुः, अतिवृद्धः, जित्वरः, इत्येतेष्वपि जिनः । तदुक्तम् — ‘जिनस्त्वर्हति बुद्धेऽतिवृद्धजित्वरयोस्त्रिषु’ वि० लो० ना० व० ८ । हैमे — ‘जिनोऽर्हद्वृद्धविष्णुषु’ २।२६९ । ३ ‘विवस्वान् देवसूर्ययोः’ अने० स० ३।२१७ । अत्र देवशब्दपाठात्प्रस्तुतेऽपि देवशब्द एव युक्तः । ४ अग्निश्च । तदुक्तम् — ‘वृषार्कपिर्वासुदेवे शिवेऽग्ना च’ अने० स० ४।२१६ । ५ अनवधिराग्यनन्तार्थः । ‘अनन्तः केशवे शेषे पुमाननवधौ त्रिषु’ इति मेदिनी । ६. ‘जीमूतौ वासवेऽम्बुदे । घोषकेऽद्रौ भृतिकरे’ इति० अने० स० । ७ पर्जन्यौ मेघगर्जितेऽपि । तदुक्तम् — ‘पर्जन्यौ मेघशब्देऽपि ध्वनदम्बुद-शक्रयोः’ इति मेदिन्याम् ।

घृतं सर्पिषि पानीये विषं हालाहले जले ॥ ५ ॥
 तल्पं दारेषु शय्यायां ज्योतिश्चक्षुषि तारके ।
 घवले सुन्दरे रामो वामो वक्रे मनोहरे ॥ ६ ॥
 नक्षत्रे मन्दिरे धिष्ण्यम्

५

देधेष्टि शब्दं करोत्यत्र जनो धिष्ण्यम् । नपुसकम् । धिष शब्दे ।

वसने गगनेऽम्बरम् ।

वसने गगने अम्बरं वर्तते । अम्ब शब्द राति ददातीति अम्बरम् ।

परिधौ पादपे सालः

परिधौ पादपे सालो वर्तते । सा लक्ष्मीं लातीति साल ।

१०

“सालः शर्जतर्गो वृक्षमात्रप्राकारयोरपि” इति हेम ^१ ।

सिन्धुः स्रोतसि योषिति ॥ ७ ॥

स्रोतसि योषिति सिन्धु । स्यन्दते सिन्धु ।

सारसः शकुनौ धूर्ते

सरसि तडागे भव ^२ सारसः ।

५१

केतनं दीधितौ ध्वजे ।

केतन्ति जानन्त्यत्र केतनम् । तथा च—

“कृत्ये निमन्त्रणे चिह्ने मन्दिरे केतनं विदुः ।”

मयूखः कीलके दीप्तौ

मयते विस्तार यातीति मयूख ।

२०

पतङ्गः शलभे रवौ ॥ ८ ॥

पततीति पतङ्गः । पल्लु गता ।

अञ्जनः कज्जले नागे

कज्जले नागे अञ्जनो वर्तते । अञ्ज व्यक्तिप्रक्षणकान्तिमु । विक्रमेण ^३ अञ्जते प्रकटा-
 क्रियते अञ्जन ।

२५

सारङ्गः पृषते गजे ।

सरतीति सारङ्ग ।

सरलः प्रगुणे वृक्षे

ऋजुत्वात्सरलः ।

पुन्नागः सन्नरे तरौ ॥ ९ ॥

३०

पुमोश्चासी नाग श्रेष्ठ ।

१. अने० स० २।२२७। २. धूर्तपक्षे तु अरसेन द्वेषेण सहितः सारस इति विवेकः ।
 ३. गजाऽपि विक्रमेण जायते, कज्जलोऽपि विक्रमणवलेन अञ्जते । ४. सार दृढमङ्गं यस्येत्यपि । सरतीत्यस्य
 स्थाने सारयतीति युक्तम् । ५. “पुन्नागस्तु सितोत्पले । जातीफले नरश्रेष्ठे पाण्डुनागे द्रुमान्तरे ।” इति मेदिनी

पाञ्चजन्योऽनले शङ्खे

पञ्चजने पाताले भवः पाञ्चजन्यः ।

कम्बुः^१ शङ्खे मतङ्गजे ।

कम्बुः सौत्र कम्ब्यते वर्ण्यते कम्बु । अथ वा कवृ वर्णे उणादित्वादत्मादेव नकारागमश्च ।

कस्वरो द्युभवे द्युम्ने

५

द्युभवे स्वर्गोद्भवे द्युम्ने सुवर्णे ५० १२ । कुत्सित स्वरति कस्वरः ।

स्यन्दनं शकटेऽम्बुनि ॥ १० ॥

स्यदन्ते स्यन्दनम्^२ ।

अद्रिर्गिरिवनस्पत्योः

गिरिश्च वनस्पतिश्च गिरिवनस्पती तयोर्गिरिवनस्पत्योः । अति आकाशमित्यद्रि ।

१०

शिखरी तरुभूषयोः

शिखरमारुहतीति शिखरी ।

राजा चन्द्रमहीपत्योः ।

राजने इति राजा ।

द्विजो दशनविप्रयोः ॥ ११ ॥

१५

द्विर्जातो द्विजः ।

मोचामरस्त्रियो रम्भा

ब्रह्मर्षीनपि रमयतीति रम्भा ।

कदली ध्वजमोचयोः ।

क्रेन वायुना दल्यते विदार्यते कदली ।

२०

अशोकः सुमनस्तर्वाः

न शोको यस्माद्यस्य वा अशोकः ।

सुमनाः सुरपुष्पयोः ॥ १२ ॥

सुरश्च पुष्पं च सुरपुष्पे तयोः सुरपुष्पयोः । शोभनचित्तः सुमनाः ।

मुक्तारजतयोस्तारः

२५

तीर्यते तारः ।

भूरि भूयःसुवर्णयोः ।

पुण्यवन्तु भवतीति भूरि । क्लीवे ।

पानीयदुग्धयोः क्षीरम्^३

घस्तु अदने । सौत्रोऽयम् ।

३०

१ “पाञ्चजन्यस्तु विष्णुशङ्खे दृष्टान्तरे” इति मेदिनी । २ “कम्बु पुमान् गजे । बलये शङ्ख-
शम्भुककन्धरामलके स्त्रियाम्” इति वि० लो० बा० व० २ । ३ “स्यन्दन प्रसवे नीरे स्यन्दनस्तिनिशे रथे”
वि० लो० ना० व० १५१ । ४ राजा प्रभो च नृपतो द्वात्रिंशे रजनीपतौ । पक्षे शक्रे च पुमि स्यात्” इति
मेदिनी । ५ घस्यतेऽद्यते क्षीरम् । “घस्तु अदने” । घसेः किञ्चेति कीरः ।

पयः सलिलदुग्धयोः ॥ १३ ॥

पीयते पयः ।

कालप्रकर्षयोः काष्ठा

कालश्च घुटपादिलक्षणः ।

५

“स्वस्थे नरे सुखासीने यावत्स्पन्देत लोचनम् ।

तस्य त्रिशत्तमो भागश्चुटिरित्यभिधीयते ॥”

अथवा--

“सर्वपस्य प्रयत्नेन क्षिप्तस्य पततोऽम्बरात् ।

द्वियव यावद्ध्यान कालः स (च) घुटिः स्मृतः ॥”

प्रकर्षश्च प्रकर्षता उत्कृष्टता वा । कालश्च प्रकर्षश्च कालप्रकर्षौ तयोः कालप्रकर्षयोः काष्ठा

१० कथ्यते । काशते भासते काष्ठा । श्रान्तोऽयम् ।

कोटिः संख्याप्रकर्षयोः ।

कुटतीति कोटिः ।

“क्रियती पञ्चसहस्री क्रियती लक्षा च कोटिरपि क्रियती ।

औदार्योन्नतमनसा रत्नवती वसुमती क्रियती ॥”

१५

रन्ध्रसंश्लेषयोः सन्धिः

सन्धान सन्धिः ।

“सन्धिर्यानीं सुरङ्गाया नाट्येऽङ्गे श्लेषभेदयोः” इति हैमी ।

सिन्धुर्नदसमुद्रयोः ॥ १४ ॥

स्यन्दते सिन्धुः ।

२०

निषेधदुःखयोर्वाधा

बन्धन (वाधन) वाधा । वाधृ प्रतिधाते ।

व्यामोहो मूर्खमौढ्ययोः ।

व्यामुह्यते व्यामोहः ।

कौपीनाकारयोर्गुह्यम्

२५

गुह्यते गुह्यम् । गुह्यं सवरणे । “गुह्यमुपस्थे रहस्ये च” इति हैमी ।

कीलाल रुधिराम्भसोः ॥ १५ ॥

कीला लातीति कीलालम् । “कीलाल रुधरे नीले” इति हैमी ।

मूल्यसत्कारयोरर्घः

अर्घ्यं पूज्यतेऽनेनत्यर्घः । “व्यञ्जनाच्च” घञ् । होपवत्वादीर्घो न । “म्यङ्क्वादीना हश्च घः” ।

३०

जात्यः श्रेष्ठकुलीनयोः ।

१ अने० म० २।२५७ । २ व्यामोहशब्दस्य मूर्खार्थे मूलं भुग्यम् । ३ अने० म० २।३५८ ।

४ कीला ज्वालामलति वारयति । अल पर्याप्त्यादौ । इति जले विग्रहः । रुधिरार्थे तु टीकोक्तः । ५ अने०

म० ३।६८३ । ६ का० सू० ४।५।९९ । ७ का० सू० ४।६।५७ ।

भेष्टकुलीनयोजात्यः । जात्या भवो जात्यः ।

मेघवत्सरयोरब्दः

अवतीति अब्दः । कुन्दादयः १—“कुन्दवृन्दमन्दाब्दाः” । “अब्दः संवत्सरे मेघे मुस्तके गिरिभिद्यपि” ।

ताक्षर्यो हयगरुत्मतोः ॥ १६ ॥

५

तृक्षस्यात्यय ताक्षर्य । पुंलि ।

स्तब्धतास्थूणयोः स्तम्भः

स्तम्भ इति सौत्रोऽयं वाटु ।

चर्चा चिन्तावितर्कयोः ।

चर्चण चर्चा ।

१०

हरकीलकयोः स्थाणु

तिष्ठतीति स्थाणु ।

स्वैरः स्वच्छन्दमन्दयोः ॥ १७ ॥

स्वस्य ईर स्वैरः । २ स्वस्यात ऐतमारेरिणोरपि वक्तव्यम् । तथा चालङ्कारे—

“ध्वंरं विहरति स्वैरं शेते स्वैरं च जल्पति ।

१५

भिक्षुरेकः सुखो लोके राजचोरभयोऽभिज्ञतः ॥”

“स्वैरं मन्दं स्वतन्त्रे च” इति हैमी ६ ।

शङ्कुः सङ्कीर्णविवरे पलालाग्नौ च कीलके ।

संख्यायाम्

श कायति कूयते वा “शङ्कु” ।

२०

काननोद्भूते वह्नौ दावो दवोऽपि च ॥ १८ ॥

काननोद्भूते वह्नौ दावो दवोऽपि च । दनोतीति दवः । दाव । “वाः ज्वलादिदुनीभुवो णः” ।

कीनाशः कृपणे भृत्ये कृतान्ते पिशिताशिनि ।

तथा पुण्यजनान् प्राहुः सज्जनान् राक्षसानपि ॥ १९ ॥

लोभेन विलश्यते बाध्यते कीनाश । तालव्यः ।

२५

विरोचनो रवौ चन्द्रे दनुस्वनौ हुताशने ।

विरोचते इत्येवशीलो विरोचनः ।

हंसो नारायणे ब्रध्ने यतावश्वे सितच्छदे ॥ २० ॥

हन्तीति हंसः ।

सोमश्चन्द्रोऽमृतं सोमः सोमो राजा युगादिभूः ।

३०

सोमः प्रतानिनीभेदः सोमपोऽगस्त्यदिगपतिः ॥ २१ ॥

१ का० उ० मू० ३।६४ इति दप्रत्ययः । २ अने० स० २।२२६ । ३ “स्वत्येरेरिणीरिषु” का० सू० पू० ३८ । ४ अने० स० २।४८२ । ५ शङ्कतेऽस्मात् शङ्कु । “शकि शङ्कायाम्” । औणादिक उ० । ६ का० सू० ४।२।५। इति खप्रत्ययः “दुदु उपतापे” ।

षुञ् अभिषवे । अनेन सर्वेषा साधनिका ज्ञातव्या ।

अजो विधिरजो विष्णुरजः शम्भुरजस्तमः ।

अजस्त्रैवार्षिको व्रीहिरजो रामपितामहः ॥ २२ ॥

न जायते नोत्पद्यते अजः ।

५

शुद्धेऽनुपहते बह्वौ ब्राह्मणे सचिवोत्तमे ।

आषाढेऽध्यात्मसंवित्तौ ब्रह्मचर्ये शुचिर्मतः ॥ २३ ॥

मतः कथितः । एतेष्वर्थेषु शुचिशब्दः । शोचति जनो देहलग्नेऽत्र शुचिः । तथा च यश-

स्तिलकचम्पूकाव्ये-

“न स्त्रीभिः सङ्गमो यस्य सर्वद्वन्द्वविवर्जितः ।

१०

त शुचिः सर्वदा प्राहुः मारुतं च हुताशनमिति ॥”

अर्थोऽभिधेयैरेवस्तुप्रयोजननिवृत्तिषु ।

अर्थशब्दः पठ्यते । अभिधेयश्च शब्दो वाचकः, शब्दमध्ये योऽसावर्थः स वाच्यः अभि-
धेयश्च कथ्यते । रा सुवर्णम् । वस्तु—अस्थ्यादिलोहितादिर्वा । गैरिकान्वित (दिक् च) वस्तु । प्रयोजन
कार्यम् । निवृत्तिश्च मुक्तिः । तासु । ऋ गतौ । अर्थते इत्यर्थः ।

१५

भावः पदार्थचेष्टात्ममत्ताभिप्रायजन्मसु ॥ २४ ॥

एतेष्वर्थेषु भावः पठ्यते । भवतीति भावः । “वा” ज्वलादिदुनोभुवो ण ।”

प्रायो भूमोपमातर्क्यप्रभृत्यन्ननिवृत्तिषु ।

एतेष्वर्थेषु प्रायः शब्दः ।

अन्तः पदार्थमामीप्यधर्ममत्त्वव्यतीतिषु ॥ २५ ॥

२०

एतेष्वर्थेषु अन्तः ।

अक्षो द्यूते वरूथाङ्गे नयनादौ विभीतके ।

द्युते वरूथाङ्गे रथचक्रावयवे, नयनादौ, विभीतके पूतनायाम् अक्षो वर्तते ।

सारः श्रेष्ठे बले वित्ते कोशे जलचरे स्थिरे ॥ २६ ॥

२५

श्रेष्ठे, बले, वित्ते, कोशे, कोशे वा पाठः । जलचरे, स्थिरे सारो वर्तते । सत्यनेनेति सारः ।

३ “बलमत्स्ययोश्च” इति परसूत्रेण घञ् । स्वमते “अकर्तरि च कारके मन्त्रायाम्” इति घञ् । “मारो
मज्जस्थिरांशयोः, बले श्रेष्ठे ‘च’ इति हैमी ।

वाचि वारि पशौ भूर्मो दिशि लोम्नि रवौ दिवि ।

विशिखे दीधितौ दृष्टावेकादशसु गौर्मतः ॥ २७ ॥

पूजा गच्छतीति गौ । गमेडोः ।

३०

चन्द्रे सूर्ये यमे विष्णौ वासवे दर्दुरे हये ।

मृगेन्द्रे वानरे वायौ दशस्त्रपि हरिः स्मृतः ॥ २८ ॥

हरतीति हरिः ।

१ का० सू० ४।२।५५ । २ प्रकृष्टमयन प्रायः । “इण गतौ” । एरच् । ३. “सर्तौ. स्थिरव्याधि-
मत्स्यबले” हे० श० ५।३।१७ । ४ का० सू० ४।५।४ । ५. अने० स० २।४७८ ।

पद्मे करिकरप्रान्ते व्योम्नि खड्गफले गदे ।

वाद्यभाण्डमुखे तीर्थे जले पुष्करमष्टसु ॥ २६ ॥

पुष्पातीति पुष्करम् ।

शृङ्गारादौ कषायादौ घृतादौ च विषे जले ।

निर्यासे पारदे रागे वीर्येऽपि रस इष्यते ॥ ३० ॥

शृङ्गारादौ-

“शृङ्गारहास्यकरुणारौद्रवीरभयानकाः ।

बीभत्साऽद्भुतशान्ताश्च नव नाट्ये रसाः स्मृताः ॥”

कषायादौ—तिकाभ्लमधुकटुकषायेषु । घृतादौ—दुग्धदधिघृततैललवणेधुरसेषु ।

विषे जले, निर्यासे वृद्धरसविशेषे, पारदे रागे, वीर्येऽपि रस इष्यते ।

१०

तीर्थं प्रवचने पात्रे लघ्वाम्नाये विदां वरे ।

पुण्यारण्ये जलोत्तारे महासत्ये महामुनौ ॥ ३१ ॥

एतेष्वर्थेषु तीर्थम्^१ ।

धातुः पञ्चसु लोहेषु शरीरस्य रसादिषु ।

पृथिव्यादिचतुष्के च स्वभावे प्रकृतावपि ॥ ३२ ॥

१५

पञ्चसु लोहेषु सुवर्णं रजतताम्ररीतिकाभ्येषु । शरीरस्य रसादिषु रसासङ्गमांसभेदोऽस्थिमज्जशुक्रेषु ।
पृथिव्यादिचतुष्के च पृथिव्यतेजावायु (वनस्पति) पु, स्वभावे, वातापतश्लेष्मादिषु एतेष्वर्थेषु धातुः
पठ्यते । दधातीति धातुः ।

प्रधानशृङ्गलाङ्गलभूपाण्डप्रभावना ।

ध्वजलक्ष्मणतुरङ्गेषु ललामो नवसु स्मृतः ॥ ३३ ॥

२०

एतेष्वर्थेषु^२ ललामः । ललामन् ।

आकृतावक्षरे रूपे ब्राह्मणादिषु जातिषु ।

माल्यानुलेपने चैव वर्णः षट्सु निगद्यते ॥ ३४ ॥

आकृता, अक्षरे, रूपे, ब्राह्मणादिषु जातिषु माल्यानुलेपने च वर्णो^३ निगद्यते ।

अकारादावुदात्तादौ षड्जादौ निस्वने स्वरः ।

२५

एतेष्वर्थेषु स्वरः कथ्यते । अकारादौ—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ ए, ऐ, आ औ ।
उदात्तादौ—“उच्चैरुपलभ्यमान उदात्तः,” “नीचैरनुदात्तः,” “समवृत्त्या स्वरितः,” षड्जादौ—

“निपाद्वर्षभगान्धारषड्जमध्यमधैवताः ।

पञ्चमश्चेत्यमी सप्त तन्त्रिकण्ठोत्थिताः स्वराः ॥”

निस्वने शब्दे ।

३०

सङ्केताचारसिद्धान्तकालेषु समयः स्मृतः ॥ ३५ ॥

समयते समयः ।

१ तरति तीर्थते वाऽनेन तीर्थम् । २. “लड विलासे” । डलयोरभेदात् ललतीति ललामः ।

३ “वर्णं शब्दे” । वर्णयति वर्ण्यते वा वर्ण । घञ् कर्मणि, अञ्वा कर्तरि । ४ तारस्व० सू० २ । ५. अम०
को० १।७।१ ।

तन्त्रं प्रधाने सिद्धान्ते सैन्ये तन्तौ परिच्छेदे ।

तन्त्र्यन्ते गुत्पाद्यन्ते शब्दा अनेनेति तन्त्रम् । अप्रत्यय ।

सत्त्वमोजसि सत्तायामुत्साहे स्थेन्नि जन्तुषु ॥ ३६ ॥

एतेष्वर्थेषु सत्त्वम् ।

५

रूपादौ तन्तुषु ज्यायामप्रधाने नये गुणः ।

गुणायतीति गुणः ।

ज्ञानचारित्रमोक्षात्मश्रुतिषु ब्रह्मवाग्वरा ॥ ३७ ॥

वरा विशिष्टा ।

अवकाशे क्षणे वस्त्रे बहिर्योगे व्यतिक्रमे ।

१०

मध्येऽन्तःकरणे रन्ध्रे विशेषे रहितेऽन्तरम् ॥ ३८ ॥

एतेष्वर्थेषु अन्तरः ।

हेतौ निदर्शने प्रश्ने श्रुतौ कण्ठसमीकृतौ ।

आनन्तर्येऽधिकारार्थे माङ्गल्ये चाथ हृष्यते ॥ ३९ ॥

हृष्यते कथ्यते । अथ एष्वर्थेषु ।

१५

हेतावेवंप्रकारादौ व्यवच्छेदे विपर्यये ।

प्रादुर्भावे समाप्तौ च इतिशब्दः प्रकीर्तितः ॥ ४० ॥

प्रकीर्तितः कथित इतिशब्द एतेष्वर्थेषु । इण् गतौ । इ । प्रति एवमादिकमर्थमिति ।

“इति ^१अमुष्णिणि प्रभृतिभ्यो णवत्” इत्यनेनेतिप्रत्यय । इति जातम् । प्रथ० सि । “अन्य-

^२याच्च” सिलोपः ।

२०

धर्मो धनुष्यहिसादावुत्पादादावये नये ।

द्रव्यक्रियाश्रये वित्ते जीवादौ दारुवैकृते ॥ ४१ ॥

एतेष्वर्थेषु धर्मः । धरतीति धर्मः ।

मूर्तिमत्सु पदार्थेषु संसारिण्यपि पुद्गलः ।

एतेष्वर्थेषु पुद्गलः ^३ ।

२५

अकर्मकर्मनोर्कर्मजातिभेदेषु वर्गणा ॥ ४२ ॥

(अकर्म पुद्गलस्कन्धः) कर्म-ज्ञानावरणादि, नोर्कर्म — शरीरादि । जातिगोत्रादि । एतेषु वर्गणा

वर्तते ।

ऐश्वर्यस्यासमग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः ।

वैराग्यस्यावबोधस्य षण्णां भग इति स्मृतः ॥ ४३ ॥

३०

भजन्त्यस्मिन्निति ^४भगः ।

प्राहुः कैवल्यमार्हन्त्ये विविक्ते निवृत्तावपि ।

१. कातन्त्रेऽस्य शुद्ध रूप नोपलब्धम् । २. का० सू० २।४।४ । ३. पूर्वन्ते पुनः पुनः सत्यधर्मे इति पुरः । गलन्ति विलीयन्ते गलाः । पुरश्च ते गलाश्च, पुद्गलाः । पृषोदरादित्वाद्रस्य द । ४. भज्यते सेव्यते धार्यते वा भगः ।

केवलस्य भाव कैवल्यम् ।

लब्धिः केवलबोधादाविष्टासौ नियतौ श्रियाम् ॥ ४४ ॥

लग्नमन लब्धिः ।

अनेकान्ते च विद्यादौ स्यान्निपातः श्रुते क्वचित् ।

स्यात् भवेत् एतेष्वप्येव निपातः ।

५

भ^०द्वारको धर्मचन्द्रस्तत्पट्टे धर्मभूषणः ।

तत्र देवेन्द्रकीर्तिः श्रीकुमुच्चन्द्रस्ततः परम् ॥ १ ॥

धर्मचन्द्रस्ततो ज्ञानसागरस्तत्पदेऽभवत् ।

तेन पुस्तकमेतद्वि दत्तं (लोकहितेच्छया) ॥ २ ॥

इति

धनञ्जयनाममाला सटीका समाप्ता

१ स्यात् इत्याकारको निपात एतेष्वप्येव इति सम्बन्धः । २ इतः पर मुद्रितपुस्तकेष्वधिकः पाठ उपलभ्यते, तद्यथा—“दर्शनादौ मणौ रत्न भव्यः शस्ते प्रसेत्स्यति ॥४५॥ परमात्मा जिने सिद्धे परमेष्ठ्यर्हदादिषु । सिद्धाः सिद्धनिषयायामर्हत्सिद्धभिषयामपि ॥४६॥ अर्हत्सिद्धमिति द्वावप्यर्हत्सिद्धाभिधायिनौ । अर्हदादीनपि ग्राहुः शरणोत्तममङ्गलान् ॥४७॥ इति । ३ अत्राशुद्धिदोषात्किञ्चित्पाठभेदः, स च शोषित इत्यरूपः संवृतः ।

अनेकार्थ-निघण्टुः

गम्भीरान् रुचिरांश्चित्रान् विस्तीर्णार्थप्रसाधनान् । कष्टशब्दान् प्रवक्ष्यामि कवीनां हितकाम्यया ॥१॥
वाग्दिग्भूरश्मिवज्रेषु पश्वक्षिस्वर्गवारिषु । नवस्वर्थेषु मेधावी गोशब्दमुपलक्षयेत् ॥२॥
क प्रजापतिरुद्दिष्टो को वायुरभिधीयते । कः शब्द स्वर्गमाख्याति क इत्यात्मा मत क्वचित् ॥३॥
सलिल कमिति ज्ञेय शिर कमिति चोच्यते । देवाननिमिषानाहुर्मत्स्याननिमिषास्तथा ॥४॥
अग्निश्च वह्नि चैव वृक्ष कुक्कुट एव च । शिखिनोऽभिहिता शस्त्र पृथुकश्च मत शिखी ॥५॥
ह्रस्वो नारायणः प्रोक्त क्वचिद्धसो दिवाकर । अश्वश्चापि स्मृतो हसो हसश्चापि विहगम् ॥६॥
सारमस्सरसिजेन्दो पतत्र्यपि च सारस । राजाऽपि नृपतिर्ज्ञेयो राजा चोक्तो निशाकर ॥७॥
विभावमुहुंताश स्याच्छ्वेतच्छत्र क्वचिद्भूवेत् । हिमाराति स्मृतो वह्नि हिमारातिश्च भास्कर ॥८॥
धनञ्जयोऽग्निर्व्याख्यातो पार्थश्चापि धनञ्जयः । बोभत्सश्च मत पार्थो बोभत्सो विकृत स्मृत ॥९॥
अग्निविरोचन प्रोक्तो भास्करस्तु विरोचन । विरोचनश्च चन्द्र स्यात्क्वचिद्द्वैत्यो विरोचन ॥१०॥
पाञ्चजन्य क्वचिद्वाह्नि, क्वचिच्छङ्खो निगद्यते । कम्बुश्च गदितः शङ्ख कम्बुरिष्टश्च कुञ्जर ॥११॥
भास्करोऽग्नि समुद्दिष्टः सहस्राशुरपि क्वचित् । पतङ्गो दिनकृद् ज्ञेय, पतङ्ग शलभः स्मृत ॥१२॥
कौशिको देवराजः स्यादुलूकश्चापि कौशिक । शम्भुर्ब्रह्मा च विष्णुश्च शम्भुश्चैव महेश्वरः ॥१३॥
वृषकेतुर्मत शङ्खु शङ्खु कील इहोच्यते । जम्बुको वरुणो ज्ञेय शृगालश्चापि जम्बुकः ॥१४॥
अक इष्टस्तु मधवान् घर्माशुरक उच्यते । मन्थी राहुश्च चन्द्रश्च ग्रहो मन्थी निरुच्यते ॥१५॥
केतवी रश्मयो ज्ञेयाः केतवश्च महाध्वजाः । तमोनुद सहस्राशुरनिश्चापि प्रकीर्त्यते ॥१६॥
मयूखा किरणा ज्ञेया मयूखाश्चापि कीलकाः । सप्तपिस्तसव प्रोक्तः सप्तान्ये ऋषयः क्वचित् ॥१७॥
वसव शवरा उक्ता देवाश्च वसवो मताः । नक्षत्र धिष्ण्यमित्युक्त गेह धिष्ण्य मत क्वचित् ॥१८॥
वासाऽम्बरमिति ख्यातमम्बर च नभःस्थलम् । पय सलिलमुद्दिष्ट पय क्षीर मत क्वचित् ॥१९॥
शिव पानीयमुद्दिष्ट शिव श्रेय शिव सुखम् । शिव व्योमर्पात प्राहुः शिव श्रेष्ठ प्रचक्षते ॥२०॥
क्षर जल विजानीयात्क्वचिन्मेध विदुः क्षरम् । स्यन्दन चाम्बु निर्दिष्ट स्यन्दनश्च महारथः ॥२१॥
कृष्ण तम सभाख्यात कृष्णश्चाधोक्षजस्तथा । अमृत क्षीरमित्युक्त क्वचिच्छ्वेत समुद्रजम् ॥२२॥
शत्रु च सलिल प्रोक्त मृतमाहु शत्रु तथा । तोय घृतमिति प्रोक्त घृत सपि क्वचिद्भूवेत् ॥२३॥
पानीय च विष प्रोक्त क्वचिद्धालाहल विषम् । हस्तिहस्त कर प्रोक्त करो हस्तः प्रचक्ष्यते ॥२४॥
कीलाल रुधिर प्रोक्त नीर चैव प्रशस्यते । भुवन सलिल प्रोक्त आकाश भुवन स्मृतम् ॥२५॥
प्रवाल कीमल ज्ञेय कीमल स्पष्टवाचकम् । सदन च स्मृत तीय सदन वेदम् उच्यते ॥२६॥
तोय सद्योति गदित निलय सद्य निगद्यते । सवर च जल प्रोक्त सवरः पर्वतो भवेत् ॥२७॥
सवरवाऽसुर ख्यातो यो विभर्ति रसा प्रियाम् । स्वरवाक्क्षमास्विदा प्राहुरिडा चाम्बरदेवताम् ॥२८॥
पत्नी चन्द्रेरिडा प्राहुरिला तत्समता गता । अदिति पृथिवी ज्ञेया देवमाताऽदिति क्वचित् ॥२९॥
अध्यह्ना भार्या परित्यक्ता त्वद्भिदिश्च निगद्यते । वृक्षो धर्म्य इवतिज्ज्ञेयो गवामपि पतिवृष ॥३०॥
वृषा कर्णश्च गदितो वृषा चोक्तः शतक्रतु । रोहिणेयो बल प्रोक्तो रोहिणेयो बुध क्वचित् ॥३१॥
बलदेवो मत शेषो नागो वा शेष उच्यते । रामस्तु लागली ज्ञेयो रामो दाशरथि क्वचित् ॥३२॥
रामश्च शुक्लो वर्णो रामश्च अश्वनाशनः । वराह केशवः ख्यातो वराहो जलद क्वचित् ॥३३॥
वराह शकरो ज्ञेयो विष्णुर्मयो हरिस्तथा । अजाराट्स्मरेन्दवो ज्ञेयास्त्रिनेत्रश्चाप्यजो मत ॥३४॥
अज पशुश्च विख्यातो तथाजो ब्रह्मकेशवी । शरीरजः स्मृतो रोग पुत्रश्चापि शरीरजः ॥३५॥

जय पुष्करमञ्ज च नागनासाग्रमेव च । कूल नभः समाख्यात कूल रोध प्रचक्षते ॥३६॥
 ख चानन्तमिति प्रोक्तमनन्त च बल क्वचित् । विष्णु क्वचिदनन्त स्यान्नागश्चानन्त उच्यते ॥३७॥
 प्रजापतिः स्मृतो राजा ब्रह्मा चापि प्रजापति । प्रजापति स्मृत क्षता क्षता च चर उच्यते ॥३८॥
 वाम पयोधरः प्रोक्तो वाम स्याद्दक्षिण हर । वामश्च मदन प्रोक्तो वामश्च प्रतिकूलके ॥३९॥
 आगोपो गोपको ज्ञेय क्वचिदागोपको ध्वज । उरश्चाङ्गु समाख्यातः स्थानमङ्गु, स्मृतस्तथा ॥४०॥
 वासरस्तु स्मृतो नागो वासरो दिवसो मतः । विभावसुर्निशा ज्ञेया गन्धर्वश्च क्वचिन्मतः ॥४१॥
 शर्वपौ रात्रयः प्रोक्ता, शर्वपंश्च स्त्रियो मताः । सान्द्र घनमिति प्रोक्त स्निग्ध सान्द्र निगद्यते ॥४२॥
 स्वः स्वर्गस्य मत नाम स्वः सुख क्वचिदुच्यते । स्व आत्मा चैव निर्दिष्टः स्व, प्रोक्तो गृहमूषिकः ॥४३॥
 कङ्कुशच्छन्दोविशेषज्ञो मतः शास्त्रेपि ना ककुप् । ककुम्भहोह, प्रोक्तो ज्ञेयास्तु ककुभो दिशः ॥४४॥
 क्षय वेदम समुद्दिष्ट क्षय रोग प्रचक्षते । जलदस्तु प्लवो ज्ञेय प्लवो ज्ञेयस्तथोदुप, ॥४५॥
 प्रासादो मण्डपः प्रोक्तो विहारश्चापि कथ्यते । घन घन विज्ञानीयाद् घन विपुलमुच्यते ॥४६॥
 प्रयुज्यते च कस्मिदिच्छद् घन सङ्घातवाद्ययो । बह्वथ स्यन्दनाग्र स्याद्बह्वथ वेदम उच्यते ॥४७॥
 चमूश्च वर्म राहसा प्रवदन्ति मनोरिप । अमुराश्च मुरा ज्ञेया क्वचिद्देवाग्र्योऽमुरा ॥४८॥
 नागाश्च द्विरदा ज्ञेया पद्मगाश्च क्वचिन्मना । गन्धर्वश्च तथा वायु क्वचिन्मयाव् देवगायन ॥४९॥
 नाश्र्यो ह्य समुद्दिष्टस्तार्क्ष्यश्चापि पनत्रिगाट् । बालेपानमुगानाहुर्वलियाश्च क्वचिन् खरान् ॥५०॥
 नृणो वनस्पति प्रोक्ता क्वचिदाश्वश्च कथ्यते । शिखरी वृक्ष उद्दिष्ट शिखरी पर्वतं स्मृत ॥५१॥
 द्विजो विप्रश्च दन्तश्च द्विज पक्षी निगद्यते । चोरो मन्त्रिन्मुखो ज्ञेयो वातश्चापि मलिन्मुख ॥५२॥
 आन्मज रक्तमुद्दिष्ट सुत कामस्तथैव च । कीनाशो मृतको ज्ञेय कीनाशश्चापि राक्षस ॥५३॥
 कीनाशोऽग्नि कृन्धनश्च कृपणो यम एव च । कीनाश कर्षको ज्ञेय कीनाशश्च वृकोदरः ॥५४॥
 अवदात प्रधान स्यादवदान च पाण्डुरम् । ज्योतिर्लोचनमद्दिष्ट ज्योतिर्निक्षत्रमुच्यते ॥५५॥
 ज्योतिश्च गदितो वल्लि काव्येषु मुनिपुङ्गव । प्रधान यज्जन ज्ञेय प्रधान श्वेतमुच्यते ॥५६॥
 अद्भः सवत्सरो ज्ञेयो मेघश्चापि ज्वचिन्मन । बलाहका महामेघा शिखरी च बलाहक ॥५७॥
 तोयद जलद प्राहुस्तोयद कथ्यते घनम् । जीमूतश्च मत्तो नागो जीमूत क्वचिदम्बुद ॥५८॥
 पोलस्त्य तु मन युद्ध पोलस्त्य पोलस्त्य विदु । शुक्लकृद्गजकृद्भैव प्रोक्तो निम्न वृद्ध रस ॥५९॥
 पञ्चन्य जलद प्राहु पञ्चन्य तु शतक्रतु । शिशिमुखः स्मृता चाणा ममगाश्च शिशिमुखा ॥६०॥
 लेखा सोमेति विज्ञेया लेखा चित्रकृतो मना । अम्बरीष क्वचिद्भ्राष्ट्र क्वचिद्युद्ध निगद्यते ॥६१॥
 पुस्त्व चापि मन युद्ध पुस्त्व पोषत्रमुच्यते । विद्यामोऽरिपवो ज्ञेया विद्यासम्बन्धवो मता ॥६२॥
 मायाऽविद्येति विज्ञेया क्वचिन्माया तु सावरी । मधु द्राक्षीति विज्ञेया क्वचित्स्यान्मधु माक्षिकम् ॥६३॥
 मधु चाम्बु समाख्यात मुरा च मधुसक्तका । ख रधमिति विज्ञेय ख गृह नभ एव च ॥६४॥
 खमिन्द्रियमिति ख्यात ख च नक्षत्रमुच्यते । धार्तराष्ट्रा महाहसा धृतराष्ट्रमुता क्वचित् ॥६५॥
 प्रभाकरो मत सूर्यो वल्लिश्चापि प्रभाकर । सित शुक्लमिति ज्ञेय सित बद्ध प्रचक्षते ॥६६॥
 असित कृष्णमित्युक्त असित भक्षित स्मृतम् । बभ्रुस्तु नकुलो ज्ञेय पाण्डवो नकुलस्तथा ॥६७॥
 त्रिशङ्कुमाहुर्मर्जारमृषिश्चापि तथेष्टने । यमस्तु वायसो ज्ञेयो यम प्रेताधिपस्तथा ॥६८॥
 लक्ष्मण सारस विद्यातथा दशरथात्मजम् । लक्ष्म चन्द्रस्य काण्व्यं स्याल्लक्ष्म्य केतुः प्रकीर्तितः ॥६९॥
 केतुश्चापि मत काव्ये लक्ष्मेति मुनिपुङ्गव । जगन्नेय स्मृतो दक्षो दक्षश्चाचेतस क्वचित् ॥७०॥
 आशुकारी भवेद्दक्ष स्यादलो तोमर स्मृत । आदित्य च रवि विद्याद्वैतस्यश्चाप्यदिते मुत ॥७१॥
 रोगो रजस्तथा रेणु रजो लोहितमुच्यते । स्कन्धो नितम्बसज्ञ स्यान्नितम्ब जघन तटम् ॥७२॥
 हेम वस्विति विज्ञेय धनु तेजो निगद्यते । सारङ्गं चातक प्राहुः स्वर्णं चापि सितासितो ॥७३॥
 रम्भाश्च कदली प्राहु रम्भा स्वर्गाङ्गना मता । प्राबाणो गिरिजा प्रोक्ता मेघाश्चापि मनोषिभि ॥७४॥

..... निगद्यते । औषण रसमुद्दिष्टमृत सत्यमपि बबञ्चित् ॥७५॥
 भक्ष आत्मेति विज्ञेयः केचिदाहुर्बिभीतकम् । ज्ञेयमिन्द्रियमक्ष च शाकट कर्ष एव च ॥७६॥
 भक्ष च पाशक विद्यादवावहारिकमेव च । पद्ममिन्द्रियमित्युक्त पद्म तामरस विबु ॥७७॥
 चैत्यमायतन प्रोक्त नीडमायतन तथा । पुष्प लोहितमुद्दिष्ट पुष्प च कुसुम तथा ॥७८॥
 बाजी तुरङ्गमो ज्ञेयो बाजी श्येनो विहङ्गमः । विष्णवन्त्रसिंहमण्डूकचन्द्रादित्यास्तु वानरान् ॥७९॥
 बभ्रुशिवानिलहयान् हरौनिच्छन्ति कोविदाः । पुरुषध्वजलिङ्गेषु ह्यभूषणलक्ष्मण ॥८०॥
 रामशेषावनीन्द्रेषु ललाम नवसु स्मृतम् । शुक्रा स्मृताऽक्षिवोषोना लवली मञ्जरी तथा ॥८१॥
 वक्रवक्त्र शुक्रो ज्ञेय कोकिला वचनप्रिया । पुलिन जलविच्छेद पङ्कज स्यात्कुशेशयम् ॥८२॥
 रत पापमिति ज्ञेय सत्वर शीघ्रमुच्यते । पिशङ्ग रोचनाभ स्यान्मेचकस्तिलको मतः ॥८३॥
 ललाटेऽवस्थित चिह्न विद्वद्भिस्तिलक मतम् । परिचर्य च कटक निकपस्तु कषो मतः ॥८४॥
 नानारत्नरूपचिता मञ्जुष रागिणी स्मृता । दिनकृद्वाजिसिंहेषु केसरित्व विधीयते ॥८५॥
 अव्यक्तो मधुरः शब्दः कल इत्यभिधीयते । अलातमूलुक ज्ञेय छेदो नाम भयङ्कर ॥८६॥
 भाव शृङ्गारमाधुर्य भावोऽवस्थाप्ररूपणम् । विलासः कामजो दोषस्तदेव ललित मतम् ॥८७॥
 उत्तमाङ्ग विना देह कबन्ध चेति शस्यते । शिरसो वेष्टन यद्वै तनुष्णीष निगद्यते ॥८८॥
 आहृत समदोषं स्यान्नविड पीडितोन्ततम् । मण्डको भेकसज्ञः स्याद्रक्षाभृत्चातको मतः ॥८९॥
 शिवा पिङ्गवनी ज्ञेया विशाल सबल मतम् । दुश्चर्मा शिपिविष्ट स्यात्कर्षकस्तु कृषोबल ॥९०॥
 कन्याजातश्च कानीनो पण्ड क्लीब इति स्मृत । उत्कृष्ट श्वगुर स्याता म्लिष्टमव्यक्तवाचकम् ॥९१॥
 रक्वो हस्तिवन्त स्याद्दान कटकसज्जितम् । तोदन चाङ्कुश विद्यादालान् हस्तिवन्धनम् ॥९२॥
 घनाघन इति ख्यात शास्त्रेष्वधिकपोरुष । अपाचीन मनोज्ञ च बुद्धिर्ज्ञेया तु शेमुषी ॥९३॥
 अकंस्तु पादपे ज्ञेयो नदी स्यात्फेनवाहिनी । अश्वारोहो मरुद्यानोऽश्वानां हृदये ध्वनि ॥९४॥
 आक्रन्व इति विज्ञेय खुराश्च शफमज्ञिता । आममाम भवेत्कव्य पक्ष पिशितमुच्यते ॥९५॥
 शुष्क तु विरस ज्ञेय मूढ सरसमुच्यते । शङ्खज शक्तिज चैव वाराह निमिमोक्तिकम् ॥९६॥
 वशादाशौविषान्तागाज्जीमूतान्च तथाष्टमम् । लोकज्ञो दक्षिणो ज्ञेयो दक्षिणश्च तुर स्मृत ॥९७॥
 आकृत तु मत विद्यात्कण्टक गहन मतम् । आनन चाकुले नेत्रे चिकुर चापि शस्यते ॥९८॥
 पाप श्याम इति प्रोक्तो वभ्रुस्तु कपिलो मत । स्थविष्ठ स्थावरे चैव दविष्ठ ब्रूमुच्यते ॥९९॥
 परमेष्ठी मत श्रेष्ठ प्रेम प्रियमुदाहृतम् । प्रकाश स्त्रोगृहेरक्त शंलूष इति सज्जित ॥१००॥
 पदकुचचर्मकार स्यान्नापितस्त्वजय स्मृत । लावण्यमाहुर्माधुर्य चित्र च शुभकर्मजम् ॥१०१॥
 व्याधयश्चामया प्रोक्ता पानीय तु समुच्यय । आधयस्तु स्मृता प्राज्ञैश्चित्तोत्पन्ना उपद्रवा ॥१०२॥
 रहो बेग समाख्यात सत्र सच्चरित स्मृतम् । आलवाल स्मृत सद्भिरपा वेगनिवारणम् ॥१०३॥
 चटक कलविद्धु स्यात्तुल्य सद्गममुच्यते । किलास पाण्डुर ज्ञेय दोला प्रेङ्खेति शस्यते ॥१०४॥
 मन्विर नगर ज्ञेय निलय चापि मन्दिरम् । सहस्रनयनोऽगारि प्रधान युद्धमुच्यते ॥१०५॥
 पलाशो हरितो वर्णो मेचको नीलपिञ्जर । उक्षाण वृषभ विद्याल्लुलायो महिषो मत ॥१०६॥
 उक्ता वध्या वसा वेहत् पृष्ठोही गर्भिणी हि या । व्याख्यातो मस्करो वेणुस्त्वचिसार परिकीर्तित ॥१०७॥
 हिल काम शप चैव रोषमाहुर्मनीषिण । कलभोऽल्पवयो नाग कलुष चाबिल मतम् ॥१०८॥
 वृजिन कुटिल विद्यात्सम्राट् राजा च भूभुजौ । रत्न वज्र विजानीयात्त्रियामा क्षणवा मता ॥१०९॥
 शीर्ष प्राशु विजानीयात् ह्रस्व नीचकमुच्यते । भूरि प्रभूतमुद्दिष्टमभितः सर्ववाचकम् ॥११०॥
 पवनश्चानिलो ज्ञेय पवनश्चाधमो जन । प्रियवाक्यो भवेदार्य स्नातश्च परिकीर्तित ॥१११॥
 आङ्गभरश्च पटहो व्यञ्जन बोधन मतम् । विपची बल्लकी ख्याता बीणा चैव निगद्यते ॥११२॥
 मालती सुमना ज्ञेया सुमना मुदितो जन । बल्लरी मञ्जरी ख्याता प्रपाऽशाला प्रकीर्तिता ॥११३॥

आयुर्निश्चयते तोयं तेन जीवति पञ्चकम् । तस्य पत्राभिमानेन रामो राजीवलोचनः ॥११४॥
 उत्कृत्य कवचं देहादसृग्बन्धं च यत्पुरा । इन्द्राय वत्तवान्कर्णस्तेन वैकर्तनं स्मृतं ॥११५॥
 तीक्ष्णश्चैव प्रचण्डश्च वृको नामानलो मतः । स पाण्डवस्य उदरे तेन भीमो वृकोदरः ॥११६॥
 यस्य श्रुतिमुखा वाणी पुण्य-श्लोकः स उच्यते । यः खेदी चानिवर्त्ती च युद्धशौण्डः स उच्यते ॥११७॥
 महासर्गसङ्घातं महेष्वासं प्रचक्षते । स्वविक्रमेस्तापयेच्च परं यथैव तापयेत् ॥११८॥
 यथैव तापयेद्यस्तं विज्ञेयश्च स यथैव । तस्मादपि च यो वर्यः स तु यथैव यथैव ॥११९॥
 सिंहाग्निताम्रसौवीरं स नृसिंह इति स्मृतः । ये हि स्पष्टप्रवक्तारो मतास्ते व्यक्तवादिनः ॥१२०॥
 यो यमित्येव च नाम्नाति स कीनाश इति स्मृतः । योऽप्रबुद्धोऽल्पबुद्धिश्च स तु मन्द इति स्मृतः ॥१२१॥
 उपकारं तु यो हन्ति स कृतघ्न इति स्मृतः । हर्षं गर्वं सुखे खेदे वृद्धौ च प्रतिभासते ॥१२२॥
 स्नेहभाग्यक्षये चैव मन्दशब्दो निगद्यते । नातीत्य वर्तते यत्र तदध्यात्मं प्रचक्षते ॥१२३॥
 चेतसश्च समाधानं समाधिरिति गद्यते । सर्वक्लेशविनिर्मुक्तो स हि दान्त इति स्मृतः ॥१२४॥
 निर्ममो निरहङ्कारो विज्ञेयः छिन्नसंशयः । प्रदाता देशकालज्ञः समाधिस्थः स उच्यते ॥१२५॥
 मुखरोऽल्पमतिर्यस्तु सक्रोधश्चैव कीटकः । वृत्तिर्यत्र तु गृहघाना परोक्षे बहिः तत्क्रिया ॥१२६॥
 आहारव्यवहारेषु सा प्रीतिरित्युपस्करा । परस्परं स्वदारेषु सता येवा प्रवर्तते ॥१२७॥
 विश्वस्मात्प्रणयाद्वापि सा प्रीतिरित्युपद्रवा । यत्र ह्यातिरिति प्रोक्तं तद्योगात्प्राहुर्यच्यते ॥१२८॥
 कीर्तिख्यातिप्रशयोयोगाद् भगवन्निति चोच्यते । प्रियदानेषु यः शुद्धः स उदार इति स्मृतः ॥१२९॥
 रजस्वला तु या नारी सा चोदक्या प्रकीर्तिता । प्रीतिर्भावक्रिये स्वच्छरक्षालगितनु विभुम् ॥१३०॥
 तेजो रेतसि दोप्तौ तपो हि स्याद् वषाथकः । योऽग्न्यातो हनो जीवः स शरारु इति स्मृतः ॥१३१॥
 मिथ्यादृष्टिरहमानी नास्तिकः स प्रकीर्तितः । कामः क्रोधश्च वै पूर्वं लोभोऽस्त्येव च मध्यमे ॥१३२॥
 अन्ते मोहो विषादश्च यस्य ज्ञेयः स षड्वदः । अमृतं जारजं कुण्डो मृते भर्त्तरि गोलकः ॥१३३॥
 अनयोर्योऽन्नमश्नान्ति स कुण्डाशी निगद्यते । भ्रूणस्त्री गर्भिणी बाला ब्राह्मणी बह्वीजीविनी ॥१३४॥
 परचित्ते यदोयान् यो ज्येष्ठपत्नी परामृशन् । यः पश्चिमश्च ज्येष्ठोऽपि परचित्तः स उच्यते ॥१३५॥
 पुष्पजः क्षोमजः चर्मकोशजः भस्मजः तथा । गुणजः च समुद्रिष्टः तद्भेदा वस्त्रजातिषु ॥१३६॥
 बिम्बारक्तधरा या स्त्री बिम्बोष्ठी ता विनिर्दिशेत् । या स्यात् सक्रोडनपरा ललना ता विनिर्दिशेत् ॥१३७॥
 दुर्वाकाण्डप्रतीकाशः कुम्भी यस्यास्तनू कुम्भो । सर्वरूपविविक्ताङ्गी सा भवेद्भरवर्णिनी ॥१३८॥
 लावण्ययुक्ता या नारी ललिता ता विनिर्दिशेत् । या मत्ता मत्तवज्ज्योतिः सा ज्ञेया मत्तकाशिनी ॥१३९॥
 भूरिश्च भूरिमुद्रिष्टः अन्नं श्रव इति स्मृतम् । भूरि श्रवो ददातीह तस्माद् भूरिश्रवो हि स ॥१४०॥
 चतुर्णाद्विंशतिभुजो लोहितग्रीव एव च । निसर्गाद्वाहणात्क्रूराद्रवणाद् रावणः स्मृतः ॥१४१॥
 रोषणा या भवेन्नारी भामिनी ता विनिर्दिशेत् । न्यग्रोधलक्षणं विद्यादधाना परिमण्डलम् ॥१४२॥
 ताभ्यामुपेता वर्तिता न्यग्रोधपरिमण्डला । तत्तुल्ये चाक्षिणी यस्या सा स्त्री राजीवलोचना ॥१४३॥
 वर्णप्रमाणनिर्धोषोऽस्त्रिंशत्पद्भिरन्वितः । राजीवमग्नये शसन्ति स्निग्धवर्णं सितसितम् ॥१४४॥*
 किञ्चिदुत्तरतद्योगात्सीता राजीवलोचना । बलिभिर्यास्त्रभिर्युक्ता शङ्खकण्ठी उदाहृता ॥१४५॥
 जराकराकारं स्पन्दनाग्रमिवाग्रतः । वस्त्रेति तज्ज्ञेयं तस्यैवाग्रं ॥१४६॥
 तत्तं मर्मसंयुक्तं तत्तथास्त्रमुच्यते । ग्रहणे धारणे सामे वाहने धर्मसंयुता ॥१४७॥
 रमणे क्रीडने सङ्गे भार्या नाम प्रवर्तते । मूढतायां सविद्याया सप्ताश्वस्त्वशुमालिनी ॥१४८॥
 विषमाक्षदरा एते ज्ञेयाग्रं ते विसंस्थिताः । कीटस्था इति ज्ञेया सपञ्चकीटखगादयः ॥१४९॥
 आताम्रपल्लवो यस्तु वृक्षाणामचिरोद्गमः । ॥१५०॥
 सौकुमार्यं किसलयं कोमलत्वं च तस्मै स्मृतम् । शतानां च चतुर्हस्तं नल्वं तद्विहसन्नितम् ॥१५१॥

* नोट—मूल प्रनिर्देश १४४ मे १४८ तक के पद्योपर उनके नम्बर नहीं पड़े हैं ।

कुम्भो बाह प्रस्य सम नत्व इति विधीयते । विपिन शून्यमित्युक्त विपिन गृहमेव च ॥१५२॥
 ह्रस्ववर्णं च वाम च दर्शनीयार्थवाचक । सर्वायंश्चाप्युवर्णश्च पानीय शीतमुच्यते ॥१५३॥
 नोहार शीतमित्युक्त प्रदोषान्तो निशीयक । ॥

इति महाकविश्रीधनञ्जयकृते निघण्टुमयं शब्दसंकीर्णं अनेकार्थप्ररूपणो द्वितीयपरिच्छेद ॥२॥

एकाक्षरी-कोषः

विश्वविधानकोशानि प्रविलोक्य प्रभाष्यते । अमरेण कवीन्द्रेणैकाक्षरनाममालिका ॥१॥
 अ कृष्ण आ स्वयभूरि काम ई श्रीहरीश्वर । ऊ रक्षण ऋ ऋ ज्ञेयो देवदानवमातरौ ॥२॥
 लृद्वेषलृर्वराही भवेर्देवणुरे शिव । ओर्वेधा औरनत स्याद ब्रह्म परम्भ शिव ॥३॥
 को ब्रह्मात्मप्रकाशाकं क स्याद्वायुमग्निषु । क शीर्षे सुमुखे कुस्तु भूमौ शब्दे च कि पुन ॥४॥
 स्यात्क्षेपनिन्दयो प्रश्ने वितर्कं च खमिन्द्रिये । स्वर्गे व्योम्नि मुखे शून्ये मुखे सविदि खो रवौ ॥५॥
 गस्तु गातरि गधर्वं गा गीतौ गो विनायके । स्वर्गे दिशि पशौ वज्रे भूमाविन्दौ जले गिरि ॥६॥
 घस्तु सुघटीशे घा किकिण्या च घुध्वनौ । ड मञ्जने डो वृष भेजने च चन्द्रचौरयो ॥७॥
 च सूर्ये कच्छपे छ तु निर्मले जस्तु जेतारि । विजये तेजसि वाचि पिशाच्या जि जवेऽपि च ॥८॥
 झो नष्टे रवे वायौ जो गायने घर्घरध्वनौ । ट पृथिव्या करटे च ठो ध्वनौ ठो महेश्वरे ॥९॥
 शून्ये वृहद्धूषनौ चद्रमडले ड शिवे ध्वनौ । ढो भये निर्गुणे शब्दे ढक्काया णस्तु निश्चये ॥१०॥
 ज्ञाने तस्तस्करे क्रीडपु ळ्योस्ता पुनर्दया । थो भीत्राणे महीध्रे द पत्न्या दा दातृदानयो ॥११॥
 बन्धे च धा गुह्ये केशे धातरि धीमंतौ । धूर्भारकर्पाचतासु नो नरे बन्धुबुद्धयो ॥१२॥
 निस्तु नेतरि नु स्तुत्या नौ सूर्ये पस्तु पातरि । पावने जलपाने च फो ज्ञाजलफेनयो ॥१३॥
 भाः कातौ भूर्भुव स्थाने भीर्भये म शिवे विधौ । चद्रे शिरसि मा माने श्रीमात्रीर्वारणेऽव्ययम् ॥१४॥
 मु पु सिबं धने यस्तु मातरिश्वनि य यश । यास्तु यातरि खट्वागे याने लक्ष्म्या च रो धृतौ ॥१५॥
 तीव्रे वंशवानरे कामे रा स्वर्णे जलदे ध्वनौ । री भ्रमे रभये सूर्ये ल ह्रस्वे चलनेपि च ॥१६॥
 ल तले ली पुन श्लेषे ली भये वो महेश्वरे । व पश्चिमदिशास्वामी व इवार्थे स्मरेऽप्ययम् ॥१७॥
 श शुभे शा तु शोभार्यां शी शयने शु निशाकरे । ष श्लिष्टे पुनर्गर्भे विमोक्षे ष परोक्षे ॥१८॥
 सा लक्ष्म्या हो निपाते च हुस्ते दाहणि शूलिनि । क्ष क्षेत्ररक्षसोत्युक्ता माला प्राक्सूरिसम्मता ॥१९॥

इति एकाक्षरी नाममाला समाप्ता ॥छ॥

धनञ्जय-नाममालागतशब्दानुक्रमणिका

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
अ			अन्तर्य	८३	१७३	अन्तक	७१	१४५
अशु	२३	४५	अदध्र	९०	१९१	अन्तरिक्ष	२८	५३
अशुक	५९	११७	अदिनिमुत्	३०	५६	अन्त्य	६३	१२४
अस	५०	१०१	अद्भुत	८४	१७४	अन्त्यकाश्यप	५८	११५
अहम्	६६	१३०	अट्टि	४	८	अन्तेवासिन्	३	४
अह्निप	५	११	अधम	(७३	१५४	अन्वकार	७२	१४८
अकूपार	१२	२५	(८१	१६८	अन्वय	६३	१२४	
अक्ष	{ ६१	१२२	अधर	५०	१००	अन्ववाय	"	"
	{ ६५	१३०	अधिप	५	१०	अन्वह	७९	१८९
अक्षि	४९	९९	अधोक्षज	३७	७५	अन्विन	७७	१६१
अक्षाहिणी	४३	८६	अध्वन्	७८	१६२	अन्वीन	"	"
अग्निल	८८	१८७	अनन्तर	६९	१४१	अल्लाय	७६	१५७
अग्न	५	११	अनन्तान्मन्	३६	७३	अप्	७	१५
अग्नि	३३	६४	अनन्त्यज	३९	७७	अपघन	१९	३८
अग्निगून्	३४	६६	अनभ्राट	८	१८	अपत्य	१९	३९
अग्रज	{ २१	४३	अनल	३३	६५	अपाङ्ग	४९	९९
	{ ५७	११४	अनारन	८९	१८९	अपाङ्गार	१३	२५
अग्रिम	७५	१५६	अनालम्ब	६७	१३५	अप्राज	८०	१६६
अज	६६	१३०	अनिमिष	८	१७	असरोनाथ	३०	५९
अङ्ग	८०	१६५	अनिमेष			अबला	१५	३१
अङ्ग	१९	३८	अनिल	३२	६२	अवज	२७	५१
अङ्गना	१४	३०	अनीन	४३	८६	अद्वि	१२	२५
अङ्गराग	६०	११९	अनुकम्पा	५४	११०	अभय	९१	२००
अङ्गीकृत	९१	१९७	अनुक्रीम	"	"	अभियोग	८४	१७४
अटिष्ठ	५१	१०३	अनुग	१४	२९	अभिराम	८५	१७५
अटिष्ठप	५	११	अनुचर	"	"	अभिरूप	५५	१११
अचल	४	८	अनुज	२१	४२	अभिलाप	७७	१६०
अज	३६	७२	अनुजा	२१	४३	अभिलाषुक	८४	१७५
अजय	९१	१९७	अनुजीविन्	१४	२९	अभिसारिका	१७	३५
अजस्र	८९	१८९	अनुरहम्	८४	१७५	अभीक्षण	८८	१८५
अजातरिपु	७१	१४६	अनेकप	४५	८८	अभ्यण	६९	१४१
अञ्जनान्मज	३३	६३	अनेहम	६२	१३२	अभ्यास	{ ६९	१४१
अटनी	४०	७९	अनोकह	५	११		{ ८६	१८५
अटवी	६	१३	अन्त	५	९	अभ्र	{ ८	१८
अत्यन्त	८३	१७३	अन्त करण	४१	८१		{ २८	५३
						अमर	३०	५६

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
अमर्ष	५४	१०९	अवग्ज	२१	४२	आत्यन्तिक	८७	१६१
अमल	८४	१७३	अवलम्ब	८७	१११	आदेश	८४	१५५
अमा	७७	१५०	अवमय	६६	१३३	आनन	४९	९८
अमित्र	२२	४४	अवसान	८२	१७१	आनन्त्य	९०	१९१
अमृत	६२	१२२	अवसर्प	८६	१८२	आनन्द	५४	१०९
अमृतोद्भव	१५	२५	अवश्याय	८५	१७९	आपगा	१२	२४
अम्बर	{ २८ ५९	{ ५३ ११७	अविदूष	६९	१४२	आभरण	६०	११९
अम्बु	७	१५	अशनि	७	१९	आद्य	५७	११४
अम्बुजानन	६८	१३७	अश्लोल	७१	१०५	आम्नाय	६३	१२४
अम्बुवि	८	१६	अश्व	२८	५२	आयुव	४२	८३
अम्भम्	७	१५	अष्टान्	४६	९०	आर्या	१७	३४
अयस्	८२	१७२	अष्टापद	{ ४६ ४७	{ ९० ९३	आलम्ब्यमुख	८७	१३५
अग्रण्य	६	१३	अमि	४३	८५	आलय	६६	१३३
अग्रण्यानीचर	७	१४	अमित	७२	१८८	आलम्ब्य	८७	१६१
अग्रम्	८३	१७२	अमुपति	१८	३७	आलो	२०	४१
अर्वावन्द	११	२१	अमृज	८९	१८८	आवलि	१३	६७
अर्गति	२२	४४	अमृत्कार	११	१०६	आवास	६५	१३३
अग्नि	२२	४४	अमृत्	४२	८३	आवृति	९०	१९४
अरुण	७२	१५०	अमृत्	८१	१६८	आशय	५१	११०
अर्क	२६	४९	अमृत्	२६	५०	आशा	३२	६१
अग्नि	२३	४५	अमृत्नाति	५६	११०	आशु	८३	१७७
	{ ४७ ७१	{ ९३ १४७	अहि	६४	१२८	आशुश्रुति	३३	८६
अर्गुन	{ ७० ७१	{ १४३ १४७	अहि	२२	८४	आश्रय	८८	१७४
अर्णव	१५	२६	अहि	८४	१७४	आमन	{ ५६ ६७	{ ११३ १३५
अर्णस्	७	१५	आ			आमन्दी	५६	११३
अय	४७	९५	आकालिकी	०	१९	आमन्न	६९	१४१
अर्भक	२०	४०	आकाश	२८	५३	आमव	६१	१२१
अयमन्	२६	४९	आकृत	४१	८१	आम्बानाविपति	५६	११२
अर्वन्	२७	५२	आवण्ड	३०	५७	आम्पद	६६	१३३
अर्हन्	५८	११६	आगम	३	४	आम्य	४९	९८
अलकानिलय	४८	९६	आगार	६६	१३३	आम्बनि	४१	८१
अत्रि	४२	८२	आचार्य	५५	१११			
अलिप्रभ	५२	१४८	आजि	४४	८७			
अलीक	८८	१८६	आज्ञा	७४	१५४			
अवदान	७१	१४७	आज्य	६१	१२२			
अवद्य	७३	१५२	आतन	७६	१५८			
अवधि	१३	२६	आतपत्र	९०	१९४			
अवनि	३	५	आताम्र	७२	१४९			
			आत्मज	१९	३९			
			आत्मभू	३६	७३			

ध

{ ५
२६

३८

११

२३

३५

१०

५०

७६

२१, २२

४६

६९

अब्दानुक्रमणिका

१०६

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
इन्द्र	{ ५ ३०	१० ५७	उद्याग	८४	१७४	ऐधवाकु	५७	११४
इन्द्रजित्	२५	१२८	उद्गाह	११	१८९	ओष	{ ६३ ६९	१२५ १४०
इन्द्रिय	६५	१२९	उन्नत	८	१५८	आष्ठ	५०	११०
इभ	४५	८८	उपकण्ठ	१३	२६	ओषधीश्वर	२४	४७
इरा	६१	१२०	उपन्यका	६	९	क		
इला	३	६	उपमा	६७	१३६	क	{ ७ ३६	१५ ७३
इषु	३९	७८	उमान	६८	१३७	ककुत्	३२	६१
इष्ट	१८	३७	उपश	८२	१७०	कक्ष	६	१३
इष्टा	१६	३३	उपाग	८४	१७५	कक्षा	६७	१३६
ईगित	५०	१०४	उपेन्द्र	३७	७४	कन	९०	१०५
ईशा	५	१०	उभय	२	७	कञ्चुक	९०	१९४
ईगित्	५	१०	उमापति	३५	८०	काटाक्ष	६९	९९
ईश्वर	५	१०	उरग	२४	१२८	कटि (मटी)	५१	१०३
ईश्वरम्	२५	१२३	उरगिकुत	२१	११६	कटिमूत्र	{ ६०	१२०
उ			उरम्	५०	१००	कटीमूत्र		
उग्र	{ ३५ ८७	३० १८४	उर्वरा	३	६	कठिन	५	१५५
उच्च	७६	१५८	उर्वी	३	६	कठोर	,	,
उच्चावच	,	१५८	उरवा	९	१९	कण	३०	७८
उच्चैर्म	,	१५८	उवण	८७	१८४	कण्ठ	५०	१००
उच्छिन्न	,	१५८	उर	६८	९१	कण्ठीश्व	८५	९०
उट्	२५	४८	उणवाण	,	१९४	कदन	४४	८७
उक्कट	८७	१८४	उन्न	२३	५	कदम्बरा	६०	१३९
उक्कलिका	१०	२७	ऊ			कट्टद	८०	१६६
उत्तमान	५०	१०४	ऊरीकृत	९१	१९८	कनक	४७	९३
उत्तराशापति	८८	९६	ऊर्जम्	२३	६६	कनीयम्	२१	४३
उत्तानशय	२०	६०	ऊर्जम्बिन	९०	१०३	कन्दर्प	६२	८३
उत्पल	११	२२	ऊ			कर्पदित्	३५	७०
उत्प्रेक्षा	६८	१३८	ऊ			कर्पाणित्	३५	७०
उत्सव	५६	१०९	ऊ			कपि	६	१२
उत्साह	८६	१७४	ऊ			कपिध्वज	७०	१४३
उदन्वत्	१३	७७	ए			कवरी	९१	१९५
उदर	५१	१०२	एकपत्नी	११	३६	कमन	८५	१७७
उदशिवत्	६२	१२३	एकमिङ्गल	४८	९५	कमनीय	८५	,
उदगम	४०	८०	एकपाणिक	८१	१६९	कमल	१०	२०
उदग्रीव	८१	१६८	एनम्	६६	१३१	कम	८५	१७७
उद्वन	८१	१६८	ए			कर	{ २३ ५०	४५ १०१
उद्धर	८१	१६८	एक्षव	४२	८३	करण	६५	१२९
उद्यम	८८	१७४	एरावणाधिप	३०	५९			

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
करभ	४६	९१	कामिन्	१८	३७	कुमुद	११	२२
करवालक	४३	८५	कामिनी	१४	३०	कुमुदप्रिय	२४	४७
कराङ्गुलि	५०	१०१	कामुक	१८	३७	कुमुदविप्रिय	२७	५१
करिन्	४५	८८	कामुकी	{ १५	३१	कुम्भिन्	४५	८८
करुण	५४	११०	{ १७	३६	कुम्भिनी	३	६	
करेण	४५	८९	काय	१९	३८	कुम्भशत्रु	८४	१४५
कर्कश	७५	१५४	कार्तस्वर	४७	९४	कुल	६३	१२४
कर्ण	४९	९८	कार्तिकेय	३४	६७	कुलटा	१७	३५
कर्णशूलिन्	७०	१४४	कार्मुक	४०	७९	कुल्या	१६	३२
कर्दम	१०	२०	कार्मुकिन्	७०	१४३	कुवलय	११	२२
कर्पूर	५९	११८	काल	{ ७१	१४५	कुश	७	१५
कलङ्क	७३	१५२	{ ७२	१४८	कुशलिन्	७९	१६४	
कलत्र	१६	३२	कालशेय	६२	१२३	कुसुम	४०	८०
कलधौत	४७	९४	काली	७३	१५०	कृपार	१२	२५
कलभ	५२	१०५	काश्यप	५८	११५	कृपास	९०	१९४
कलम	८१	१६७	काहल	७५	१५५	कृच्छ्र	८८	१८६
कलह	{ ४४	८७	काष्ठा	३२	६१	कृतान्त	{ ३	४
{ ८९	१८८	काष्ठाराल	३२	६१	कृतिन्	{ ७१	१४५	
कलापिन्	६३	१२६	काष्ठाम्बर	३२	६१	कृत्स्न	७९	१६४
कलाभूत्	२४	४७	किवदन्ती	७४	१५४	कृपण	८४	१८७
कलिल	६६	१३१	किङ्कर	१४	२९	कृपा	५४	११०
कलेवर	१९	३९	किञ्चन	७६	१५७	कृपाण	४३	८५
कल्माषी	७३	१५०	किञ्चक	{ ७३	१५१	कृश	८०	१७१
कल्याण	९१	१९८	{ ७३	१५२	कृशान्	३३	६५	
कल्लोल	१३	२७	किन्ध	७९	१६१	कृष्ण	{ ३९	७८
कवच	९०	१९४	किरण	२३	४५	{ ७२	१८८	
कष्ट	८८	१८६	किरात	७	१४	केकर	४९	९०
कस्तूरी	५९	११७	किरीटिन	७०	१४४	केकिन्	६३	१२५
कस्वर	४७	९५	किन्विष	६६	१३१	केतु	४३	८४
काञ्चन	४७	९३	कीचकशत्रु	७१	१४५	केवल्लिन्	५८	११६
काञ्ची	६०	११९	कीर्ति	७४	१५३	केश	९०	१९५
काण्ड	३९	७८	कीनाश	८४	१७५	केशवन्वन	९१	१०
कादम्बरी	६१	१२०	कु	३	६	केशविन्	८५	१०
कानन	६	१३	कुक्कुट	४६	९२	केशव	३७	७४
कानीनजनक	२७	५१	कुक्षि	५१	१०२	केशवाग्रज	७०	१४२
कान्त	{ १८	३७	कुङ्कुम	१९	११७	केशिन्	३६	७५
{ ८५	१७७	कुच	५१	१०२	कैरव	११	२२	
कान्ता	१६	३३	कुबेर	४८	९५	कोक	६४	१२७
कान्तार	६	१३	कुब्ज	७६	१५८	कोकनद	१०	२१
कान्तिमत्	२४	४७	कुमार	३४	६७			
काम	३९	७७						

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
कोटि	४०	७९	खग	३९	७८	गुरुस्थान	६८	१३७
कोदण्डक	४०	७९	खङ्ग	४३	८५	गुलिका	४७	९४
कोप	५४	१०९	खण्ड	८९	१८७	गुह	३४	६७
कोमल	७५	१५५	खन्कृत	५३	१०६	गूढचक्र	८१	१६९
कोविद	७९	१६४	खरदण्ड	१०	२१	गृध्र	८४	१५५
कोप	८९	१८८	खल	२२	४४	गृह	{ १६ ३२	
कोशेयक	४३	८५	खला	१७	३५		{ ६६ १३२	
कोतुक	८४	१७४	खलु	{ ७६ १५९		गेह	६६	१३२
कौन्नेय	७१	१४६		{ ८४ १७३		गेहिनी	१६	३२
कौमुदी	२४	४७	खान	६७	१३४	गो	{ ३ ६	
कौगव्य	७१	१४६	खेचर	२८	५४		{ २३ ४५	
कौलेयक	४६	९२	खेद	५४	१०९		{ ७९ १६३	
कौशिक	३०	६०	खेय	६७	१३४	गोत्र	८०	१६५
कौमुम	७३	१५१	ख्याति	७४	१५३	गोत्रशत्रु	३०	५८
कृतु	५६	११२		ग		गोधा	१३	२८
क्रेकृत	५३	१०७	गगन	२८	५३	गोपुर	६७	१२४
क्रोड	४६	९१	गङ्गा	{ ३६ ७१		गोमण्डल	७८	१६२
क्रोत्र	५४	१०९	गज	{ ७८ १६२		गोमिनी	३८	७६
क्रोच	५३	१०७	गणिका	४५	८८	गोलाद्गुल	६	१२
क्रौचभेदिन्	३४	६७	गन्धवाह	१७	३६	गोविन्द	३७	७६
क्षणे	७६	१५७	गन्धर्व	३२	६२	गोतम	५७	११४
क्षणदा	२५	४८	गभस्ति	२३	४५	गोत्र	७२	१४०
क्षगर्ग	९	१९	गरुड	६५	१२८	गौरी	७३	१५०
क्षनज	८९	१८८	गरुत्मन्	६५		ग्रन्थ	३	४
क्षपाकर	२६	४८	गर्ज	५२	१०५	ग्रन्थाधिप	२६	४९
क्षमा	३	५	गर्ता	८९	१९०	ग्रामशास्त्र	४६	९२
क्षम	८२	१७१	गवित	८१	१६८	ग्रीवा	५०	१००
क्षिति	३	६	गल	५०	१००	ग		
क्षिपा	२५	४८	गव्या	४१	८२	घन	{ ८ १८	
क्षिप्र	८३	१७२	गहन	{ ६ १३			{ ८२ १७०	
क्षीर	६२	१२२	गहर	{ ८८ १८३		घनमार	५९	११८
क्षीण	८२	१७४	गह्वरी	८९	१९०	घनाघन	८	१८
क्षुण्ण	७९	१६४	गण्डीविन्	३	५	घृष्टि	४६	९१
क्षुरप्र	३९	७८	गिरि	७०	१४३	घोर	८७	१८४
क्षेम	९१	१९८	गिरि	५२	१०४	घोष	७८	१६२
क्षोणी	३	६	गिरिश	४	८	घ्राण	५०	१०२
क्षमा	३	"	गोवाणेश	३५	६९	च		
			गोवाणेश	३०	५८	चक्रधर	३८	७६
			गुण	{ ४१ ८२		चक्रवाक	२७	५१
				{ ६० ११९		चक्राङ्ग	६३	१२५
			गुणनिका	८८	११९	चण्डी	१६	३३
			गुणावलि	७४	१५३	चतुर्	७९	१६५
			गुरु	६२	१२३			
ख	{ २८ ६५	{ ५३ १२९						

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
चतुर्मुख	३६	७२	जननी	१८	३८	तट	{ ४ १३	९ २६
चतुष्पात्	७९	१६३	जनपद	४८	९७	तटी	४	९
चन्द्र	२४	४७	जनान्	४८	"	तटोच्छ्वाम	१३	२७
चन्द्रमम्	२४	"	जनि	१६	३२	तडिन्	९	१८
चमू	४३	८६	जनोदाहरण	८४	१५३	तडिद्वन्वा	३०	५६
चमू	४६	९०	जल	११	१०३	तति	६९	१४०
चर	८६	१८२	जलद	५३	१०५	तनय	२०	४०
चरण	५१	१०३	जव	८५	१०२	तनु	१९	३८
चरय	३२	६३	जवन	३०	६३	तनुव	९०	१९४
चलन	५१	१०३	जङ्गल	२९	५०	तनूदरी	१५	३१
चला	१३	३०	जान	८१	१६७	तनुनपात	३३	६४
चाटुकृत्	७९	१६५	जानम्प	८३	०३	तपन	२६	४९
चाप	६०	७०	जानवेदग	३३	६४	तपनीय	४७	९४
चार	८६	१८२	जानु	५१	१०३	तपविदन	२	३
चार	८५	१७८	जाया	१६	३२	तम	७२	१४८
चिकुर	००	१९५	जाह्नवी	३६	७१	तमम्	७०	
चिन	४१	८१	जिन्या	७०	१४०	तमार्ग	२६	५०
चित्र	८४	१७४	जिन	५७	११२	तर	८३	१७२
चिह्न	४३	८४	जिष्णु	५०	१४३	तरग	१३	२७
चिराय	५५	१८२	जिह्वा	४६	९०	तरगिर्णा	१०	२४
चीकृत	५३	१०६	जामून	८	१८	तरणि	२६	४९
चीर	५९	११७	जाण	{ ७६ ८२	१५६ १०१	तरबार्ग	४३	८५
चूड़ापाश	९१	१९९	जावन	७	१५	तरविन्	९०	१९३
चेतम्	४१	८१	जावा	८१	८२	तम्कर	८१	१६९
चेत	५०	११७	च्या	४०	८२	तापन	२	३
चाय	८४	१७३	ज्यायम्	५७	११४	तामरम्	१०	२०
चीर	८१	१७९	ज्येष्ठ	२१	४३	तारा	२५	४८
छ			ज्योति	२३	४६	तारुण्य	६२	१२४
छत्र	९०	१९४	ज्वलन	३३	६५	तार्थ	६५	१२८
छन्न	६८	१३८				निगम	{ २६ ८७	४९ १८४
छिद्र	८९	१९०	झ			निमि	८	१७
छल	{ ६८ ८९	१३८ १८८	झटिति	८३	१७२	निमि	{ ७२ ८७	१४८ १८४
ज			झप	८	१७	निमिरागि	२६	५०
जगत्	५७	११३	झषकेतु	४३	८४	तीर	१३	२६
जगती	३	६	झषध्वज	४३	"	तीर्थ	५८	११५
जघन	५१	१०३	झड् कृत	५३	१०१	तीर्थकर	५८	११६
जठर	{ ५१ ७६	१०२ १५६	त			तीर्थकृत्	५८	"
जठ	८०	१६६	तक्र	६२	१२३			
जनक	१८	३८						

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
तीर्थ कर	५८	११६	दशमीस्थ	५४	१०८	दृष्टि	४९	९९
तीव्र	८७	१८४	दशा	६२	१२४	देव	३०	५६
तुक्	१८	३९	दम्यु	७	१४	देवानाप्रिय	८०	१६६
तुङ्ग	७६	१५८	दहन	३३	६५	देह	१९	३८
तुर्ग	२७	५२	दामोदर	३७	७४	देहिका	७९	१६३
तुर्गम	२७		दारक	२०	४०	देत्यादि	७०	१४४
तुर्गमाह	३०	६०	दारा	१६	३२	दोम्	५०	१०१
तुला	६७	१३६	दारिका	१७	३६	दोष	{ २५	५०
तुलाकोटि	५३	१०७	दारुण	८७	१८४	द्युति	{ ५०	१०१
तुल्य	६७	१३६	दामी	१७	३६	द्युति	२३	४५
तुपाय	८५	१७९	दिक्-दिग्	३२	६१	द्युमणि	२६	४९
तुहिन	८५	१७९	दिक्पाल	३२	६१	द्युधुनी	३६	७१
तूर्ण	८३	१७२	दिगम्बर	३२	६१	द्युम्	{ २८	५३
तेजम्	२३	४५	दिग्गज	३२	६१	द्युम्	{ ३६	७१
तेजस्विन्	९०	१९३	दित	२६	५०	द्युत	६१	१२२
नोक	१९	३९	दिव्-दिव	{ २८	५३	द्यो	{ २८	५३
नोम	३९	७८	दिवस	{ ३०	५६	द्यो	{ ३०	५६
नाम	७	१५	दिवस	२६	५०	द्रविण	४७	९५
नोप	५४	१०९	दिवा	२६	५०	द्रव्य	४७	"
त्रिकुत्	४	८	दिग्वाकपति	५८	११६	द्राक्	७६	१५७
त्रिदश	३०	५६	दीक्षित	३	४	दुन	८३	१७२
त्रिनेत्र	३५	६९	दीधिति	२३	४५	दुम	५	११
त्रिपथगा	३६	७१	दीन	८४	१७५	दुहिण	३६	७१
त्रिपुरारि	३५	६९	दीप्ति	२३	४६	दुन्द	२	२
त्रिमार्गगा	७८	१६२	दीर्घ	८७	१८३	द्वय	२	"
व्यम्बव	३५	६८	दुग्ध	६२	१२२	द्वितय	२	"
द			दुग्नि	६६	१३१	द्विप	४५	८९
दष्टिन्	४६	९१	दुर्ग	६	१३	द्विद	४५	८८
दशवत्या	३२	६१	दुर्जन	२२	४४	द्विरेफ	{ १२२	८४
दण्ड	४३	८६	दुष्कृत	६६	१३१	द्विरेफ	{ ४२	८२
दन्त	४	९	दुष्ट	२२	४४	द्विष	२२	४४
दन्तवाम	५०	१००	दुहित्	२०	४०	द्विषन्	२२	"
दन्तिन्	४५	८८	द्वी	१७	३५	द्वेष	५६	१०९
दया	५४	११०	द्वी	८२	१७१	द्वेषिन्	२२	४४
दयित	१८	३७	द्वृ	७५	१५५	द्वैत	२	२
दयिता	१६	३३	द्वृतिहरि	७८	१६३	ध		
दरीभून्	४	८	द्वृप्त	८१	१६८	धन	४७	९५
दर्शनीय	८५	१७८	दृश	४९	९९	धनजय	७०	१४४
दशनच्छद	५०	१००	दृषत्	८२	१७०	धनद	४८	९६
			दृष्ट	५४	१०८	धनदाय	४८	"
						धनुष	४०	७९
						धन्वन्	४०	७९
						धमनीधम	५०	१००

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
धम्मिल्ल	९१	१९५	ननादू	२१	४३	नित्य	७७	१५९
घरणी	३	६	नन्दन	२०	४०	निदेश	७४	१५४
धरा	३	५	नभस्	२८	५३	निपुण	७९	१६४
धरित्री	३	६	नभस्वत्	३२	६३	निबोध	७३	१५२
धर्म	१०	७९	नभ्राट्	८	१८	निभ	६८	१३८
धर्मचक्रभूत्	५८	११६	नमुचिशत्रु	३०	५८	निम्नगा	१२	२४
धर्मात्मज	७१	१४६	नयन	४९	९९	नियन्त्रित	८५	१७६
धव	१८	२८	नग	१३	२८	नियामित	८५	१७६
धवल	७१	१८७	नगक	८९	१९०	नियोग	७४	१५४
धानु	८२	१७०	नलिन	१०	२०	निर्घात	९	१९
धानी	३	५	नव	७५	१५६	निर्व्यूह	६७	१३५
धानुष्क	७	१४	नव्य	१	१	निलय	६६	१३३
धामन्	{ २३ ६६	{ ४६ १३३	नाक	३०	५६	निवसन	५९	११७
विषणा	५५	११०	नाग	{ ४५ ६४	{ ८९ १२८	निवृत्त	६६	१३२
धिष्य	६६	१३२	नागरिक	८०	१६५	निवेशन	८९	१८९
धी	५५	११०	नागारि	४५	९०	निशा	२५	४८
धुनी	१२	२४	नाथ	५	१०	निशाचर	८१	१६९
ध्रुवं	२७	५२	नाथहरि	७८	१६३	निशान्त	६६	१३२
ध्रुम	७२	१४८	नाथान्वय	५८	११५	निपाद	७	१४
धूर्जटि	३५	६८	नाभिज	५७	११४	निपादिन्	४५	८९
धूर्त	७९	१६५	नाम	८०	१६५	निष्णान	७९	१६४
धूलि	७३	१५१	नाम्	३७	७३	निमग	८८	१८५
धूलिकुट्टिम	६७	१३४	नाम्न	३९	७८	निम्नल	८७	१८३
धेनु	५२	१०५	नागव	३७	७४	निर्गत्रग	४३	८५
धैर्य	८३	१७१	नारायण	३७	७४	नीच	{ ७६ ८१	{ १५८ १६८
ध्वजा	४३	८४	नागी	१८	३०	नीचैम्	७३	१५८
ध्वजिनी	४३	८६	नासा	५०	१०२	नीर	७	१५
ध्वान्तारि	२६	५०	निकट	६९	१४१	नील	७२	१४८
न			निकर	६९	१३९	नीलकण्ठ	६२	१२६
न	७६	१५७	निकाय	{ ६६ ६९	{ १३३ १४०	नीलपिञ्जरी	७३	१५०
नक्तम्	२५	४८	निकुरम्ब	६९	१	नीललोहित	३५	६९
नक्षत्र	२५	११	निकेतन	६६	१३२	नीलवसन	७०	१४२
नग	५	११	निगूढपुरुष	८६	१८२	नीलाम्बुजम्	११	२२
नगरी	४८	९७	निचय	६९	१४०	नीहार	८५	१७९
नद	१२	२४	निज	८८	१८५	नूतन	७५	१५६
नदी	१२	२४	नितम्ब	{ ४ ५१	{ ९ १०३	नूपुर	५३	१०७
नदीश्वरी-नदीश्वर	३६	७१	नितम्बिनी	१५	३१	नृ	१३	२८
नदीष्ण	७९	१६४	निमान्त	८३	१७३	नृप	{ ४ १४	{ ७ २८

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
नपक्रनु	५६	११२	परामु	५४	१०८	पाशित	८५	१७८
नेड	८०	१६६	परिखा	६७	१३४	पाशनीन	८५	१७६
नव	४९	९९	परिचित	५८	१०८	पाषाण	८२	१७०
नेक	६०	१६१	परिणयन	८९	१८९	पितामह	३६	७२
नैयायिक	५५	१११	परिधि	६७	१३४	पितृ	१८	३८
न्यच्	७६	१५८	परिवाद	८६	१८१	पितृद्व	८५	१७६
	प			८६	१८८	पिनाकिन	३५	६८
पक्षिन्	२९	५४	परिवृद्ध	५	१०	पिशित	२९	५५
पङ्क	{ १०	२०	परिषत्	१०	२०	पिशुन	८१	१६८
	{ ७३	१५२	परुष	७५	१५५	पिशगी	७३	१५०
पक्ति	६१	१४०	पर्जन्य	८	१८	पीठ	५६	११३
पटु	७९	१६४	पर्वत	४	८	पीत	७०	१४९
पट्टन	८८	९७	पल	२९	५५	पुश्चली	१७	३५
पण्डित	५५	१११	पल्लक	७७	१६०	पुटभेदन	४८	९७
पण्यन्त्री	१७	३६	पवन	३२	६२	पुण्य	६५	१२९
	{ २६	४६	पवनपुत्र	३३	६३	पुण्डरीक	१०	२१
पनङ्ग	{ २६	५४	पवमान	३२	६२	पुत्र	१९	३९
	{ २६	५४	पवनमख	३३	६४	पुनर्भू	१७	३५
पनत्रिन्	२९	५४	पशु	७०	१८३	पुमस्	१३	२८
पनाका	४३	८४	पासु	७३	१५१	पुर्	४८	९७
पनि	५	१०	पाकशत्रु	३०	५८	पुर्	८८	"
पनिवल्ली	१७	३४	पाटल	८	१९	पुर्	८८	"
पतिव्रता	१७	३४	पाटीन	८	१७	पुर्न्दर	३०	५८
पत्नन	४८	९७	पाणि	५०	१०१	पुर्न्द्री-पुर्न्द्री	१६	३१
पति	१४	२९	पाण्डु	७१	१४७	पुर्गण	७६	१५६
पत्नी	१६	३२	पाण्डुर	७१	१४७	पुर्ी	४८	९७
पत्रिन	२६	५४	पाताल	८९	१९०	पुरु	५७	११४
पथिन	७८	१६१	पाथस्	७	१५	पुरुष	१३	२८
	{ ५१	१०३	पाद	{ २३	४५	पुरुषोत्तम	३७	७४
पद	{ ६६	१३३		{ ५१	१०३	पुरुहुत	३०	६०
	{ ६८	१३८	पादप	५	११	पुरोगति	४६	९२
पदग	१४	२९	पाप	६६	१३१	पूर्ण	६२	१२३
पदानि	१४	"	पाप्मन्	६६	"	पुलिन्द	७	१४
पद्य	१०	२०	पाग	१३	२६	पुलोमारि	३०	६०
पद्मनाभ	३७	७५	पारावार	१२	२५	पुष्कर	११	२१
पल्लग	६४	१२८	पारिषद्य	५६	११८	पुष्करिन्	४५	८९
	{ ७	१५	पार्श्व	४	९	पुष्कल	{ ८४	१७३
पयम्	{ ६२	१२२	पालाश	७२	१४९		{ ९०	१९४
पयोधर	५१	१०२	पाली	१३	२७	पुष्प	४०	८०
पराग	७३	१५१	पावक	३३	६४			

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
पुष्पहेति	४२	८३	प्रवृत्ति	७४	१५४	फुल्ल	४०	८०
पुग	६९	१३९	प्रशस्त	८६	१७८	व		
पूषन्	२६	४९	प्रसन्ना	६१	१२१	वढ	८५	१७६
पृतना	४३	८६	प्रसव	४०	८०	वन्धकी	१७	३५
पृथिवी	३	५	प्रसाधन	६०	११८	वन्धु	२१	४२
पृथुरोमन्	८	१७	प्रमूत	४०	८०	वन्धुर	८५	१७८
पृथुल	८७	१८३	प्रस्तार	८२	१७०	वल्	{ ४३ ७०	८६ १४२
पृथु	८७	"	प्रस्थ	४	९	बलशत्रु	३०	५८
पृथ्वी	३	५	प्रसन्ना	१६	१२१	बलाहक	८	१८
पुषत	६४	१२७	प्रागु	८७	१८३	बलिमूदन	३७	७५
पेयल	७५	१५५	प्राकार	६७	१३४	बहिष्ठ	९०	१९१
पेशिन्	२९	५५	प्राक्नन	७६	१५६	बहु	९०	१९५
पोन	२०	४०	प्राचीनबहि	३०	५७	बहुल	{ ८७ ९०	१८३ १९७
पोत्रिन्	४६	९१	प्राज्य	९०	१९१	बाण (बाण)	३९	७८
पौष्प	८३	१७१	प्राज्ञ	५५	१११	बाणवारण	९०	१९४
प्रकर	६९	१४०	प्राभन	९०	१९१	बाणमूदन	३७	७५
प्रकृति	८८	१८५	प्रायम्	६२	१२३	बाणी (बाणी)	५४	१०४
प्रगल्भ	७९	१८४	प्रारभ्य	५२	१०४	बाल	९०	१९५
प्रचर	७८	१६०	प्रालेय	८५	१७९	बाला	१५	३१
प्रचुर	९०	१९१	प्रावृषिक	६३	१२६	बाहु	५०	१०१
प्रजा	१९	३९	प्रामाद	६७	१३५	बाहुशिग्म्	५०	"
प्रजापति	{ ३७ ५७	७४ ११४	प्रिय	{ १८ ७४	३७ १५४	विमिनी	११	७३
प्रज्ञा	५५	११०	प्रिया	१६	३३	वध	५६	११२
प्रणयिनी	१६	३३	प्रियाम्बिका	२२	४३	वध्न	२६	४९
प्रणिधि	{ ८१ ८६	१६९ १८२	प्रीत	१८	३७	व्रजान्	७३	११४
प्रतिरोधक	८१	१६९	प्रीमन्	७७	१६०	ब्रीहि	८१	१६९
प्रतीन	५४	१०८	प्रीयम्	१८	३७	भ		
प्रतीली	६७	१३४	प्रीयमी	१६	३३	भ	२५	४८
प्रत्यग्र	७५	१५६	प्रीयित	५२	१०४	भग	१३	२७
प्रभञ्जन	३२	६३	प्रीष्ठा	१६	३३	भट	{ १४ ५३	२९ १०६
प्रभा	२३	४५	प्रीत्य	७४	१५४	भद्र	९१	१९८
प्रभु	५	१०	प्लवग	६	१२	भर्तृ	५	१०
प्रमथाधिप	३५	६८	फ			भर्तु स्वसा	२१	४३
प्रमद	५४	१०९	फणिन्	६४	१२८	भर्मन्	४७	९३
प्रमदा	१६	३३	फलिन्	५	११			
प्रमोद	५४	१०९	फलेग्राहिन्	५	११			
प्रवीण	७९	१६४	फल्गु	७५	१५५			
प्रवीर	९०	१९३	फाल्गुन	७०	१४३			

शब्दानुक्रमणिका

११७

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
भरतान्वय	७१	१४८	भ्रातृजानी	२१	४३	मन्यु	५४	१०९
भव	{ ३५ ९०	७० १९२	भ्रातृव्य	२२	४४	मत्रपूतान्मन्	६५	१२९
भवन	६६	१३२	म			मय	४६	९१
भविक	९१	१९८	मकरवज	३९	७७	मयूखवन्	२८	५२
भव्य	९१	१९८	मकरन्द	७३	१५१	मयूर	६३	१२६
भागधेय	६५	१३०	मधु	८३	१७२	मगल	६३	१२५
भागीरथी	३६	७१	मगल	९१	१९८	मरीचि	२३	४५
भाग्य	६५	१३०	मद्यवन्	३०	६०	मरुत	३०	५९
भानु	{ २३ २६	४५ ६९	मजीरक	५३	१०७	मरुन्	{ ४ ३२	८ ६२
भामा	१५	३१	मडल	६६	९२	मरुवन्	३०	५९
भामिनी	१४	३०	मडलाग्र	४३	८५	मरुपुत्र	३३	६३
भागती	५२	१०४	मणिन	५३	१०६	मरुमय	{ ३० ३३	६० ६४
भाषा	१६	३२	मनगज	४५	८८	मर्कट	६	१२
भात्र	९०	१९२	मताग्रम्ब	६७	१३५	मर्त्य	१३	२८
भावुक	९१	१९८	मन्थ	८	१६	मर्म	८९	१८८
भास्	२३	४५	मत्तवाग्ण	६७	१३५	मलिन	७३	१५२
भामुर	९०	१९३	मयित	६२	१२३	मल्लिका	५९	११३
भास्कर	२३	४६	मदन	३९	७७	मलीमम	७३	१५२
भाम्बर	९०	१०३	मदिग	६१	१२०	महनि	५८	११५
भिक्षु	२	३	मद्य	६१	१२०	महम्	२३	६६
भोक्त	१४	३०	मद्यप	६१	१२१	महावीर	५८	११५
भुज	५०	१०१	मधु	७३	१५१	महाहव	४६	८७
भुजगम	६४	१२८	मधुवाग	६१	१२१	महिला	१६	३२
भवन	५७	११३	मधुव्रत	४२	८२	महिदी	७९	१६३
भू	३	५	मधुसूदन	३७	७५	मही	३	५
भूमि	{ ३ ३८	५ ७६	मध्यमपाण्डव	७०	१४३	मही	३	५
भूमिधर	३८	७६	मनम्	४५	८५	महेष्ट्वर	३५	६८
भूयिष्ठ	९०	१९१	मनस्विन्	९०	१९३	महोत्पल	१०	२१
भूयि	९०	१९१	मनस्विनी	१७	३४	माम	२९	५५
भूषण	६०	११९	मनीषा	५५	११०	मा	७६	१५९
भृग	४२	८२	मनुज	१३	२८	मातग	८५	८९
भृनक	१४	२९	मनुष्य	१३	२८	मार्तारिश्चन्	३२	६३
भृन्ध	१४	२९	मनीष	८५	१७८	मातुलानी	२२	४३
भृशम्	८३	१७३	मनीहर	८५	१७७	मातृ	१८	३८
भो	७६	१५७	मद	{ ८० ८७	१६६ १८४	मानव	१३	२८
भ्रमर	४२	८२	मन्दाकिनी	३६	७१	मानिन्	८१	१६८
			मन्दिर	६६	१३०	मानिनी	१६	३२
			मन्मथ	३९	७७	मानुष	१३	२८
						मार	६१	८१०

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
मार्ग	७८	१६२	मैत्री	९१	१९७	रक्षस्	२९	५५
मार्गण	३९	७८	मैत्रेयिक	९१	१९७	रजन	४७	९४
मार्तण्ड	२६	४९	मेरेय	६१	१२०	रजनी	२५	४८
माला	६०	११९	मोघ	८८	१८६	रजम्	७३	१५१
मान्य	६०	"	मोड्य	३	४	रण	४४	८७
मिनगम	४५	८८	माकितक	४७	९४	रत्नाकर	१२	२५
मित्र	२०	४१	मौर्वी	४१	८२	रथ्य	२७	५२
मित्रयुक्	२०	"	य			रन्त्र	८९	१९०
मिहिर	८	१८	यज्ञागि	३५	६९	रमण	१८	३७
मीन	८	१७	यति	२	३	रमणी	१६	३३
मीनाकर	१२	२५	यन्तृ	४५	८०	रमणीय	८५	१७७
मुख	४९	९८	यम	{ २	२	रम्य	८५	"
मुग्ध	८०	१६६	{ ७१	१४५		रय	८३	१७२
मुग्धा	१४	३०	यमजनक	२७	५१	रवि	२६	४९
मुक्ता	१७	३५	यमल	२	२	रश्मि	२३	४६
मुद्	५४	१०९	यमुनाजनक	२७	५१	रमना	६०	११०
मुधा	८८	१८६	यशम्	७८	१५३	रम्य	८१	१९०
मुनि	२	३	यानुधान	२९	५५	रहम्	८४	१७५
मुरसूदन	३७	७५	यातृ	४५	८०	रह्य	८४	१७५
मुहुमुहुः	८८	१८५	याय	८७	१८४	राग	७७	१६०
मृक	८०	१६६	यादम्	८	१७	राजन्	५	१०
मूर्ख	"	"	यक्न	७७	१६१	राजयक्ष्मन्	७१	१४६
मूढ	"	"	युग	२	२	राजराज	४८	९६
मूर्ति	१९	३९	युगल	२	२	राजमय	५६	११२
मूर्द्धन्	५२	१०४	युग्म	७	२	रात्रिचर	२९	५५
मृग	६४	१२७	युन	७७	१६१	रात्रिजागर	४६	९२
मृगनाभिजा	५९	११७	युद्ध	४४	८७	रामा	१५	३१
मृगाक	८६	१७९	युधिष्ठिर	७१	१४६	रान्द्र	४८	९७
मृगेश्वर	४५	९०	युवति	१५	६१	रिपु	२०	४४
मृत	५४	१०८	योगिन्	२	३	रुचि	८८	१७८
मृत्यु	७१	१४५	योग्या	८५	१८५	रुचि	७३	८५
मृदु	७५	१५५	योषा	१४	३०	रुच्य	६०	११९
मृषा	८८	१८६	योषित्	१८	३०	रुद्र	३५	६९
मेखला	{ ४	९	योवन	६२	१२४	रुचि	{ ५९	११८
	{ ६०	११९	योवनि	६२	१२३		{ ८९	१८८
मेघ	८	१८	रहम्	८३	१७२	रुक्	५४	१०९
मेघपथ	२८	५३		{ ५९	११८	रूपाजीवा	१७	३६
मेदिनी	२	५	रक्त	{ ७२	१४९	रूप्य	४७	९४
मेधावी	५५	१११		{ ८१	१८८	रे	७६	१५७

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
रेणु	७३	१५१	वत्स	८१	१६७	वस्त्य	६६	१३३
रेवतीदयित	७०	१४२	वदन	४९	९८	वस्त्र	५९	११७
रै	४७	९५	वनू	१४	३०	वाग्मिन्	५५	१११
रोधम्	१३	२६	वन	{ ६	१३	वाच्	५२	१०४
रोपण	३९	७८		{ ७	१५	वाक्स्पति	९२	१९९
रोहिणीपति	८६	१७९	वनम्पति	५	११	वाजिन्	२७	५२
रोहिताश्व	३३	६५	वनिता	१४	३०	वात	३२	६२
	ल		वनेचर	६	१३	वानायन	६७	१३५
लक्ष्मन्	७२	१५२	वह्नि	३३	६४	वानग्	६	१२
लक्ष्मी	३८	७६	वपुस्	१९	३८	वाण (वाण)	३९	७८
लक्ष्मीपति	३८	"	वप्र	६७	१३४	वाणवाग्ण	९०	१९४
लघु	८३	१७२	वयम्	{ २९	५४	वाणमूदन	३७	७५
लज्जिका	१७	३६		{ ६२	१२४	वाणी (वाणी)	५२	१०४
लना	११	२३	वयस्या	२०	४१	वामलोचना	१५	३१
लनान्त	४०	८०	वग्	{ १८	३७	वायु	३२	६२
लपन	४९	९८		{ ८९	१८९	वायुपथ	२८	५३
लब्ध	५४	१०८	वग्टा	६४	११७	वायुपुत्र	७१	१४५
ललना	१४	३०	वगह	४६	९१	वार्	७	१५
लव	८९	१९७	वह्निनी	४३	८६	वार्ता	७४	१५४
लागल	७०	१४२	वर्ग	६३	१२५	वाग्ण	४५	८८
लाच्छन	७३	१५२	वर्ण	७४	१५३	वाग्ली	६८	१२७
लुब्ध	८४	१७५	वाणन्	२	३	वाग्नि	७	१५
लुब्धक	७	१४	वर्तुल	८७	१८३	वाग्नित्रि	१२	७३
लेलिहान	६४	१२८	वर्त्मन्	७८	१६२	वारिगाग्नि	१२	२६
लेय	८६	१८७	वर्द्धमान	५७	११५	वाहणी	६१	१२१
लाक	५७	११३	वमन्	९०	१९४	वाह्नीन	६३	१२४
लोह	८२	१७०	वर्षायम्	५७	११४	वासग्	२६	५०
लोहित	{ ७२	१४९	वह्नि (वह्नि)	६३	१२६	वामव	३०	५९
	{ ८९	१८८	वलक्ष	७१	१४७	वामम्	५९	११७
लोहिनी	७३	१५०	वलिम्ब (वलिम्ब)	१२	३७	वामुदेव	३७	७६
	व		वल्लभ	१८	३३	वाह	२७	५२
वक्ता	९२	१६९	वल्लभा	१६	२३	वाहिनी	४३	८६
वक्त्र	४१	९८	वल्लरी	११	२३	वि	२९	५४
वक्षम्	५१	१०२	वल्ली	११	२३	विकल	८९	१८७
वदोज	५१	१०२	वमनि	६६	१३३	विक्रम	८४	१७४
वचन	५२	१०४	वसु	४७	९५	विवक्षण	५५	१११
वनम्	५२	१०४	वमुधा	३	६	विट	१८	३७
वज्र	९	१९	वसुन्वरा	३	६	विटपिन्	५	११
वज्रिन्	३०	५७	वसुमती	३	५	विडीजम्	३०	५९
			वस्तु	४७	९५			

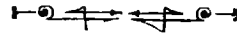
शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
वितथ	८८	१८६	विरवरूप	३५	७०	वंशारिण	८	१७
वित्त	४७	०५	विरवस	८८	१८५	वंश्रवण	४८	९६
विदग्ध	७९	१६६	विश्वम्भरा	३	५	वंशवानर	३३	६५
विद्यमान	८६	१३७	विष	७	१५	वश	६३	१२४
विद्युत्	९	१९	विषक्षय	६५	१२८	व्यतिकर	६८	१३८
विद्वत्	५५	१११	विषधर	६४	१२७	व्यपदेश	६८	१३८
विधातृ	३६	७२	विषय	४८	९७	व्यसन	८८	१८६
विधि	३६	७२	विगिर	२९	५४	व्याघ्र	४६	९०
विधिपुत्र	३७	७३	विष्टप	५७	११३	व्याज	६८	१३७
विधु	२४	४७	विष्टर	५६	११३	व्याघ्र	७	१४
विधुर	८८	१८६	विष्णु	३७	७४	व्यह	६९	१३९
विनतात्मज	६५	१२७	विष्मय	८४	१७४	व्रज	६९	१३९
विन्मान्य	६८	१३७	विहायम्	२८	५३		६९	१४०
विपिन	६	१३	वीचि	१३	२७		७८	१६२
विफल	८८	१८६	वीतगग	५८	११८	व्रतनी (व्रतति)	११	२३
विभावमु	२३	४६	वीर	५८	११५	व्रतिन्	२	३
	३३	६५	वृक	६४	१२७	व्रान	६९	१३९
विभु	५	१०	वृकोदर	७१	१८५	व्योमन्	२८	५३
विभ्रम	{ १३	२७	वृक्ष	४	७	श		
	{ ४९	१०	वृजित	६६	१३९	शकल	८९	१८७
वियन्	३८	५३	वृत्त	८७	१८३	शकुनि	२९	५४
वियोग	७७	१६०	वृत्तान्त	६८	१३८	शकुनीश्वर	६५	१२८
विरचिन्	३६	७२	वृत्तहन्	३०	५८	शकुन्ति	२९	५४
विरह	७७	१६०	वृथा	८८	१८६	शकुत्कारि	८१	१६७
विस्पाक्ष	३५	१०	वृषन्	३०	५९	शक्तिमन्	३४	६७
विरोचन	२६	५०	वृषभ	५७	१५४	शत्र	{ ३०	५७
विलम्बित	८७	१८४	वृषभध्वज	३५	६९		{ ९२	१९९
विशेषन	६०	११८	वृषभेश्वर	५९	११७	शक्रतन्दन	७०	१५४
विशोचन	४९	९९	वृषसेन	७०	१४४	शकर	३५	६८
विवर	८९	१९०	वृषाकपि	३३	६६	शपा	९	१८
विवाह	८०	१८९	वृ हित	५२	१०५	शम्	३५	६८
विवाद	{ ७२	१४८	वृ ग	८३	१७२	शम्भुविलकर	४३	८४
	{ ८४	१७३	वेधस्	३६	७२	शठ	७९	१६५
विशाख	३४	६७	वेला	१३	२७	शतक्रतु	३०	५७
विशारद	७९	१५६	वेश्मन	६६	१३२	शतपत्र	११	२१
विशारिन्	८	१७	वेश्या	१७	३६	शतमन्यु	३०	६०
विशाल	८७	१८४	वैजयन्ती	४३	८४	शत्रु	२२	४४
विशालाक्ष	३५	६९	वैनतेय	६२	१०९	शकटी	८	१७
विशिख	४१	८१	वैरिन्	२२	४४	शबरी	७३	१५१
विश्व	८८	१८६				शब्दभेदिन्	७०	१४४

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
शङ्ख	{ ७ ३९	१५ ७८	शिव	{ ३५ ९१	६८ १९०	श्रीद	४८	९६
शरण	६६	१३३	शिष्य	३	४	श्रुति	४९	९८
शरभ	४६	९०	शीघ्र	८३	१७६	श्रेयस्	९१	१९८
शरवणोद्भव	३४	६७	शीघ्रगामुक	४६	९१	श्रोणि(श्रोणी)	५१	१०३
शरीर	१९	३९	शीतल	८८	१८४	श्रोणीविज	६०	१२०
शर्व	३५	६७	शीघु	६१	१२०	श्रोतस्	६३	१२९
शर्वरी	६४	१२६	शीर्ण	८२	१७१	श्रोता	९२	१९९
शर्वरीकर	६४	१२७	शील	८८	१८५	श्रोत्र	४९	९८
शल्क	८९	१८७	शुक्तिज	४७	९४	श्रद्धा	८५	१७८
शव	७	१४	शुक्ल	७१	१४७	श्वन्	४६	९२
शशिन्	२३	४७	शुचि	७१	१४७	श्वभ्र	८९	१९०
शशिप्रभ	७१	१४७	शुडा-शुड	६१	१२१	श्वसन्	३२	६२
शश्वन्	७७	१५९	शुडाल	४५	८९	श्वेत	७१	१४७
शम्भ	४२	८३	शुनासीर	३०	५७	श्वेतवाजिन्	७०	१४३
शम्भजीविन्	१४	२९	शुभ्र	७१	१४७	श्वोवमीय	९१	१९८
शाखिन्	५	११	शुषिर	८९	१९०	ष		
शानकुम्भ	८२	१७२	शूकर	४६	९	प्रट्पद	४२	८२
शान्त	८२	१७१	शूर	९०	१९३	षड्दशन	८१	१६७
शारंगी-सारंगी	७३	१५०	शूलिन्	३५	७०	षडक्षीण	८	१७
शार्ङ्गिन्	३७	७४	शृङ्खलिक	४६	९१	पणमुख	३४	६७
शार्ङ्गल	४६	९०	शृङ्खलित	८४	१७६	षाष्टिक	८१	१६७
शालि	८१	१६७	शृङ्गिन्	{ ४ ७८	८ १६३	पोडन्	८१	१६७
शासन	७४	१५४	शेमुषी	५७	११०	स		
शाम्भ	२	४	शैल	{ ४ ३८	७ ७६	संयत	४४	८७
शाम्भन्	४	८	शैलधर	३८	७६	मयमिन्	२	३
शशिन्	{ ३३ ६३	६४ १२६	शोणित	८९	१८८	सयुग	४४	८७
शशिवाहन	३४	६६	शोणी	७३	१५०	मशिन	२	३
शिखडिन्	६३	१२६	शोड	६१	१२०	ससरण	९०	१९२
शिपिविष्ट	३५	७०	शोडीर	८१	१६८	ससार	९०	१
शिरस्	५०	१०४	शौरि	३७	७५	समृति	९०	१
शिरोधर	५०	१००	शौर्य	८३	१७१	सस्कृत	७७	१६१
शिरोरुह	९०	१९५	श्यामा	२५	४८	सस्तुन	५४	१०८
शिला	८२	१७०	श्येत	७१	१४८	सस्थित	५८	१०८
शिलीमुख	{ ३९ ४२	७८ ८२	श्येनी	७३	१५०	सहनन	१९	३८
शिलीमुखासन	४०	७९	श्रव	४९	९८	सहित	७७	१६१
शिलोन्वय	४	८	श्रवण	४९	९८	सकल	८८	१८७
शिलोद्भव	४७	९४	श्री	३८	७६	सक्त	६१	१२२
						सखी	२०	४१
						सख्य	९०	१९७

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
सगोत्र	२१	८२	सप्ताचिप्	३३	६४	सलिल	७	१५
मक्रन्दन	३०	६०	सप्ति	२७	५२	सवयम्	२०	४१
सगत	९१	१९७	सभोचित	५६	११२	सवर्ण	६७	१३६
सश्राम	४४	८७	सभ्य	५६	११२	सवितृ	१८	३८
सघ	६९	१४०	सम	{ ६७	१३६	{ २७	५१	
सघात	६९	१४०	{ ७७	१६९	सवित्री	१८	३८	
सजाति	६७	१३६	समज	६९	१४०	सव्यमाचिन्	७०	१४३
सजुष्	७७	१५९	समर	४४	८७	सह	७७	१५९
सचर	७८	१६२	समवर्तिन्	७१	१४५	सहकारिन्	२१	४२
सज्ञा	८०	१६५	समवायिक	२१	४२	सहकृत्वन्	२१	४२
सतन	८९	१८०	समवेत	७७	१६१	सहचरी	२०	४१
सतत	७७	१५७	समस्त	८८	१८७	महमा	८३	१७२
सती	१७	३४	समाज	६६	१३९	महाय	२१	८२
संस्कृत	६५	१२९	समालम्भ	६०	११८	सहस्रपात्	३६	७३
सत्य	८७	१८२	समिति	६९	१४०	सहस्राक्ष	३०	५८
सत्यकार	९१	१९७	समीगर्भ	३३	६६	सहित	७७	१६१
सत्रा	७७	१६०	समीप	६९	१४१	साकम्	७७	१६०
सदन	६६	१३२	समीगण	३२	६२	सागर	१२	२६
सदउचित	५६	११२	समुदय	६०	१४०	साधन	४३	८६
सदा	७७	१५९	समुद्र	१२	२६	साधीयम्	८३	१७२
सदागति	३२	६२	समुह	६९	१३९	साधु	{ २	३
सदुचित	५६	११२	सम्भराय	४४	८७	{ ८०	१७०	
सदृक्ष	६७	१३६	सम्पृक्त	७७	१६१	साधुवाद	७४	१५३
सदृश	६७	१३५	सम्फली	१७	३५	साध्वी	१७	३४
सदृश	६७	१३६	सम्भूत	७७	१६१	सानु	४	९
सदमन्	६६	१३२	सम्बन्ध	२०	४१	सानुमन्	४	८
सधर्म	६७	१३६	सर्गिण	७८	१६२	सामज	४५	८९
सधृची	२०	८१	सर्गमीरुह	१०	२०	साम्प्रतम्	७५	१५६
सनातन	६३	१२५	सर्गस्वन्	१२	२६	साम्प्रमेय	४६	९२
सनाभि	२१	४२	सर्गस्वती	५२	१०४	साढ	७७	१५९
सन्तति	{ ६३	१२४	सगित्	१२	२४	माल	{ ६७	१३५
{ ६९	१३९	सर्प	६७	१३६	{ ८६	१८१		
सन्तमस	७२	१८८	सरोज	१०	२०	साहस	७४	१५३
सन्तान	६३	१२५	सर्प	६४	१२८	गाहाय्य	६२	१९७
सन्देश	७४	१५४	सर्पिष्	६१	१२२	सित	{ ७१	१४९
सन्धानीत	८५	१७६	सर्व	८८	१८७	{ ८५	१७६	
सन्निधि	६९	१४१	सर्वज्ञ	५८	११६	सिद्धान्त	३	४
सन्मति	५८	११५	सर्वदा	७७	१५९	सिन्धु	१२	२४
सपत्न	२२	४४	सर्ववल्गुभा	१७	३६	सिन्धुर	४५	८९
सपदि	७६	१५७				सिंह	५२	१०५

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
सीत्कृत	५३	१०६	सीहृद	९१	१९७	स्वाहापति	३३	६५
सीमन्	१३	२६	सीहृद्य	९१	१९७	स्वैरिणी	१७	३५
सीमन्तिनी	१४	३०	स्कन्द	३४	६६	ह		
सीर	७०	१४२	स्तन	५१	१०२	हस	६३	१२५
सुकृत	६५	१२१	स्तनधय	२०	४०	हसवान्	६३	१२५
सुचिरनन	७६	१५६	स्तनित	५३	१०५	हसी	६४	१२७
सुत	१९	३९	स्तब्ध	{ ७५	१५६	हहो	७६	१५७
सुधासूति	२४	४७		{ ८१	१६८	हन्तोक्ति	५४	११०
सुनाशीर	३०	५७	स्तम्बकगि	८१	१६७	हय	२७	५२
सुनिर्मोक	७०	१४४	स्तम्बेगम	४५	८८	हर	३५	७०
सुन्दर	८५	१७७	स्तेन	८१	१६९		{ ६	१२
सुन्दरी	१५	३१	स्त्री	१४	३०	हग्नि	{ २७	५२
सुपणं	६५	१२९	स्थपुट	८७	१८३		{ ३०	५७
सुभट	९०	१९६	स्थविर	६३	१२४		{ ३७	७४
सुमन	४०	८०	स्थाणु	३५	६८		{ ४५	९०
सुग	३०	५६	स्थान	६६	१३३	हरिण	६४	१२७
सुगा	६१	१२१	स्नेह	७७	१६०	हरिणी	७३	१५०
सुवर्ण	४७	९३	स्पर्शा	१७	३५	हरित्	{ ३२	६१
सुष्ठु	८३	१७३	स्पष्ट	८४	१७३		{ ७२	१४९
सुहृत्	२०	४१	स्फीकृत	५२	१०५	हरित	७२	१४९
सूत्रामन्	३०	५७	स्फुट	८४	१७३	हरिद्राभ	७२	१४९
सूनु	१९	३९	स्मर	४०	८०	हरिवाहन	३०	५९
सूनुत	८७	१८२	स्मृत	५४	१०८	हर्म्य	६७	१०५
सूरि	५५	१११	स्पद	८३	१७२	हर्ष	५४	१०९
सूय	२६	५०	स्पन्दन	५३	१०६	हल	७०	१४२
सूप कारि	३९	७७	स्रज्	६०	११९	हलि	७०	
सेना	४३	८६	स्रष्टृ	३६	७३	हव्यवाह	३३	६६
सेनानी	३४	६६	स्रवन्ती	१२	२४	हस्न	५०	१०१
सनानीपितृ	३५	६८	स्रोतस्विनी	१२	२४	हस्नगावा	५०	१०१
सेन्द्र	३०	५६	स्रोतस्विनीपति	१२	२५	हस्तिन्	४५	८८
सेन्य	४३	८६	स्व	४७	९५	हाटक	४७	९२
सोदय	२१	४२	स्वभाव	८८	१८५	हार्द	९१	१९७
सोमवश	७१	१४६	स्वर्	३०	५६	हाला	६१	१२१
सौभामिनी	९	१८	स्वर्ग	३०	५६	हिम	{ ५९	११८
साध	६७	१३५	स्वर्ण	४७	९३		{ ८५	१७९
साम्य	८७	१७७	स्वसृ	२१	४३	हिमवत्सुता	३६	७१
सौरभ	९१	१९७	स्वान्त	४१	८१	हिरण्य	४७	९३
सौरि	३८	७५	स्वामिन्	{ ५	१०	हिरण्यकशिपुसूदन	३७	७५
सोहादं	९१	१९७		{ ३४	६७	हिरण्यगर्भ	३६	७३
						हिरण्यप्रेतम्	३३	६४

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
हीन	८२	१७१	हृद्य	८५	१७८	हैमन्	४७	९३
हुताश	३३	६५	हृषीक	६५	१२९	हेरिक	८१	१६९
हुताशन	३३	६६	हृषीकेश	३७	७४	हेषा	५२	१०५
ह्रकृत	५३	१०५	हे	७६	१५६	हैयगवीन	६१	१२२
हृदय	४१	८१	हेति	४२	८३	ह्रस्व	७३	१५८



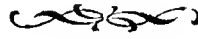
अनेकार्थनाममालास्थशब्दानुक्रमणिका

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
अ			कैवल्य	१००	४८	दाव	९७	१८
अक्ष	९८	२६	कोटि	९६	१५	द्रव्य	१००	४१
अज	९८	२१	क्षीर	९५	१३	द्विज	९७	११
अञ्जन	९४	९	ग			ध		
अथ	१००	३९	गुण	१००	३७	धर्म	१००	४१
अद्रि	९५	११	गुह्य	९६	१५	धानु	९९	३२
अनन्त	९३	४	गो	९८	२७	धिष्ण्य	९४	७
अन्त	९८	२५	घ			प		
अन्तर	१००	३८	घृत	९३	५	पतग	९४	८
अब्द	९७	१७	च			पयस्	९६	१३
अम्बर	९४	७	चर्चा	९७	१७	पजन्त्य	९३	४
अर्घ	९६	१६	ज			पाञ्चजन्य	९५	१०
अर्थ	९८	२४	जात्य	९६	१६	पुद्गल	१००	४२
अशोक	९५	१२	जिन	९३	३	पुन्नाग	९४	९
इ			जीमूत	९३	४	पुष्कर	९९	२९
इति	१००	४०	ज्योतिष्	९४	६	प्राय-प्रायस्	९८	२४
क			त			बाधा	९६	१५
कदली	९५	१२	तत्र	१००	३६	ब्रह्मवाच	१००	३७
कम्बु	९५	१०	तल्प	९४	६	भ		
कम्बर	९५	१०	तार	९५	१३	भग	१००	४३
काण्ठा	९६	१४	ताक्ष्य	९७	१६	भाव	९८	२४
कीनाश	९७	१९	तीर्थ	९९	३१	भुवन	९३	५
कीलाल	९६	१५	द			भूरि	९५	१३
केतन	९४	७	दव	९७	१८			

भाष्यस्थशब्दानुक्रमणिका

१२५

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
म			विवस्वत्	९३	३	सारग	९४	९
मयूख	९४	८	विष	९४	५	सारम	९४	८
र			वृषाकपि	९३	३	साल	९४	७
रम्भा	९५	११	वैकुण्ठ	९३	४	सिन्धु	{ ९४	७
रस	९९	३०	व्यामोह	९६	१४	{ ९६	१४	
राजन्	९५	११	श			सुमनस्	९५	१२
राम	९५	६	शङ्कु	९७	१८	सोम	९७	२१
ल			शम्भु	९३	३	स्तम्भ	९७	१७
लब्ध	१०१	८८	शिखरिन्	९५	११	स्थाणु	९७	१७
ललाम	९९	३३	शुचि	२८	२३	म्यन्दन	९५	११
व			म			स्यान्	१०१	४५
वन	९३	५	सत्त्व	१००	३६	स्वर	९९	३५
वर्गणा	१००	८२	मन्त्रि	९६	१४	स्वैर	९७	१७
वर्ण	९९	३४	ममय	९९	३५	ह		
वाम	९८	६	मन्त्र	९४	९	हम्	९७	२०
विरोचन	९७	२०	मान	९४	८	हन्ति	९८	२८



नाममालाभाष्यस्थशब्दानामकारादिसूची

शब्द	पृष्ठ	पंक्ति	शब्द	पृष्ठ	पंक्ति	शब्द	पृष्ठ	पंक्ति
अ			अचिराशु	९	२०	अन्धकरिपु	३६	४
अशु	२६	२१	अच्युत	३८	१५	अन्धनमम	७२	१२
अशुमान्	२६	२१	अण्डज	८	२८	अपथी	२३	२
अशुमाली	२६	२०	अतिमात्र	८३	१८	अपसर्प	८६	२३
अक्ष	४९	२३	अतिवेल	८३	१८	अपापित	३४	१६
अग	६	६	अत्रिनेत्रप्रसूत	२४	२५	अफल	६	२४
अग्निभू	३५	३	अधिष्ठान	४९	८	अब्ज	२४	२५
अग्रधन्वन्	३१	२६	अनन्त	२८	१५	अब्द	९	१२
अग्रिय	२१	१८	अनन्ता	४	६	अब्धिजा	३८	२२
अङ्गज	३९	१२	अनद्वय	७७	११	अभिक	१८	२०
अङ्गुर	५०	२४	अनिमिष	३०	१४	अभिख्या	७४	१३
अङ्गुरी	५०	२४	अनीक	४५	२	अभिजन	६३	८
अचला	४	६	अनोकिनी	४४	२०	अभिनव	७५	१७

शब्द	पृष्ठ	पंक्ति	शब्द	पृष्ठ	पंक्ति	शब्द	पृष्ठ	पंक्ति
अभिमन्थी	२३	३	आ			उदधि	१३	२
अभियाति	२३	१	आ	३८	२२	उदन्त	{ ६८ ७५	२० २
अभिसारिका	१७	१७	आच्छादन	५९	१०	उदन्व न्	१३	२
अभीक	१८	१९	आत्मीय	२१	१०	उद्धव	५४	२४
अभीशु	२३	१८	आदित्य	{ २६ ३०	१० १२	उधस्य	६२	१३
अभ्यग्र	७०	१	आधार	६०	७	उपकण्ठ	६९	२३
अभ्यागम	४५	२	आनन	८	७	उपगत	९१	१०
अमुक	१८	२०	आप्त	२१	१०	उपध्वनि	२३	१०
अमृत	८	४	आप्तरूप	५६	८	उपमा	६८	८
अमृतनिर्गम	२५	२	आभील	८७	२०	उपलब्धि	५५	८
अमृताशन	३०	१४	आमिष	२०	२१	उपहूर	८४	१८
अम्बा	१८	२३	आयत	७६	१८	उपाधि	६८	१८
अम्बुभृत्	९	१३	आयोधन	४५	१	उरमिज	५१	२३
अयन	७८	१२	आरात्	६०	२३	उरु	८७	१८
अरण्यश्रवा	६४	१४	आरोह	७१	०	उपश्रुत्य	३४	१५
अरण्यानी	६	२३	आशीविष	६५	१		ऊ	
अरिष्ट	६२	१८	आशुग	३३	८	ऊभि	१३	१७
अचिष्मान्	३४	१५	आश्रयाश	३४	१६		ऋ	
अर्चनि	२७	२५	आशुत	०१	१०	ऋक्व	४८	७
अध	८९	४	आमन्न	७०	१	ऋक्षेग	२४	२५
अर्भक	२०	२	आमव	६१	१५	ऋभु	३०	१३
अलंकार	६०	११	आम्कन्दन	४५	१	ऋश्व	६४	१७
अवनमम	७२	१२	आहाय	४	२०	ऋगि	४३	२३
अवदान	७४	१५		इ		ऋष्य	६४	१७
अवयव	१०	१६	इक्षुद	१३	३		ए	
अविनश्वर	७७	११	इत्तिकिल	१०	१०	एकपदी	७८	१२
अविनीता	१७	१७	इन्वगी	१७	१७	एकान्त	८४	१८
अव्यय	८८	१६	इन्दिन्दिर	४०	९	एण	६४	१७
अशुभ	६६	१०	इन्दु	२४	२४		ऐ	
अश्मन्	८२	९	इन्द्रावरज	३८	१५	ऐरावती	०	३१
अशीवान्	५१	२२		ई			क	
असती	१७	१७	ई	२८	२२	ककुद्मती	५१	१९
असम्पूर्ण	८०	८	ईगान	३६	०	कङ्कपत्र	३०	२०
असहन	२०	०		उ		कच्छ	१३	९
अमुहृत	२३	०	उत्कर्ष	७८	२४	कञ्चुकी	६५	३
अस्रप	२९	२८	उदक	८	४	कटिसूत्र	६०	१०
अम्बपन	३०	१३	उदग्र	७६	१८	कटीर	५१	१९
अहर्पति	२६	२२						

भाष्यस्थशब्दानुक्रमणिका

१२७

शब्द	पृष्ठ	पंक्ति	शब्द	पृष्ठ	पंक्ति	शब्द	पृष्ठ	पंक्ति
कडत्र	५१	१९	कालिन्दीमोदर	७१	११	कैतव	२८	१८
कदम्ब	{ ३९ ६३	२१ १२	काश्यपनन्दन	६५	१६	कैवविप्रिय	३७	८
कदर्य	८५	१	काश्यपी	८	७	कोल	४६	१५
कनिष्ठ	२१	१५	किण्व	६६	१०	कोर्वद	५६	२
कन्धग	५०	११	किम्पचान	८५	१	कोणप	२९	२८
कन्याङ्ग	५२	०	किर्	४६	१६	कौमृतिक	८०	२
कपट	६८	१८	किग्नि	४६	१५	त्रतुपुरुष	३७	१४
कबन्ध	८	८	किमि	११	२७	क्रव्याद	२९	२८
कमल	८	८	कानाग	{ २० ७१	२८ ११	क्रीव	८५	१
कमला	३८	२१	कीलाल	८	८	क्षणिक्का	९	२०
कमिता	१८	१०	कीय	६	१५	क्षितिघर	४	३०
कम्बल	६५	२१	कुज	६	५	क्षीर	८	८
कर्णजप	८१	२१	कुट	६	५	क्षीरोद	१३	२
कर्दमज	१०	१२	कुण्डली	६५	१	क्षारोदनया	३८	२१
कर्पट	५९	१२	कुध	४	३०	क्षुद्र	{ ८१ ८५	२१ १
कर्पूर	{ २९ ४७	२८ १५	कुन्तल	९१	१	क्षुल्ल	८५	१
कर्मसाक्षी	२६	२२	कुमुदविवल्लभ	२७	७	क्षुल्लक	८५	१
कर्पु	१२	११	कुम्भीनम	८५	३	क्षेत्र	{ १६ १९	१५ १६
कलत्र	५१	१८	कुरग	६४	१७	क्षेत्रज	७९	२०
कलम्ब	३९	२०	कुरगम	६८	१७			
कलाधीन	४७	१९	कुल	६७	२			
कलाप	{ ५३ ६०	१४ १६	कुल्या	१२	११	खग	२६	२१
कल्क	६६	९	कुल्लक	८०	२	खर	३९	२१
कल्मष	६६	१०	कुहर	८९	२१	खर्जर	८७	१९
कल्प	६१	१६	कुत्र	५१	१०			
कल्याण	४७	१५	कूट	६८	१८	ग		
कवि	५६	२	कल	१३	०	गन्धदारिका	१८	६
कश्य	६१	१६	कूटङ्कप	१२	१०	गन्धर्व	२७	२४
काकोदर	६५	२	कृतकर्मा	७०	२०	गन्धोत्तमा	६१	१५
काञ्चीपद	५१	१८	कृतमुख	७०	२०	गन्धिल	६०	१७
कान्ता	१६	१	कृतहस्त	७९	२०	गर्भपोत	२०	२
कापिशायन	६१	१६	कृती	५६	२	गाङ्गेय	{ ३५ ४७	४ १५
कामध्वमी	३६	८	कृतिवामा	३६	५	गाङ्गेपद	३९	२१
कार्पटिक	८०	२	कृपीटयोनि	३४	१५	गिरिक	४७	१५
कालसार	६४	१७	कृष्टि	५६	२	गिरिश	३६	३
कालिङ्ग	४५	१६	कृष्णवर्त्म	३४	१६	गीर्वाण	३०	१३
कालिन्दीकर्षण	७०	११	कृष्णसार	६४	१७	गङ्गिका	४७	१९
			केतु	२३	१९	गुरु	८७	१८

शब्द	पृष्ठ	पंक्ति	शब्द	पृष्ठ	पंक्ति	शब्द	पृष्ठ	पंक्ति
गुल्मिनी	११	२७	चन्द्रहाम	४३	३६	जैवातृक	२५	२
गूढ	४४	२०	चपला	{ १	२०	ज्ञ	५६	०
गूढपात्	६५	१	चय	१७	१७	ज्ञानि	२१	१०
गूहा	१६	१५	चला	६३	१२	ज्योति	४९	२३
गोकर्ण	६५	३	चामीकर	३८	२२			
गोकुल	७८	१८	चामीकर	४७	१५	ड		
			चिह्न	१०	२०	डिम्भ	२०	२
गोत्र	{ ८	{ ३०	चिकित्स	१०	१०	त		
	{ १०	{ १६	चित्रक	८६	११	तटिनी	१२	१०
	{ ६३	{ ८	चित्रकाय	८६	७	तटी	१३	१
गोत्रभिद्	३१	२६	चित्रपुङ्ख	३९	२०	तडित्कान्	०	१३
गोपति	{ २६	२०	चित्रभान्	{ २६	२१	तनया	२०	१४
	{ ३१	२६	चित्रभान्	{ ३१	१५	तन्त्र	४४	२०
गोष्ठ	७८	१८	चीवर	५०	११	तन्त्री	६०	११
गौर	७८	१				तमाल	६६	०
गौरीपुत्र	३५	३	ज			तमस्विनी	२५	२५
ग्रावन्	८७	९	जगच्चक्षु	२६	२०	तमालपत्र	८३	११
ग्रावा	८	३०	जगत्कर्ता	३७	१०	तमिस्र	७२	१०
ग्रीवी	८६	१९	जगन्प्राण	३३	७	तमिस्रा	२५	२१
			जघन	५१	१०	तमी	२५	२५
घ			जङ्घा	५१	२०	तमोघ्न	२१	१०
धन	१९	१६	जनास्तिक	८४	१८	तरक्षु	४६	८
धनरस	८	३	जन्य	८५	१	तरम	२१	२०
धन	२६	२८	जम्बाठ	१०	१०	ता	३८	२०
घृणि	२३	१९	जम्बूनद	८०	१५	तार	८७	१०
घृत	६०	७	जयन्त	८३	१०	तारका	८०	२६
घृतोद	१३	३	जयन्ती	४३	१०	तारकारि	३५	३
घोटक	२७	२५	जरट	६३	४	तागपथ	२८	१४
घोणा	५१	२	जरन्	६३	४	ताधर्य	२७	२५
			जलचर	८	२०	निग्माशु	२६	१
च			जलमुच्	०	१३	निमिररिपु	२६	२०
चक्र	४४	२०	जलराशि	१३	०	तीर	१३	१०
चक्रवाल	६३	१२	जलशयन	३८	१०	तुण्ड	८०	१४
चक्राङ्गवाह	६०	२५	जाल	{ ६३	१३	तुन्द	५१	१०
चक्री	६५	१	जालक	{ ६७	२३	तोयनिधि	१३	०
चक्षुध्रवा	६५	०	जालिक	६७	२३	त्रयीतनु	२६	२०
चञ्चरीक	४२	९	जालिक	८०	२	त्रिक	५१	१०
चञ्चला	९	२१	जिघासु	२३	२	त्रिकस्थानक	५१	१०
चटुला	०	२१	जिन	३८	१५	त्रिदश	३०	१०
चन्द्रकी	६४	३	जिष्णु	३१	२५			
चन्द्रवसु	८७	१५	जिह्वाग	६५	०			
चन्द्रसज	६०	७	जीर्ण	६३	४			

त्रिदशदीर्घिका	३६	११
त्रिदिव	२८	१५
त्रिपथा	७८	१५
त्रिपुरान्तक	३६	३
त्रिप्रचरा	७८	१५
त्रियामा	२५	२६
त्रिवर्त्मा	२७	१५
त्रिविष्टपगद्	३०	१३
त्रिमचरा	७८	१५
त्रिमरणि	७८	१४
त्रिम्रोता	३६	११
त्र्यध्वा	७८	१४

द

दक	८	४
दक्ष	७९	२०
दक्षाध्वरध्वसक	३६	४
दक्षिणापति	७१	१२
दण्डधर	७१	११
दण्डाहत	६२	१८
दध्युद	१३	३
दन्तावल	४५	१६
दन्दशूक	६५	२
दमुना	३४	१६
दम्ना	३४	१७
दयिता	१६	१
दर्वाकर	६५	२
दल	८९	४
दशमीस्थ	६३	४
दस्यु	{ २३ ८२	{ ३ ४
दाक्षायणीरमण	२५	२
दाण्डाजिनक	८०	२
दाव	६	२३
दाशार्ह	३८	१४
दामेरक	४६	१९
दिगम्बर	७२	१३
दिनकर	२६	२०
दिनमणि	२६	१९
दिवम्पति	३१	२७

दीर्घ	७६	१८
दीर्घजङ्घ	४६	१९
दीर्घपृष्ठ	६५	२
दुर्गति	९०	१
दुर्जन	८१	२१
दुर्वर्ण	४७	१०
दुहृत्	२३	३
दुश्च्यवन	३१	२५
दुकथुति	६५	३
देवता	३०	१२
देवन	३०	१४
दोषग्राही	८१	२१
दोषज्ञ	५६	२
द्यु	२६	२८
द्युम्न	४८	६
द्रक्ष	४९	८
द्रु	६	५
द्रुणा	४२	१
द्वन्द्व	४५	२
द्वादशान्मा	२६	२२
द्विजगज	२५	१
द्विजिह्व	८१	२१
द्विगमन	६५	२
द्वीपवती	१२	११
द्वीपी	४६	७
द्वेषण	२३	२

ध

धनञ्जय	३४	१६
धरणिधर	३८	१४
धर्मराज	७१	११
धर्पणी	१७	१७
धव	१८	१९
धाम	२३	१९
धाराधर	९	१२
धीर	५६	१
धूपक	४६	१९
धूमध्वज	३४	१५
धूमयोनि	९	१३
धूमल	७२	७

धूमिका	८५	२५
धृष्णि	२३	१९
ध्रुव	७७	११

न

नक्तमुखा	२५	२५
नखरायुध	४६	४
नलिनी	११	२२
नाक	२८	१५
नागान्तक	६५	१६
नालीक	८०	१५
नासिका	५१	२
निशालक	८४	१८
निकाय	६३	११
निकुरम्ब	६३	१२
निखिल	८८	२४
निगम	{ ४९ ७८	{ ८ १२
निगराम्	८८	११
निगय	९०	१
निर्जर	३०	१२
निर्झरिणी	१२	१०
निर्व्ययन	८९	२१
निवह	६३	११
निशीथिनी	२५	२६
निशीथिनीनाथ	२५	१
निषद्वर	१०	१०
नृत्न	७६	१७
नृपलक्ष्म	९०	२६
नेम	८९	८
नेस्ता	५१	१
नैकपेय	२९	२८
नैकमेय	२९	२८
नैर्ऋत	२९	२८
न्यङ्क	६४	१७

प

पङ्क	६६	१०
पङ्कज	१०	१२
पञ्चशाख	५०	१९
पञ्चानन	४६	४

पञ्चेषु	३९	१२	पिण्ड	१९	१६	प्रच्छन्न	८४	१८
पट	५९	१३	पितृपति	७१	११	प्रतन	७६	४
पटी	५९	१३	पोतवासा	३८	१३	प्रतानिनी	११	२७
पट्टसूत्र	६१	१	पोति	२७	१५	प्रतिकिट्ट	६६	१०
पताकिनी	४४	२०	पीयूष	६२	१३	प्रतिज्ञात	९१	१०
पति	१८	१९	पीयूषरुचि	२५	१	प्रतिपक्ष	२३	२
पदजेय	१४	३०	पीलु	४५	१६	प्रतिभय	८७	२२
पदवी	७८	१२	पुञ्ज	६३	१७	प्रतिभा	५५	१७
पदाङ्गद	५३	१४	पुटकिनी	११	२२	प्रतिम	६८	८
पदिक	१४	३०	पुण्डरीक	४६	७	प्रतिभोषक	८२	५
पद्ग	१४	३०	पुत्री	२०	१४	प्रतीक	१९	१६
पद्धति	७८	१२	पुद्गल	१९	१६	प्रतीपदर्शिनी	१६	१
पद्मगाशन	६५	१६	पुर	{ १९	१६	प्रन्त	७६	४
पद्मवासा	३८	२१		{ ६७	२	प्रत्यनीक	२३	२
पद्मा	३८	२१	पुरन्ध्री	१५	२८	प्रदह	३९	११
पद्मी	४५	१६	पुरुज	९०	७	प्रद्युम्न	३९	११
पद्या	७८	१२	पुलक	८२	९	प्रद्योत	२३	१९
पयूष	६२	१३	पुलप	१४	९	प्रद्योतन	२६	१९
पयोधर	९	१२	पुष्क	९०	७	प्रधन	८५	१
पर	२३	२	पुष्कर	{ ८	३	प्रपान	१३	१०
परमेश्वर	३६	३		{ २८	१४	प्रबुद्ध	५६	२
परमेष्ठी	३७	१०	पुष्ट	९०	७	प्रभाकर	२६	२१
परास्कन्दी	८२	४	पुष्पलिट्	४२	९	प्रभदा	१५	२८
परिपन्थी	२३	२	पूग	६३	१२	प्रलम्बघ्न	७०	११
परिप्लुता	६१	१५	पूर्वज	२१	१८	प्रवया	६३	४
परिषज्ज	१०	१२	पूर्वदिग्पति	३१	२६	प्रविदारण	४५	१
परिष्कार	६०	११	पृथुक	२०	२	प्रवृत्ति	६८	२०
पर्जन्य	३१	२६	पूदाकु	५५	१	प्रवेणी	९१	७
पर्यवस्थाता	२३	२	पूजिन	२३	१९	प्राशु	७६	१८
पलाशी	६	५	पृपदश्व	३३	८	प्राणाधिनाथ	१८	२०
पल्ल	७७	१४	पृषत्क	३९	२१	प्राणेशाशु	२५	१
पवनाशन	६५	३	पोत	५९	१३	प्रावर	५९	१३
पशु	८०	१५	प्रकट	८४	५	प्रावार	५२	१३
पशुपति	३६	३	प्रकार	६८	८	प्रीति	५४	२३
पाशुला	१७	१७	प्रकाश	{ ६८	८	प्रेक्षा	५५	७
पाक	२०	२		{ ८४	५	प्रेतपति	७१	११
पाकशासन	३१	२७	प्रकोष्ठ	५०	१६	प्लवङ्गम	६	१५
पानीय	८	४	प्रम्य	६८	८			
पार्वतीनन्दन	३५	४	प्रग्रह	२३	१९	फ		
पिचण्ड	५१	१०	प्रचलाकी	६४	३	फल	६	२३
						फलक	५१	१९

ब			भुवन	८	४	माधव	६१	१६
बद्धभूमिक	६७	७	भूच्छाय	७२	१३	माधवक	६१	१५
बद्ध	८०	१४	भूतधात्री	४	६	माध्वीक	६१	१७
बभ्रु	३८	१५	भूनेग	३६	३	मानसौकम्	६३	२३
बल	७०	११	भैरव	८७	२२	माया	३८	२२
बलमूदन	३१	२५	भोक्ता	१८	१९	मायावी	८०	३
बहिर्ज्योति	३४	१५	भोगी	६५	२	मायी	८०	३
बहुल	३४	१४	भ्रूण	२०	३	मितम्पच	८५	१
वाडिश	८०	१४				मित्र	२६	११
बाणामन	४२	१	मञ्जुकेय	३८	१३	मिप्र	६८	१८
बाल	{ २०	२	मण्डन	६०	११	मिहिका	८५	२५
	{ ८०	१४	मण्डल	६३	१२	मिहिर	२६	२०
बालिग	८०	१४	मति	५५	८	मुकुन्द	३८	१४
बाहुलेय	३५	४	मतिमान्	५६	३	मृदिर	९	१३
बक्कग	४७	२	मन्मथ	८	२८	मूर्तिज	१९	२०
बद्धि	५५	८	मधु	६१	१५	मूर्धज	९०	२९
बृहन्	८७	१८	मधुकर्	४२	८	मृगदण	४७	२
बृहद्भानु	३४	१६	मधुमख	३९	१२	मृगरिपु	४६	४
ब्रह्मचारी	३५	४	मनमिज	३९	११	मृगाङ्ग	२५	२
ब्राह्मी	५२	२०	मनीमी	५६	२	मृगारि	४६	७
			मन्त्रज	८७	२	मृणालिनी	११	२२
भ			मन्या	५०	११	मृदुल	७५	१४
भग	२६	२०	मयूख	२३	१९	मृद्य	४५	१
भयानक	८७	२२	मरालवाह	६३	२५	मृद्विक	६१	१७
भर्ग	३६	४	मरुत्	३०	१३	मेषपुष्प	८	४
भर्ता	१८	१९	मरुद्वर्मन्	२८	१४	मेषा	५५	८
भर्भरी	३८	२२	मल	६६	१०	मोषक	८२	५
भल्ल	३९	२१	मलिम्लुच	८२	४			
भल्लि	३९	२१	मस्तक	५२	९	य		
भषण	४७	२	महानेजम्	३५	४	यथार्थवर्ण	८७	१
भमल	८२	९	महाबल	३३	८	ययु	२७	२५
भानमान्	२६	२१	महाबिल	२८	१५	यज्य	६२	७
भाम्कर	२६	१९	महागजत	४७	१५	यानयाम	६३	४
भाम्बान्	२६	२०	महामेन	३५	४	यामिनी	२५	२६
भीम	{ ३६	८	महिला	१६	१	यूथ	६३	१२
	{ ८७	२२	महीरुह	६	५	यूनी	१५	२३
भीषण	८७	२२	महेला	१६	१	र		
भीष्म	८७	२२	मा	{ २५	२	रजनीकर	२५	१
भीष्मसू	३६	११		{ ३८	२२	रत्नगर्भा	४	६
भजङ्गभक्त	६५	३	माणवक	२०	३	रत्नवती	४	६

रथाङ्गपाणि	३८	१४	वरयिता	१८	१९	विल	८९	२१
रमणी	१५	२८	वरला	६४	११	विलेशय	६५	२
रमा	३८	२२	वराक	८५	१	विवसन	५९	१०
रवण	४६	१९	वरिष्ठ	२१	१८	विवस्वान्	२६	२०
रश्मि	२३	१९	वर्णिनी	१५	२८	विविक्त	८४	१८
रसा	४	६	वर्तनी	७८	१२	विशारद	५६	३
राक्षस	२९	२७	वर्षीयान	२१	१८	विशिख	३९	२०
रागसूत्र	६१	१	वर्ष	१९	१६	विशम्भ	८८	६
राजसर्प	६५	३	वर्हण	५२	२८	विश्वरूप	३८	१३
राजा	२४	२४	वशा	१६	१	विश्वाम	८८	६
रात्रि	२५	२६	वसति	२५	२६	विष्टर	६	६
राशि	६३	१२	वमु	{ २३	१९	विष्टरश्रवा	३८	१५
रिश्य	६४	१७		{ ३४	१५	विष्णुपद	२८	१५
रुक्म	४७	१५	वम्भ	५९	१२	विष्णुपदी	३६	११
रुग्म	४७	१५	वस्त	५९	१०	विष्णुग्य	६५	१६
रुचि	२३	१९	वह्निरेता	३६	४	विष्वकोन	३८	१३
रुच्य	२९	२२	वातप्रमी	६४	१७	विमर	६३	११
रुक्	६४	१७	वामदेव	३६	४	विमार	८	२९
रुक्	८९	२२	वामनेत्रा	१५	२८	विम्भीर्ण	८७	१८
रोचि	२३	१८	वाग्द	९	१३	वीचिमाली	१३	२
रोधोवक्रा	१२	११	वाना	६८	२०	वीणा	९१	७
रोप	३९	२१	वामनेयी	२५	२६	वीनहोत्र	३४	१६
रोलम्ब	४२	९	वामिता	१५	२८	वीति	२७	२५
रोहिणीवल्गु	२४	२५	वाग्नात्पति	३१	२६	वीकृ	११	२७
	ल		विकर	६३	११	वृक्ष	६	५
लक्ष्य	६८	१८	विक्रि	२९	१७	वृजिन	९१	१
लब्धवर्ण	५६	१	विकर्तन	२६	२०	वृत्तान्त	७५	०
लवणोद	१३	२	विक्रान्त	९०	१८	वृत्रारि	३१	२५
लहरी	१३	१७	विग्रह	{ १९	१५	वृद्ध	{ ५६	२
लेख	३०	१३		{ ४५	२		{ ६३	४
लेङ्गवह	४७	२	विजन	८४	१८	पृष्ठश्रवा	२१	२५
	व		विधा	६८	८	वृन्दारक	३०	१३
वक्षोह	५१	१४	विधेय	८०	१८	वृषाकपि	३८	१५
वज्रधर	३१	२६	विपश्चित्	५६	२	वृषाङ्ग	३६	५
वटु	२०	३	विपुला	४	६	वृषी	९१	७
वनमाली	३८	१५	विबुध	३०	१३	वैकुण्ठ	३८	१४
वनीकस्	६	१५	विभव	४८	७	वैजयन्त	४३	१०
वपा	८९	२२	विभा	२३	१९	वैवस्वत	७१	११
वयसी	२०	१६	विभावरी	२५	२५	व्यक्त	५६	३
			विरोक	२३	१९	व्यञ्जक	८०	३

व्याल	६५	१	शकुलापाङ्ग	६४	३	सदेश	६९	२३
व्यूह	६३	१३	शुचि	३४	१५	सन्	४६	२
व्योमकोश	३६	३	शुण्डा	६१	१५	सनातन	{ ३८	१५
व्रज	६३	११	शुपि	८९	२२		{ ७७	१०
व्रत	११	२७	शृंग	२६	२०	सनाभेय	२१	१०
श			शोक	०३	२०	सनीड	६९	२३
शकली	८	२८	शेवलिनी	१०	११	सन्निकट	७०	१
शक्तिपाणि	३५	३	शैल	४	३०	सन्निभ	६८	८
शतयुति	३७	१०	श्यामकण्ठ	६४	३	सर्पिण्ड	२१	१०
शतहृदा	९	२०	श्राद्धदेव	७१	११	सनादव	२६	२१
शतानन्द	३७	१०	श्रीकण्ठ	३६	३	सभामद	५६	७
शबल	६४	१७	श्रीनन्दन	३९	११	सभाम्नाग	५६	७
शम	५०	१९	श्रोपति	३८	१३	समय	३	१४
शमन	७१	११	श्रीवत्साङ्क	३८	१३	समर्थाद	६९	२३
शम्बर	६४	१७	श्लोक	७४	१३	समवाय	६३	१२
शम्भु	{ ३६	३	श्वभ्र	८९	२२	समागया	७८	१३
	{ ३८	१५	श्वेत	४७	१९	समानोदय	०१	१०
शय	५०	१०	श्वेतच्छद	६३	२३	समानोदय	०१	१०
शवरी	२५	२५	श्वेतगोचि	२५	१	समिति	४५	०
शक्की	८	२९	प			समीक	४५	१
शशंज	१३	२	पञ्चरण	४२	९	सर्माग	३३	८
शशाङ्क	२५	१	पडिध्र	४२	९	समुदय	६३	१२
शशिशेखर	३६	३	म			समुदाय	{ ४५	२
शाखामृग	६	१५	मय	१५	१		{ ६३	१२
शानकुम्भ	८७	१५	मगया	५५	८	समुद्रकान्ता	१२	१२
शाश्व	२३	२	मग्यावान्	५६	३	समुद्रनवनीत	०५	२
शाद	१०	१०	सगर	४५	३	समूह	६३	११
शार्ङ्गवा	११	२७	सर्वित	५५	८	सम्मद	४५	३
शाल	६	५	सवेग	८३	१३	सम्मिन्	०५	२
शालावृक	४७	२	गज्याल	५९	१३	सम्बन्ता	१२	११
शाव	२०	३	गम्वाय	६७	२	सन्निहृग	३६	११
शाश्वत	७७	११	सम्फाट	४५	२	सर्गमृप	६५	१
शाश्वतिक	७१	११	सखा	२१	२	सर्पिणल	६८	३
शिक्षित	७९	२०	सगर्भ	०१	१०	सर्व सहा	८	७
शिलावल	६४	३	सङ्कल्पजन्मा	३९	११	सर्वज	३६	३
शिक्षिनी	{ ५३	१३	सञ्चय	६३	११	सर्वतोमुन	८	८
	{ ६०	१९	सत्र	६	०३	सलि	८०	१०
शिरमिज	९०	२९	सदानत	७७	११	सविता	०६	१९
शिशु	२०	२				सहचरा	१६	१५
शीर्ष	५२	९				सहचरी	१६	१५
						सहधर्मचारिणी	१६	१५

सहस्रकिरण	२६	१९	सुरवर्त्म	२८	१५	स्वादूद	१३	३
सहाय	१४	३०	सुरसरित्	३६	१०	स्वापनेय	४८	६
सागराम्बरा	४	६	सुरोद	१३	३	स्वैरिणी	१७	१७
सामाजिक	५६	७	सूर	२६	१०	ह		
सामि	८९	४	सेक्ता	१८	२०	हस	२६	२१
सायक	३९	२१	सेवक	१८	३०	हसक	५३	१४
सार	४८	६	सेरिन्धी	१८	१८	हरि	२६	२०
सारङ्ग	६८	१७	सोदर	२१	१०	हरि	३३	८
सारसन	६०	१९	स्कन्ध	५०	२१	हरि	७१	११
साथ	६३	१२	स्तनयितु	९	१२	हग्नि	७०	९
मिह	४६	४	स्तन्य	६२	१३	हग्निदश्व	२६	२१
मिड्धनी	५१	२	स्तोम	६३	१३	हग्निप्रिया	३८	२१
मिचय	५९	१२	स्थविर	३७	१०	हग्निमान्	३१	२७
मिन	४७	१९	स्थापीय	४९	८	हग्निह्य	३१	२६
सिताभ्र	६०	५	स्थिरा	४	७	हर्यक्ष	४६	४
सिनेनरगति	३४	१५	स्निग्ध	२१	२	हवि	६२	७
सीता	३८	२२	स्पशान	३३	८	हव्य	६	२३
मुकुमार	७५	१४	स्पण	८७	१	हार्हर	६१	१६
मुर्चरिता	१७	९	स्पृह्य	६२	७	हिमवाल्मी	६०	५
मुधामूर्ति	२५	२	स्त्रुष्टा	३६	४	हिग्ण्य	४८	७
मुधी	५६	२	श्रोतम्	१२	११	हृत्पय	३९	१२
मुपर्णकेतु	३८	१४	स्वजन	२१	१०	हेपण	५२	२६
मुपर्वा	३०	१८	स्वयम्भू	३७	१०	हेपा	५२	२६
मुमनस्	३०	१२	स्वराट्	३१	२६	ह्लादिनी	१	२०
मुग्ज्येष्ट	३७	१०	स्वर्गा कम्	३०	१२	ह्लादिनी	१२	११
मुग्निमगा	३६	११	स्वादुमा	६१	१५	ह्लेपा	५२	२६

यौगिकशब्दानुक्रमणिका

अग्निपर्यायभूत मेनानी ६६	जित्यापर्यायिकर बल १४२	मनुष्यपर्यायपति नृप १४
अघपर्यायजयी जित १३१	अपाद्यादि च्वजाद्यन्त स्मर ८४	मयूरपर्यायपति गुह १२६
अदितिशब्दान्तरं सुतप र्याय-	नामरूपपर्यायवती विमिनी २३	मेघपर्यायपथ आकाश ५३
प्रयोगे देवनामानि ५६	दिनपर्यायिकर सूर्य ५०	रात्रिपर्यायचर राक्षस ५५
आकाशपर्यायिग खग ५४	देवपर्यायपति इन्द्र ५७	लक्ष्मीपर्यायपति हरि ७६
आकाशपर्यायचर खेचर ५४	देहपर्यायभव सुत ३९	वायुपर्यायपथ आकाश ५३
उडुपर्यायपति चन्द्र ८८	द्युपर्यायिधुनी गगा ७१	वार्पयायचर मत्स्य १६
काण्डादिनामन पर पालप्रयोगे	धनपर्यायदायक कुबेर ९६	वार्पयायवि अम्बुधि १६
गजप्रयोगे अम्बरप्रयोगे च	धीनामवर्जित मूर्ख १६६	वार्ययायोद्भव पद्मम् १६
दिग्पाल नामानि ६१	नागपर्यायारि मृगेन्द्र ९०	वित्तपर्यायपति कुबेर १६
कायपर्यायरहित मन्मथ ७७	निशापर्यायिकर चन्द्र ४८	विधिपर्यायपुत्र नारद ५३
वार्मकपर्यायकोटि जटनी ७९	पद्मगपर्यायिद्वैरी गरुड १२८	विपिनपर्यायचर वनेचर १३
किरणवाचिभ्य पूर्व शीतशब्द-	पणिपत्पयायज कमलम् २०	विष्टपपर्यायपति जित ११३
प्रयोगे चन्द्रनामानि, यथा-	पवनपर्यायपुत्र भीम ६६	गम्पापर्यायपति अम्बुद १९
शीतकिरण ४६	पवनपर्यायपुत्र हनुमान् ६३	शैलभग्नादिधर हरि ७६
किरणशब्देभ्य पूर्वम् उष्णशब्द-	पवनवाचिगत्वा अग्नि ६४	मेनानीपर्यायपिता शङ्करः ६८
प्रयोगे सूर्यनामानि, यथा-	पुष्पपर्यायशर स्मर ८०	श्रोतस्विनीपर्यायपति.-
उष्णकिरण ४६	पुष्पपर्यायास्त्र स्मर ८०	अद्विध २४
कृष्णपर्यायपुत्र मन्मथ ७७	प्रस्थपर्यायवान् गिरि ९	स्वर्गपर्यायपति इन्द्रः ५७
गङ्गा नदीश्वर मिन्धु ७१	भूमिपर्यायधर शैल ७	स्वर्गपर्यायवःम त्रिदशः ५७
चित्रापर्यायहारि मनोहरम् १७८	भूमिपर्यायपति नृप ७	स्वान्तपर्यायोद्भव मा ८१
जाङ्गलपर्यायप्रिय राक्षस ५५	भूमिपर्यायरुह वृक्ष ७	हिमपर्यायिकर चन्द्र १७९

अनेकार्थनिघण्टुगतशब्दानामकरादिसूची

अ			इ			केसरिन्		
अक्ष	१०४	७६, ७७	इडा	१०२	२९	कोकिला	१०४	८२
अगादि	१०४	१०५	उ			कोटरस्थ	१०५	१४९
अङ्क	१०३	४०	उक्षन्	१०४	१०६	कोमल	१०२	२६
अज	१०२	३४, ३५	उदक्या	१०५	१३०	कौशिक	१०२	१३
अदिति	१०२	२९	उदार	१०५	१२९	क्रव्य	१०४	९५
अध्यात्म	१०५	१२३	उष्णीष	१०४	८८	क्षत्ता	१०३	३८
अध्यूहा	१०२	३०	उस्ता	१०४	१०७	क्षय	१०३	४५
अनन्त	१०२	३७	ऋ			क्षर	१०२	२१
अनिमिष	१०२	४	ऋत	१०४	७५	ख		
अपाचीन	१०४	९३	ओ			ख	१०३	६४, ६५
अव्व	१०३	५७	ओषण	१०८	७५	ग		
अमृत	१०२	२२	क			गो	१०२	२
अम्बर	१०२	१९	क	१०२	३, ४	गोलक	१०५	१३३
अम्बरीष	१०३	६१	ककुप्	१०३	४४	ग्रावाग	१०३	७८
अर्क	{ १०२	१५	कवन्ध	१०४	८८	घ		
	{ १०४	९४	कम्बु	१०२	११	घन	१०३	४६, ४७
अलान	१०४	८६	कर	१०२	२४	घनाघन	१०४	९३
अवदान	१०३	५५	कर्षक	१०४	९०	घृत	१०२	२३
अष्टवारोह	१०४	९४	कल	१०४	८६	च		
अमिन	१०३	६७	कलभ	१०४	१०८	चटक	१०४	१०४
अमुर	१०३	४८	कलुष	१०४	१०८	चम्	१०३	४८
आ			कानीन	१०४	९०	छ		
आकृत	१०४	९८	किलास	१०८	१०४	छेद	१०४	८६
आक्रन्द	१०४	९५	कीटक	१०५	१२६	ज		
आगोप	१०३	४०	कोनाज	{ १०३	५३, ५४	जम्बुक	१०२	१४
आडम्बर	१०४	११२		{ १०५	१२१	जीमूत	१०३	५८
आत्मज	१०३	५३	कीलाल	१०२	२५	ज्योति	१०३	५५, ५६
आदिन्य	१०३	७१	कुण्ड	१०५	१३३	त		
आधि	१०४	१०२	कुण्डाशी	१०५	१३४	तपस्	१०५	१३१
आगतन	१०४	७८	कूल	१०३	३६	तमोनुद	१०२	१६
आर्य	१०४	१११	कृतघ्न	१०५	१२३	ताक्ष्य	१०३	५०
आलवाल	१०४	१०३	कृष्ण	१०२	२२			
आलान	१०४	९२	केतु	१०२	१६			
आहत	१०४	८९						

निलक	१०८	८४	पण्ड	१०४	९१	भार्या	१०५	१८८
तुल्य	१०८	१०४	पतङ्ग	१०२	१२	भाव	१०४	८७
नृणी	१०३	५१	पदकृन्	१०८	१०१	भास्कर	१०२	१२
नेजम्	१०५	१३१	पद्म	१०४	७७	भुवन	१०२	२५
तोदन	१०८	९२	पथ	१०२	१९	भृग्विव	१०५	१४०
तोयद	१०३	५८	परचित	१०५	१३५	म		
त्रियामा	१०४	१०९	परमेष्ठी	१०८	१००	मञ्जूषा	१०८	८५
त्रिशङ्कु	१०३	६८	परिचर्य	१०८	८८	मण्डूक	१०८	८९
द			पर्जन्य	१०३	६०	मन्वाश्रिनी	१०५	१३९
दक्ष	१०३	७०-७१	पलाय	१०८	१०६	मधु	१०३	६३, ६४
दक्षिण	१०४	९७	पवन	१०४	१११	मन्थिन्	१०२	१५
दविण्ड	१०४	९९	पानीय	१०८	१०२	मन्द	१०५	१२१, १२३
दान	१०८	९२	पाप	१०४	९९	मन्दिर	१०८	१०५
दान्न	१०५	१२४	पाञ्चजन्य	१०२	११	मयूख	१०२	१७
दीघ	१०४	११०	पिशङ्ग	१०८	८३	मलिम्लुन	१०३	५२
दुदन्मन्	१०४	९०	पिपिन	१०८	९५	मम्का	१०४	१०७
दोला	१०८	१०४	पुष्पलोक	१०५	११७	महेष्वास	१०५	११८
डिज	१०३	५२	पुलिन	१०४	८२	माया	१०३	६३
घ			पुष्कर	१०३	३६	मूट	१०८	९६
धनञ्जय	१०२	९	पुण	१०८	७८	मेचक	१०४	८३, १०६
धार्तराष्ट्र	१०३	६५	पु स्त्व	१०३	६२	मिल्लट	१०४	९१
धिलय	१०२	१८	पृष्ठीही	१०४	१०७	य		
न			पोलस्त्य	१०३	५९	यम	१०३	६८
नकुल	१०३	६७	प्रजापति	१०३	३८	युद्धशोष	१०५	११७
नत्त्व	१०५	१५१, १५२	प्रधान	(१०३) (१०४)	५६ १०५	यूथप	१०५	११९
नाग	१०३	४९	प्रगा	१०४	११३	यूथपयूथप	१०५	११९
नापित	१०४	१०१	प्रभाकर	१०३	६६	र		
नास्तिक	१०५	१३२	प्रासाद	१०३	४६	रहम्	१०४	१०३
निकष	१०८	८४	प्लव	१०३	४५	रजम्	१०३	७२
नितम्ब	१०३	७२	फ			रत्न	१०४	८३
निरुपद्रवा	१०५	१२८	फेनवाहिनी	१०३	९४	रत्न	१०४	१०९
निरुपस्करा	१०५	१२७	ब			रदन	१०४	९२
निविड	१०४	८९	बभ्रु	१०४	९९	रम्भा	१०३	७४
नृसिंह	१०५	१२०	बीभन्म	१०२	९	राजन्	१०२	७
न्यग्रोवपरिमण्डला	१०५	१४३	भ			राजीवलोचन	१०५	११४
प			भगवन्	१०५	१२९	राजीवलोचना	१०५	१४३
पङ्कज	१०४	८२	भामिनी	१०५	१४२	राम	१०२	३२, ३३

रावण	१०५	१४१	विभावसु	{ १०२	८	शुक	१०४	९६
रोहिण्य	१०२	३१		{ १०३	४१	शेमुषी	१०४	९३
लृ			विम्बोष्ठी	१०५	१३७	शेष	१०२	३२
लक्ष्म	१०३	६९, ७०	विरोचन	१०२	१०	शैलूष	१०४	१००
लक्ष्मण	१०३	६९	विलास	१०४	८७	ष		
ललना	१०५	१३७	विशाल	१०४	९०	पङ्कद	१०५	१३३
ललाम	१०४	८१	विष	१०२	२४	म		
ललिता	१०५	१३९	वृकोदर	१०५	११६	सवर्ग	१०२	२७, २८
लवली	१०४	८१	वृजिन	१०४	१०९	मत्र	१०४	१०३
लावण्य	१०४	१०१	वृष	१०२	३०	सन्वर्ग	१०४	८३
लुलाय	१०४	१०६	वृषा	१०२	३१	मदन	१०२	२६
लेखा	१०३	६१	वेहन्	१०४	१०७	सद्म	१०२	२७
व			वैकर्तन	१०५	११५	सप्तपि	१००	१७
वक्रवक्त्र	१०४	८२	व्यक्तिवादिन्	१०५	१२०	सप्ताश्व	१०५	१४८
वन्ध्या	१०४	१०७	व्यञ्जन	१०४	११२	समाधि	१०५	१२४
वरवर्णिनी	१०५	१३८	व्याधि	१०८	१०२	ममाधिम्य	१०५	१२५
वर्गह	१०२	३३, ३८	श			सम्राट्	१०४	१०९
वरुथ	१०३	४७	शङ्कु	१०२	१४	साम्प्र	१०३	४२
वर्षाभू	१०४	८९	शङ्खकण्ठी	१०५	१४५	सारग	१०३	७३
वलाहक	१०३	५७	शम्भु	१०२	१३	साम्प्र	१०२	७
वल्लरी	१०४	११३	शरान्	१०५	१३१	सित	१०३	६६
वमा	१०४	१०७	शरीरज	१०२	३५	मुमना	१०४	११३
वमु	{ १०२	१८	शर्वरी	१०३	४२	स्यविष्ट	१०४	९९
	{ १०३	७३	शव	१०२	२१	स्यन्दन	१०२	२१
वाजी	१०४	७९	शिखरिन्	१०३	५१	स्वर्	१०३	४३
वाम	१०३	३९	शिखिन्	१०२	५	ह		
वालेय	१०३	५०	शिव	१०२	२०	हम	१०२	६
वासर	१०३	४१	शिवा	१०४	९०	हरि	१०८	८०
विद्वान्	१०३	६२	शिलीमुख	१०३	६०	हिमाराति	१०२	८
विपञ्ची	१०४	११२	शीत	१०६	१५३	हिल	१०४	१०८
विपिन	१०६	१५२	शुक्रा	१०४	८१	हम्ब	१०४	११०
			शुचिकृन्	१०३	५९			

उद्धृतवाक्यानामकारादिसूची

अङ्कनाच्च तदेक्षणा	५७	गमो अरहंताण	१	भर्ता सगर एव मृत्यु वसति	१५
अतिप्रलापभावेन	६१	तत्तु ह्ययङ्गधीन यद्	६१	मान्यत्वादाप्नविद्याना	२
अनशानावमौदर्यवृत्ति-	२	तत्तदेहे गते ताभ्या	५८	मुदन्ति मिश्रीभवन्ति	१२
अमूययागग्य निशाम्य या	३३	दुज्जण सुहियउ होउ	२२	य पापपाशनाशाय	२
आत्मनि मोक्षे ज्ञाने	५२, ५८	दुर्जनाना विनोदाय	६३	य उत्पन्न पुनाति वध	१९
आपो नारा इति प्रोक्ताः	३७	दित्र्यैर्व्योम्नि पुराण-	२५	यत्सर्वात्महित न वर्णसहित	५९
आयुः पीयूषकुण्डै स्मृति-	६२	न कु पृथिवी पिपति	१२	रेषणात् क्लेशराशीनाम्	२
आहुर्नैत्रोत्थमत्रे सत्-	२४	नक्षत्रमृक्ष भ तारा	२५	लक्ष्मीकौस्तुभपारिजातकमुग	६१
उड्डीय वाञ्छित यान्ति	१४	नक्षत्रे वाक्षिमध्ये च	२५	वर क्षित पाणि	२२
एको रथो गजश्चैको	४५	नभन्तु नभसा सार्धं	१	वर्णागमो गवेन्द्रादी	
ऐश्वर्यस्य समग्रस्य	६५	नवमे प्राणमन्देहो	५४	२३, २९, ४६ ५९, ६५	
कपिर्वराहः श्रेष्ठश्च	३४	नासाकण्ठमुरस्तालु		वाज वाजस्तु पक्षेऽपि	२७
काश्यमिन्मुच्यते तेज.	५७	निषद्वरस्तु जम्बाल-	१०	वाहो युग्य घनो वाहो	२७
कियती पञ्चसहस्री	९६	निषादर्वभगान्धार	५३	वृषाकपिविमुदेवे	३४
कुमारकाले आमलकी-	५५	पञ्चमे दह्यते गात्रम्	५४	श्यामा रात्रिस्तु विट् श्यामा	२५
कोकिलाना स्वरो रूप	५५	पञ्चाचारगतो नित्य	५५	वड्ज मयूरा कृवते	५३
क्वचित्प्रवृत्ति क्वचिदप्रवृत्ति	६०	पट्टन शकटैर्गम्य	४९	मत्य दूरे विहरति समं	१४
गिरिकन्दरदुग्धु	३२	पतत्रिपत्रिपतग-	२९	सन्धियोंनी मुरङ्गाया	९६
गोमवे सुरभि हन्यात्	५६	पन्थ द्वैस्त्रिगुणै सवं	४४	सर्वपस्य प्रयत्नेन	५६
गी स्वर्ग सप्रवृष्टान्मा	५८	पुण्डरीक सिताम्बुजम्	१०	स व्याख्याति न शास्त्रम्	३
गोर्गाः कामदुघा	५२	पुष्पसाधारणे काले	५३	स्वस्थे नरे सुखासीने	९६
चतु षष्टिकलाभिज्ञा	१८	प्रथमे जायते चिन्ता	५४	स्वानुभूत्यै भवेद्	१
चत्वार पुरवशजा	५८	प्रगस्या न नमस्यापि	२२	हावो मुखविकार स्यात्	१७
जानमात्रोऽयं भगवान्	३१	प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्य	२	हिसानृतस्तेया-	२
				हिरण्यगर्भमभवत्	३७

भाष्यगता ग्रन्था ग्रन्थकाराश्च

अकलङ्क	१	द्विसन्धानकाव्यम्	३३	१	विद्यानन्दी	१	१
अनेकार्थव्यनिमज्जरी-		द्विमन्वानभाष्यम्	६१	१०	शब्दभेदः	१	१७
{ २५ २१		नाममाला	७२	२०	शाश्वतः	२५	९
{ २७ १३		पञ्चनन्दिशास्त्रम्	१	१९	श्रीभोज	२५	९
अमरकोषः	८७	पूज्यपाद	१	१	समन्तभद्र	१	१
{ १० ८		बृहत्प्रति क्रमण भाष्यम्	५८	१५	सूक्तिमुक्तावली	२२	१८
{ १२ १५		भरतनाटकम्	५३	२२	सोमनीतिः	{ ४८ १९, २४, २७	
{ ४३ ६		भारतम्	४४	४	{ १९ २४		
{ ५३ २०		महापुराणम्	{ ५७ २२, २३		हलायुधः	{ १० २६	
अमरसिंहनाममाला	२९	५८ ३, ९			{ १२ २४		
अमरसिंहभाष्यम्	१९	यश कीर्ति	२२	१५	हलायुधभाष्यम्-		
आशाघरमहाभिषेक	६२	{ २ १६, १९				२९ ५	
इन्द्रनन्दिनी तिशास्त्रम्	५५	{ १४ २१			हंमः	९४ १०	
कल्याणकीर्ति	१	{ २४ २५			हंमनाममाला	२७ १९	
क्षीरस्वामी	६२	{ ६३ १५			हंमी	९६ १७, २५, २७	
डाल्लणिकः	२९	यशस्तिलकचम्पूकाव्यम्	९८	८	हंमीनाममाला	३४ १२	

सङ्केतविवरण

अ० चि० अभिधानचिन्तामणि
अनेका० म० अनेकार्थसङ्ग्रह
अम० को० अमरकोश
अम० को० क्षी० भा० अमर-
कोश क्षीरस्वामी भाष्य
अमर० अमरकोश
अ० स० अनेकार्थसङ्ग्रह
उ० सू० उणादिसूत्र
कल्प० को० कल्पद्रुकोश
का० उ० कातन्त्र उणादि
का० ह० उ० कातन्त्र रूपमाला
उत्तरार्थ
का० म० पू० कातन्त्र रूपमाला
पूर्वार्ध
का० म० पू० मू० कातन्त्ररूप-
माला पूर्वार्धसूत्र

का० सू० कातन्त्रसूत्र
क्षी० भा० क्षीरस्वाभिभाष्य
क्षी० स्वा० क्षीरस्वामी
जन० समु० जनपदममुद्देश
जै० मू० जैनेन्द्रसूत्र
त० मू० तत्त्वार्थसूत्र
नीतिसा० नीतिसार
नी० वा० समु० मू० नीति वाक्या-
यामृत ममुद्देशसूक्ति
प० प० पद्मनन्दिपञ्चविंशतिका
पा० उ० पाणिनि उणादि
पा० गणसू० पाणिनि गणसूत्र
पान० भाष्य पानञ्जलमहाभाष्य
पा० मू० पाणिनिसूत्र
भो० उ० भोजउणादि
मे० को० वा० व० मेदिनीकोश
वाचनवर्ग

यश० नि० आ० क० यशस्तिलक
आश्वास कल्प
वि० को० का० विश्वलोचनकोश
कान्तवर्ग
वि० लो० विश्वलोचन कोश
श० च० शब्दार्णवचन्द्रिका
श० च० मू० शब्दार्णवचन्द्रिका
सूत्र
शा० कारिका शाकटायन कारिका
शा० मू० शाकटायन सूत्र
सर० क० सगस्वनीकण्ठाभरण
सार० समा० मू० सागस्वत
समास सूत्र
हे० च० हेमचन्द्र
हे० ग० हेमचन्द्रानुशासन

शुद्धिपत्रम्

पृष्ठ ५० अशुद्धयः शुद्धयः पृष्ठ ५० अशुद्धयः शुद्धयः
७ १४ सर शर ६५ ९ विषाक्षय विषक्षयः
५३ २ स्तमित स्तमित ६९ २ निकुरो निकरो
५४ २१ मुक्तीषा- मुत्तीषा- ७१ २१ श्वेतो श्वेतो